नई शिक्षा नीति के अनुसार

2024

विश्वविद्यालय प्रकाशन (रजि.)
ग्वालियर
द्वारा प्रकाशित

20 प्रश्न

(परीक्षोपयोगी महत्वपूर्ण मॉडल प्रश्नोत्तर)

व्यक्तित्व विकास और चरित्र निर्माण

आधार पाठ्यक्रम

तृतीय वर्ष

नवीन पाठ्यक्रम

[अधिकतम अंक - 50 अंक]

व्यक्तित्व विकास और चरित्र निर्माण

इकाई-1

(1) व्यक्तित्व विकास (शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास) अर्थ, अवधारणा, व्यक्तित्व विकास के कारक तत्व।

(2) चरित्र निर्माण (व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय चरित्र) अर्थ, अवधारणा, चरित्र के कारक तत्व तथा चरित्र निर्माण के साधन।
(3) पंचकोष, अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष एवं आनंदमय कोष सामान्य परिचय अर्थ उद्देश्य एवं महत्व।
(4) पंचकोष विकास के लाभ तथा पंचकोष विकसित करने के साधन।

इकाई-2

(1) शारीरिक एवं मानसिक विकास।
(2) शारीरिक एवं मानसिक विकास के अर्थ, संकल्पना।
(3) आदर्श दिनचर्या, संतुलित आहार, ऋतुचर्या, सूक्ष्म व्यायाम।
(4) अष्टांग योग–यम नियम, ईश्वर प्राणिधान, स्वाध्याय, संतोष धैर्य, सदाचार, अनुशासन का अभ्यास।
(5) अतीत गौरव, सामाजिक एवं नागरिकता बोध, सर्वपंथ समादर एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण।
(6) राष्ट्र, राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, स्वाधीनता, सुराज, वसुधैव कुटुम्बकम, सह अस्तित्व।

इकाई-3

(1) नैतिक और आत्मिक विकास
(2) पंचकोष और षठचक्र का अन्तर्सम्बन्ध।
(3) अष्टांग योग, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।
(4) कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग की जीवन में स्वेच्छानुसार निरन्तरता।
(5) भारतीय काल गणना, वैदिक मंत्रों का अभ्यास।
(6) मातृभाषा और भारतीय ज्ञान परम्परा का स्वाभिमान और चिंतन।
(7) वैदिक ऋषियों, अवतारों और महापुरुषों का जीवन चरित्र पठन।
(8) सेवा, सहिष्णुता, परोपकार, समर्पण और आत्मपरीक्षण का अभ्यास, स्वाबलम्बन। ❑❑

अनुशंसित मूल्यांकन विधियाँ	
वस्तुनिष्ठ प्रश्न	50 × 1 = 50 अंक

❑ **ध्यान दें: 'व्यक्तित्व विकास और चरित्र निर्माण'** विषय आधार पाठ्यक्रम में रखा गया है। नई शिक्षानीति के अन्तर्गत इस विषय पर परीक्षा में सभी वस्तुनिष्ठ प्रश्न ही पूछे जायेंगे। इस पुस्तक में अनेक वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के साथ ही सम्बन्धित पाठ्यक्रम के प्रत्येक टॉपिक पर कुछ दीर्घ एवं लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर भी दिये गये हैं। इनके अध्ययन से आप इस विषय को भली-भाँति समझ सकेंगे और किसी भी वस्तुनिष्ठ प्रश्न का उत्तर देने की क्षमता विकसित कर सकेंगे।

व्यक्तित्व विकास और चरित्र निर्माण

(आधार पाठ्यक्रम)

इकाई-1

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न–1. व्यक्तित्व विकास के अर्थ को समझाते हुये व्यक्तित्व के गुणों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– व्यक्तित्व विकास का अर्थ– मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तित्व शब्द सामान्य रूप में, व्यक्ति के समग्र प्रभाव के लिये किया जाता है। व्यक्ति के तत्वों से आशय है, व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने तथा उसे स्थायी रूप देने में जो तत्व काम में आते हैं, उन सभी का योग और परिणाम व्यक्ति की समग्र छवि के विषय में एक धारणा प्रस्तुत करता है। यही धारणा व्यक्तित्व कहलाती है। व्यक्ति अच्छा है या बुरा, उत्तम व्यवहार वाला है या सामान्य, प्रभावशाली है या अप्रभावशाली, ये सभी तत्व व्यक्ति के अमूर्त रूप को प्रस्तुत करते हैं। एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के विषय में धारणा नहीं बनाता है। लेकिन जब भी बनाने का प्रयास करता है, तो वह बँट जाता है, खण्डित हो जाता है।

इसे स्पष्ट करते हुये ड्रेवर ने लिखा है कि 'व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिये किया जाता है जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन से आदान–प्रदान व्यक्त करता है।'

व्यक्तित्व के लक्षण या गुण– व्यक्तित्व सभी गुणों का गत्यात्मक संगठन है।

गैरिट ने इसके सन्दर्भ में लिखा है कि 'व्यक्तित्व के गुण व्यवहार करने की निश्चित विधियाँ हैं जो व्यक्ति में स्थायी होते हैं। व्यक्तित्व के गुण व्यवहार के बहुसंख्यक स्वरूप का वर्णन करने की स्पष्ट विधियाँ हैं।'

अतः व्यक्ति के गुणों को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) गुणों का अर्थ– किसी मनुष्य के व्यक्तित्व का सही चित्र, वर्णन या चरित्र–चित्रण प्रस्तुत करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसे आसान बनाने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के कुछ गुण निर्धारित किये हैं जैसे– दयालु, कठोर, मूर्ख, बुद्धिमान आदि। लेकिन यहाँ भ्रम–निवारण के लिये यह स्पष्ट बता देना असंगत न होगा कि इन गुणों या लक्षणों को योग्यताओं या क्षमताओं का पर्यायवाची नहीं माना जाता है। क्योंकि गुणों और योग्यताओं में अंतर है। उदाहरण के लिये–गिटार बजाना– योग्यता है, लेकिन जिस ढंग से कोई व्यक्ति उसे बजाता है, वह उसके व्यक्तित्व का गुण या लक्षण है।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व का लक्षण, व्यक्ति के व्यवहार का कोई विशेष गुण होता है।

(2) **गुणों की संख्या–** अब यह सवाल पैदा होता है कि व्यक्तित्व के कितने विभिन्न गुण हैं। इसका उत्तर देते हुये **मन** ने लिखा है कि 'व्यक्तित्व के इतने विभिन्न अंग, कक्ष, पहलू या स्वरूप हैं कि वास्तव में, यह बताना असंभव है कि इन गुणों की संख्या कितनी है।'

(3) **गुणों के प्रकार–** व्यक्तित्व के गुण अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे– (1) नैतिक और अनैतिक (2) वास्तविक और अवास्तविक, (3) बाह्य और आंतरिक। उदाहरण के लिये– बाह्य गुण हैं– मित्रता, शक्ति, शांति तथा सामाजिकता। आंतरिक गुण हैं– भय, चिन्ता, इच्छा और महत्वाकांक्षा। (iv) शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक आर्थिक आदि। इस तरह यथार्थ में, इन गुणों की संख्या इतनी अधिक है तथा ये एक–दूसरे से इतने पृथक हैं कि न तो इनका वर्गीकरण किया जा सकता है और न संभवतः किया जा सकेगा।

(4) **गुणों का महत्व–** प्रत्येक व्यक्ति में व्यक्तित्व के थोड़े–बहुत गुण अवश्य होते हैं। वे एक–दूसरे से विशिष्ट प्रकार से सम्बन्धित होकर व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं तथा एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से भिन्नता प्रदान करते हैं। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि जो गुण जिस मनुष्य के व्यक्तित्व में हैं, वे उसमें हमेशा विद्यमान रहें। वे उनमें से कुछ अदृश्य हो जाते हैं और कुछ स्थायी रूप धारण कर लेते हैं। उदाहरण के लिये भय और चिन्ता के गुणों का लोप हो सकता है तथा वे व्यक्तित्व में निरन्तर उपस्थित भी रह सकते हैं। इसी तरह एक गुण के अनेक अर्थ हो सकते हैं। किसी व्यक्ति का मुस्कराता चेहरा उसका स्वाभाविक गुण उसकी उत्तम स्वास्थ्य और आनंदप्रियता का द्योतक या दूसरे लोगों को प्रसन्न एवं प्रभावित करने के लिये कृत्रिम विधि हो सकती है। **गार्डनर** एवं **मर्फी** के शब्दों में 'व्यक्तित्व के गुण हमें दूसरों को तथा अपने को समझने की तथा यह भविष्यवाणी करने की क्षमता प्रदान करते हैं कि हम में से प्रत्येक क्या कार्य करेगा।'

(5) **गुणों का वितरण–** व्यक्तित्व के गुण मानव–व्यवहार के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते हैं। **गैरिट** के अनुसार 'व्यवहार के इन स्वरूपों का वर्णन करने के लिये अंग्रेजी भाषा में कम से कम 18,000 विशेषज्ञों का प्रयोग किया जाता है।' मनोवैज्ञानिकों ने इन गुणों में से 12 को प्रधान गुणों की संज्ञा दी है। ये गुण एक–दूसरे से स्वतंत्र होते हैं तथा दो निश्चित और विपरीत सीमाओं के अंतर्गत रहते हैं जैसे– बुद्धिमान, मूर्ख, दयालु, कठोर आदि।

बुडवर्थ ने कुछ प्रधान गुण एवं विपरीत गुणों का भी उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं–

प्रधान गुण	विपरीत गुण
(1) प्रसन्नचित मिलनसार	उदासीन, झेंपने वाले
(2) बुद्धिमान, विश्वसनीय	मूर्ख, ओझा
(3) संवेगात्मक, स्थिरता, यथार्थवादी	असंवेगात्मक, अस्थिरता, पलायनवादी।
(4) अधिकारप्रिय, आत्म–गौरवशील	आज्ञाकारी, आत्म–गौरवहीन
(5) शांत, सामाजिक	उद्विग्न, एकांतप्रिय
(6) भावुक; कोमल हृदय	भावनाशून्य, कठोर हृदय
(7) शिष्ट, सौन्दर्य–प्रेमी	अशिष्ट, असत्य
(8) उत्तरदायी, परिश्रमी	गैर–जिम्मेदार, पर निर्भर

(9) साहसी, चिन्ता–रहित	उत्साहहीन, सतर्क
(10) मैत्रीपूर्ण, विश्वास करने वाला	सन्देहशील, शत्रुतापूर्ण

प्रश्न–2. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन कीजिये।

अथवा

उन तत्वों का उल्लेख कीजिये जिनका व्यक्तित्व निर्माण पर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव पड़ता है।

उत्तर– व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors influenceing Personality)– व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले तत्वों का उल्लेख निम्नानुसार किया जा रहा है–

1. **शारीरिक तत्व–** शारीरिक रचना के अन्तर्गत शरीर के विभिन्न अंग, उनका पारस्परिक अनुपात, कद, भार, नेत्र, बाल, रंग, रूप, वाणी, स्वर, मुखाकृति आदि आते हैं। ये किसी न किसी रूप में व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं।
2. **ग्रन्थियों से सम्बन्धित तत्व–** नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ तथा शारीरिक रसायन, जैविक कारकों का भी व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है।
3. **वंशानुक्रम का प्रभाव–** व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का भी प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है। बालक सामान्य प्रवृत्तियों, मूल प्रवृत्तियों, संवेग, बुद्धि, कार्यक्षमता, स्नायु–मण्डल, प्रतिक्षेप, चालक तथा आंतरिक स्वभाव आदि वंशानुक्रम से प्राप्त करता है तथा आगे चलकर दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है।
4. **वातावरण का प्रभाव–** मनुष्य के व्यक्तित्व में भौतिक वातावरण का प्रभाव तो पड़ता ही है इसके साथ–साथ पारिवारिक वातावरण, पास–पड़ौस के वातावरण, मित्र–मण्डली के वातावरण तथा विद्यालय के वातावरण का व्यापक प्रभाव भी पड़ता है। भौतिक वातावरण के प्रभाव के कारण लोगों की आदत, रंग–रूप, शारीरिक बनावट व जीवन–यापन की विधियों में अन्तर रहता है।
5. **मानसिक योग्यता का प्रभाव–** जिस व्यक्ति में जितनी अधिक मानसिक योग्यता होती है, वह उतना ही अधिक अपने व्यवहार को समाज के आदर्शों और प्रतिमानों के अनुकूल ढालने में सफल होता है। परिणामतः उसके व्यक्तित्व का विकास उतना ही अधिक होता है, जबकि कम मानसिक योग्यता वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास अपेक्षाकृत कम होता है।
6. **रुचि विशेष का प्रभाव–** व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में रुचि विशेष का व्यापक प्रभाव पड़ता है। जिस कार्य में विशिष्ट रुचि होती है, उसमें व्यक्ति को अवश्य सफलता मिलती है। कला एवं संगीत में विशिष्ट रुचि लेने वाला व्यक्ति ही कलाकार या संगीतज्ञ के उच्च स्थान पर पहुँचने में सफल हो सकता है।
7. **सामाजिक वातावरण का प्रभाव–** गैरेट के अनुसार, 'जन्म के समय से ही बालक का व्यक्तित्व उस समाज के द्वारा, जिसमें वह रहता है, निर्मित और परिवर्तित किया जाता है।' स्पष्ट है कि बालक में सामाजिक वातावरण के सम्पर्क में रहने के कारण धीरे–धीरे परिवर्तन होते हैं। उसे अपनी भाषा, रहन–सहन के ढंग, खाने–पीने की

विधि, दूसरों के साथ व्यवहार करने के प्रतिमान, धार्मिक व नैतिक विचार आदि समाज से ही मिलते हैं। इस प्रकार समाज उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

8. **सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव–** समाज व्यक्तित्व का निर्माण करता है तथा संस्कृति उसके स्वरूप को निश्चित करती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व पर उस संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ता है जिसमें वह जन्म लेता है और जिसमें उसका पालन–पोषण एवं विकास होता है। बालक के व्यक्तित्व पर उसकी संस्कृति की अमिट छाप लग जाती है जो उसके व्यक्तित्व में सदैव परिलक्षित होती रहती है।

9. **परिवार एवं विद्यालय का प्रभाव–** व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में परिवार एवं विद्यालय का व्यापक प्रभाव पड़ता है। बालक परिवार एवं विद्यालय से अनेक गुणों का विकास करता है, उनका उसके व्यक्तित्व पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। परिवार की आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, परस्पर मेल एवं शान्तिमय वातावरण का भी व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। विद्यालय का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पाठ्यक्रम, अनुशासन, शिक्षक–छात्र सम्बन्ध, छात्रों के परस्पर सम्बन्ध और खेलकूद व मनोरंजन के माध्यम से पड़ता है।

10. **सांवेगिक तत्वों का प्रभाव–** संवेगों का भी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर काफी प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति साहसी, डरपोक, मिलनसार, हँसमुख बनता है। सांवेगिक तत्व व्यक्तित्व के विकास पर वांछनीय और अवांछनीय दोनों ही तरह के प्रभाव डाल सकता है।

11. **अन्य बातों का प्रभाव–** (i) लिंग का भी व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। स्त्री–पुरुष के व्यक्तित्व में अन्तर का यही कारण है। (ii) बालक का इकलौती संतान होना। (iii) बालक के शारीरिक व मानसिक दोष। (iv) जीवन की विशिष्ट परिस्थितियाँ। (v) संवेगात्मक असंतुलन आदि बातों का भी प्रभाव व्यक्तित्व के विकास एवं निर्माण पर पड़ सकता है।

प्रश्न–3. व्यक्तित्व कितने प्रकार का होता है? समझाइये।

अथवा

व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

अथवा

अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं? समझाइये।

उत्तर– व्यक्तित्व के प्रकार– व्यक्तित्व का वर्गीकरण अनेक विद्वानों द्वारा अनेक प्रकार से किया गया है। इनमें से शरीर रचना प्रकार, समाजशास्त्रीय प्रकार और मनोवैज्ञानिक प्रकार के तीन वर्गीकरण को सभी स्वीकार करते हैं। इनका उल्लेख निम्नानुसार किया जा सकता है–

1. **शरीर रचना प्रकार–** जर्मन विद्वान क्रेचयर ने शरीर रचना के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व के तीन प्रकार– (i) शक्तिहीन, (ii) खिलाड़ी और नाटे कद वाले बताये हैं।

(i) **शक्तिहीन–** इस तरह के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति दुबला, पतला तथा छोटे कंधों वाला होता है। उसकी भुजाये पतली और सीना छोटा होता है। उसके मुँह की बनावट कोण जैसी होती है। वह दूसरों की आलोचना करना पसन्द करता है, पर दूसरों से अपनी आलोचना सुनना नहीं चाहता है।

(ii) **खिलाड़ी–** इस प्रकार के व्यक्ति का शरीर पुष्ट और स्वस्थ होता है। उसका सीना चौड़ा और उभरा हुआ, कंधे चौड़े, भुजायें मजबूत, माँस पेशियाँ पुष्ट और चेहरा देखने में अच्छा होता है। इस तरह के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति व्यक्तियों से सामन्जस्य करना चाहता है।

(iii) **नाटा कद वाला–** इस प्रकार के व्यक्ति का शरीर मोटा, छोटा व गोल होता है। इसका सीना नीचा और चौड़ा, पेट आगे से निकला हुआ और चेहरा गोल होता है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति आरामपसन्द और लोकप्रिय होता है।

2. **समाजशास्त्रीय आधार पर–** व्यक्ति के सामाजिक कार्यों और स्थिति के आधार पर व्यक्तित्व के छह प्रकार बताये गये हैं– सैद्धान्तिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं कलात्मक।

(i) **सैद्धान्तिक–** इस श्रेणी का व्यक्तित्व व्यवहार की अपेक्षा सिद्धान्त पर अधिक बल देता है। वह ईमानदार व सत्यवादी होता है। दार्शनिक इसी तरह के व्यक्ति होते हैं।

(ii) **आर्थिक–** इस प्रकार का व्यक्ति अपने जीवन में सभी बातों को आर्थिक दृष्टि से सोचता और मूल्यांकन करता है। उसकी प्रवृत्ति प्रत्येक कार्य लाभ की दृष्टि से करने की होती है। वह पूरी तरह व्यावहारिक व्यक्ति होता है तथा धन को अधिक महत्व देता है। व्यापारी, उद्योगपति व पूँजीपति वर्ग के लोग इसी श्रेणी में आते हैं।

(iii) **सामाजिक–** इस श्रेणी में आने वाला व्यक्ति प्रेम को अधिक महत्व देता है तथा दया, सहानुभूति व सहयोग में विश्वास करता है। उसे सत्य और मानवता के प्रति बड़ी श्रद्धा होती है। समाज कल्याण एवं लोकहित के कार्यों के लिये वह अपना सब कुछ न्यौछावर कर देता है।

(iv) **राजनीतिक–** इस प्रकार के व्यक्ति सत्ता, प्रभुत्व और नियंत्रण में विश्वास करने वाले होते हैं। ये शासन और प्रशासन पर वर्चस्व कायम करने के लिये सदैव सभी प्रकार से तत्पर रहते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य सत्ता हथियाना होता है।

(v) **धार्मिक–** इस प्रकार के व्यक्ति आध्यात्मिक आस्था एवं विचार वाले होते हैं। ये ईश्वरवादी, सत्यवादी, नैतिक आचरण करने वाले होते हैं। इनका जीवन सादा, सरल और संतोषी होता है।

(vi) **कलात्मक–** इस श्रेणी का व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को कला की दृष्टि से देखता है। वह कला और सौन्दर्य में सम्बन्ध स्थापित करने की प्रबल इच्छा रखता है। इसका विश्वास सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् में होता है। कलात्मक व्यक्तित्व वाला व्यक्ति विश्वसनीय होता है।

3. **मनोवैज्ञानिक प्रकार–** मनोवैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक लक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इनमें से जुंग का वर्गीकरण सर्वाधिक मान्य किया गया है। उनके अनुसार व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है– (i) अन्तर्मुखी तथा (ii) बहिर्मुखी।

(i) **अन्तर्मुखी व्यक्तित्व (Introvent Personality)–** इस प्रकार के व्यक्तित्व के लक्षण, स्वभाव, आदतें, अभिवृत्तियाँ और अन्य चालक बाह्य रूप में प्रकट नहीं होते हैं। इसका विकास बाहरी रूप में न होकर आंतरिक रूप में होता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति अपनी जीवन शक्ति

को अन्दर की ओर प्रेरित करता है। वह स्वभाव से लज्जाशील तथा भीड़–भाड़ से दूर शान्त एवं एकान्तमय स्थान को पसन्द करता है। लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करना उसे अच्छा नहीं लगता। वह विचार–प्रधान होता है तथा किसी भी कार्य को करने के पूर्व उस पर भली–भाँति विचार करता है। आत्म–प्रशंसा उसे अच्छी नहीं लगती। उसकी दर्शन और विज्ञान में रुचि रहती है। अन्तर्मुखी व्यक्ति कल्पना के संसार में उड़ान लेते हैं तथा कभी–कभी आदर्शवादी बन जाते हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व के व्यक्ति दार्शनिक, विचारक और वैज्ञानिक भी होते हैं।

(ii) बहिर्मुखी व्यक्तित्व (External Personality)– इस श्रेणी के व्यक्तित्व के लोग अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वालों से विपरीत होते हैं। बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का झुकाव बाहरी तत्वों की ओर होता है। ऐसे व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को स्पष्ट रूप में व्यक्त कर सकते हैं। वे संसार के भौतिक लक्ष्यों में विशेष रुचि रखते हैं। इस श्रेणी के व्यक्ति अपनी जीवन–शक्ति को बाहर की ओर प्रेरित करते हैं। ऐसे व्यक्ति क्रिया–प्रधान होते हैं। ये सामाजिक कार्यों, समारोहों में बड़ी खुशी से सम्मिलित होते हैं। इनमें लोगों को संगठित करने तथा नेतृत्व प्रदान करने के गुण होते हैं। उनकी रुचि आत्म–प्रदर्शन कर दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में होती है। ये अपनी प्रशंसा भी पसंद करते हैं। ये अच्छा भोजन और पोशाकें पहनना पसन्द करते हैं। इनका लक्ष्य जीवन को आनन्दपूर्ण ढंग से बिताना होता है। ऐसे व्यक्तित्व वाले लोग बाहरी सामंजस्य के प्रति सदैव सचेत रहते हैं तथा कार्यों और कथनों में अधिक विश्वास रखते हैं। इनका दृष्टिकोण आदर्शवादी कम, व्यावहारिक अधिक होता है। इस श्रेणी के व्यक्तित्व वाले लोग अधिकांशतः राजनीतिक या व्यापारिक नेता होते हैं।

प्रश्न–4. सन्तुलित व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

उत्तर– संतुलित व्यक्तित्व की विशेषतायें– संतुलित व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं–

1. आत्म–चेतना– यह व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है। इसी विशेषता के कारण मनुष्य को सभी जीवधारियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और उसके व्यक्तित्व की उपस्थिति को भी स्वीकार किया जाता है। एक विकसित और परिपक्व बालक में आत्म–चेतना का प्रादुर्भाव होता है और इसी के कारण वह दूसरों की प्रशंसा तथा अपनी प्रशंसा, सफलता या विफलता से प्रभावित होता है। वह आत्म–चेतना के माध्यम से यह जान लेता है कि वह क्या है, समाज में उसकी क्या स्थिति है, दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं तथा क्या गुण या दोष बताते हैं?

2. सामाजिकता– व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है– सामाजिकता! वास्तव में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तभी होता है जब वह समाज में अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर क्रिया और अन्तःक्रिया करता है। इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। अतः संतुलित व्यक्तित्व में सामाजिकता का होना नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति के दृष्टिकोण का पता भी हमें सामाजिक अनुभवों के आधार पर चलता है। बालक के व्यक्तित्व में सामाजीकरण के गुण भी सामाजिक संस्थायें उत्पन्न एवं विकसित करती हैं। चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिये समाज से पृथक् मनुष्य और उसके व्यक्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती।

3. एकता एवं एकीकरण– संतुलित व्यक्तित्व की विशेषता के रूप में एकता और एकीकरण भी महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर का कोई अवयव अकेला कार्य नहीं करता है, उसी प्रकार व्यक्तित्व का कोई तत्व अकेला कार्य नहीं करता। ये तत्व हैं– शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि। व्यक्तित्व के इन सभी तत्वों में एकता व एकीकरण होता है तथा ये सभी तत्व उसमें निहित होते हैं। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के मूल्यांकन हेतु उक्त सभी का सामूहिक प्रभाव ज्ञात करना आवश्यक होता है ताकि उसी पक्ष का मूल्यांकन किया जा सके। इस सम्बन्ध में प्रो. भाटिया का मत है– 'व्यक्तित्व मानव की सब शक्तियों और गुणों का संगठन व एकीकरण है।'

4. सामंजस्य– व्यक्ति को अपने जीवन में केवल बाहरी वातावरण से ही नहीं, अपितु अपने स्वयं के आंतरिक जीवन से भी सामंजस्य करना पड़ता है। सामंजस्य करने के कारण उसके व्यवहार में परिवर्तन होता है और इसके फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व में विभिन्नता दिखलाई पड़ने लगती है। यही वजह है कि विभिन्न व्यक्तियों जैसे, शिक्षक, डॉक्टर, व्यापारी के व्यवहार और व्यक्तित्व में अन्तर देखने को मिलता है। इस प्रकार व्यक्ति को समायोजन की दृष्टि से अपने व्यक्तित्व को अपनी स्थिति, दशा, वातावरण तथा परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ता है। संतुलित व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि उसका समायोजन संभव हो तथा इससे वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर सके।

5. दृढ़ इच्छा–शक्ति– यह व्यक्तित्व की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है। यह शक्ति व्यक्ति को जीवन में कठिनाइयों से संघर्ष कर उसके व्यक्तित्व को अच्छा एवं संतुलित बनाने की क्षमता देती है, जबकि दृढ़ इच्छा–शक्ति के अभाव में उसका जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है और उसका व्यक्तित्व विघटित हो जाता है।

6. निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर– वास्तव में मनुष्य के व्यवहार का सदैव एक निर्दिष्ट लक्ष्य एंवं निश्चित उद्देश्य होता है और वह सदैव उसी की प्राप्ति के लिये अग्रसर होता है। व्यक्ति के व्यवहार एवं उसके लक्ष्यों को ज्ञात कर हम उसके व्यक्तित्व का सहज में अनुमान लगा सकते हैं। इसी आधार पर प्रो. भाटिया का मत है कि 'व्यक्ति या व्यक्तित्व को समझने के लिये हमें इस बात पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि उसके लक्ष्य क्या हैं और उसे उनका कितना ज्ञान है?'

7. शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य– चूँकि मनुष्य मनो–शारीरिक प्राणी है इसलिये उसके अच्छे एवं संतुलित व्यक्तित्व के लिये अच्छे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का होना एक आवश्यक शर्त है।

8. विकास की निरन्तरता– विकास की निरन्तरता भी एक संतुलित एवं अच्छे व्यक्तित्व की विशेषता है। इस विशेषता के कारण व्यक्ति के विकास में कभी स्थिरता नहीं आती। आयु, समय और वातावरण के परिप्रेक्ष्य में कार्यों, विचारों, अनुभवों, स्थितियों आदि के परिवर्तन के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन आता जाता है। इस प्रकार व्यक्तित्व निरन्तर निर्माण की प्रक्रिया में रहता है तथा उसमें विकास की निरन्तरता देखने को मिलती है।

प्रश्न–5. आध्यात्मिक विकास से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व विकास में आध्यात्मिक विकास का वर्णन कीजिये।

उत्तर– आध्यात्मिक विकास– आध्यात्मिक विकास का अर्थ मानव जीवन की परिपक्वता से लिया जाता है, जिसमें दो तथ्य महत्वपूर्ण हैं– स्वयं को जानना तथा मानवता का विकास। विद्यार्थी आध्यात्मिक विकास से वर्तमान जीवन में सत्यता को पहचानते हैं तथा सचेतना का विकास करते हैं। बालक सचेतना तथा स्व अनुशासन में रहना सीखता है। बालक के आध्यात्मिक विकास से तात्पर्य बालक की उस आध्यात्मिकता का विकास करना है जो उसके अन्दर जन्म से ही विद्यमान रहती है बालक के अन्दर आध्यात्मिकता का गुण उसी तरह जन्म के समय विद्यमान रहता है जैसे शारीरिक तथा मानसिक विकास की संभावनाएँ।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने शिक्षा की एक सम्पूर्ण परिभाषा देते हुए उपरोक्त अवधारणा की पुष्टि इन शब्दों में की है– 'शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक एवं मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा को सर्वोत्तम गुणों के चतुर्मुखी विकास से आध्यात्मिकता इस दृष्टि से आत्मा के अपने उस विशिष्ट एवं विशुद्ध रूप से सम्बन्ध रखती है जिसकी सत्ता को परमात्मा के एक अंश के रूप में स्वीकार किया जाता है। सही तौर पर देखा जाये तो हम सभी का सृजक परमपिता परमात्मा ही है, उसी का अंश, आत्मिक तत्व रूप में, बच्चे में जन्म से ही विद्यमान रहता है। इसलिए बालक की प्रकृति जन्मजात से दैवीय होती है। बच्चे की यही दैवीय प्रकृति उसमें विद्यमान आध्यात्मिकता की वह चिंगारी है जिसे शिक्षा द्वारा प्रज्ज्वलित कर ज्वाला बनाने की बात की जाती है।'

यह भी सत्य है कि ईश्वर अपने निमित्त सृष्टि की रचना करता है और ऐसी रचना कर वह मनुष्य मात्र से यह आकांक्षा रखता है कि जिस निमित्त के लिए उनकी रचना की गयी है वे उन कार्यों को पूरा करें। उसके ऐसे निमित्त या वृहत उद्देश्य मुख्य रूप से दो ही हैं। एक तो उसके साथ उनका आत्मिक सम्बन्ध बना रहे तथा दूसरा उनका उसकी सृष्टि के साथ मधुर और सामंजस्य सम्बन्ध स्थापित रहे। यह तभी हो सकता है जबकि उन्हें इस बात का आभास हो कि वे तो उसी के अंश हैं और सृष्टि में जो कुछ है वह उसी का है। यही आभास होना आत्म ज्ञान या आत्म–अनुभूति कहलाता है और शिक्षा के द्वारा किये गये आध्यात्मिक विकास का भी यह मूल उद्देश्य है। दूसरे शब्दों में जब हम यह कहते हैं कि किसी बालक या मनुष्य विशेष का आध्यात्मिक विकास किया जाना चाहिये तो हमारा आशय यही होता है कि व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरूप का आभास करने हेतु आत्म अनुशासन या आत्म–अनुभूति करने की विशेषता को विकसित किया जाना चाहिये। उपरोक्त व्याख्या के आधार पर अब आध्यात्मिक विकास को निम्न शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है– 'आध्यात्मिक विकास से तात्पर्य व्यक्ति में विद्यमान उस आध्यात्मिकता का विकास करना है जो उसमें जन्मजात होती है और जिसके विकास के माध्यम से व्यक्ति को ऐसे आत्मज्ञान या आत्मानुभूति की प्राप्ति होती जो उसे ईश्वर तथा उसकी सृष्टि के साथ निकटता बनाये रखने में सहायक सिद्ध होती है।' प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के आत्मज्ञान या आत्मानुभूति की उपलब्धि का रास्ता कहाँ होकर जाता है? इस प्रकार का विकास संभव कैसे हो सकता है? इन प्रश्नों पर अगर गहराई से मंथन करके देखा जाये तो व्यवहार की शुद्धता एवं पवित्रता ही वह मार्ग है जिसका अनुसरण करके आध्यात्मिक विकास के लक्ष्य की उपलब्धि हो सकती है। गाँधी जी ने इसी तथ्य की ओर इशारा करते हुए अपनी आत्मकथा से स्पष्ट रूप से लिखा है– ''आत्मा का

विकास करना चरित्र का निर्माण करना है तथा व्यक्ति को ईश्वर के ज्ञान एवं आत्मानुभूति की ओर अग्रसर करना।''

अतः जब हम बालक में आध्यात्मिक विकास किस तरह होता है इस बात की जानकारी करना चाहते हैं या उसके विकास के लिए उपयुक्त पोषण तत्वों की तलाश करना चाहते हैं तो इसमें निश्चित रूप से उसमें चरित्र निर्माण कैसे होता है या कैसे किया जा सकता है इसी बात को लेकर आगे बढ़ना होगा। इस अर्थ में आध्यात्मिक विकास को चारित्रिक विकास का पर्याय कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

प्रश्न–6. बालकों में चरित्र निर्माण अवधारणा को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

बालक में चारित्रिक विकास किस प्रकार सम्भव होता है? समझाइये।

उत्तर– बालक का मूल्यपरक विकास– बालकों में मूल्यपरक विकास चारित्रिक और नैतिक गुणों के विकास के फलस्वरूप संभव होता है। सामाजिक मूल्य एवं मान्यताओं के आधार पर बालक का मूल्यपरक विकास उसे सदाचारी, कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार, धर्मपरायण और समाज के प्रति निष्ठावान बनाता है। वह उचित–अनुचित, हित–अहित, बुरे–भले की पहचान करने में समर्थ हो जाता है तथा विभिन्न परिस्थितियों में दायित्वपूर्ण ढंग से अच्छा से अच्छा कार्य सम्पन्न करता है।

बालक का चारित्रिक विकास– प्रारम्भ में बालक अच्छा–बुरा कुछ भी नहीं जानता, किन्तु दो वर्ष की आयु में उसमें अच्छे–बुरे की भावना का विकास हो जाता है। ढाई वर्ष की आयु में बच्चा कुछ क्रियायें करने और कुछ न करने का दृष्टिकोण बना लेता है। आगे चलकर वह कौनसा कार्य अच्छा है और कौनसा बुरा है इसका निर्णय अपने संतोष और स्वार्थ के आधार पर करता है। जब तीन वर्ष की आयु के बाद बच्चे की समझ बढ़ती है तो वह सामाजिक मान्यता के अनुरूप कार्य करने का प्रयास करता है। यदि कोई बालक सामाजिक नियमों के विरुद्ध कार्य करता है तो उसे शरारती कहा जाता है। कुछ बालक अपनी गल्तियां छिपाने की कोशिश करते हैं। कुछ गल्ती पकड़े जाने पर मान लेते हैं तथा दुःख और अफसोस व्यक्त करते हैं, किन्तु यह मात्र शाब्दिक होता है। वैसे छोटी आयु के बच्चे कल्पना और वास्तविकता की दोहरी दुनिया में रहते हैं। छः वर्ष की आयु में बच्चे खिलौने व दूसरी वस्तुओं की तोड़–फोड़ करते हैं, क्योंकि उनमें यह जानने की इच्छा होती है कि इनके अन्दर क्या है? आठ वर्ष की आयु तक बालक उचित–अनुचित और अच्छे–बुरे का समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेता है। बच्चा अपनी शरारत और गल्ती को बड़ों द्वारा क्षमा किये जाने का इच्छुक रहता है। बालक अपनी पसन्द की वस्तुयें संग्रह करने, रखने, देखने में रुचि लेता है। वह मूल्य, धन, क्रय आदि के बारे में समझ जाता है। वह न्याय, ईमानदारी, अच्छी आदतों की बातों में रुचि लेता है तथा झूठ बोलना, धोखा देना और छेटे जीव–जन्तुओं आदि को कष्ट देने की बात की निन्दा करता है।

9 से 12 वर्ष के बालक यद्यपि आवेग और आनन्द से प्रेरित होकर कार्य करते हैं, पर वह इस बात के प्रति सजग रहते हैं कि उनकी प्रतिक्रियाओं का दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस आयु समूह का बच्चा अपनी वस्तुओं के संग्रह, चयन आदान–प्रदान के प्रति सावधानी

रखता है। वह धन, रुपया–पैसा, वस्तुओं मूल्य के बारे में भली–भांति जान लेता है। वह अपने साथियों, परिवार और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत हो जाता है। वह दूसरों के व्यवहार पर टीका–टिप्पणी करता है, उनसे अच्छे व्यवहार की आशा रखता है, क्योंकि उसमें अच्छे और बुरे की तीव्र भावना घर कर जाती है किन्तु वह अपना व्यवहार अपने आदर्शों के अनुरूप नहीं रख पाता। इस आयु तक उसमें पूर्ण रूप से सदाचार संहिता नहीं बन पाती, यद्यपि जन्म के आत्म–केन्द्रित व्यवहार की अपेक्षा उसका व्यवहार बहुत कुछ समाज के आदर्शों और मान्यताओं के अनुरूप हो जाता है।

बालक का नैतिक विकास– नैतिकता अर्जित होती है। समाज में नैतिकता के मूल्य बालक को परम्परा से मिलते हैं। जब वह दूसरों के सम्पर्क में आता है तो उसे ज्ञात होता है कि दूसरे लोग उसके व्यवहार का मूल्यांकन किस प्रकार करते हैं। जैसे–जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, वह समाज के नीति–नियमों का पालन करता जाता है। चारित्रिक विकास की तरह नैतिकता का भी विकास क्रमशः होता है। जन्म के समय बालक न तो नैतिक होता है और न अनैतिक। उसका व्यवहार बहुत कुछ मूल्य प्रवृत्यात्मक होता है। उसमें किसी प्रकार के कर्त्तव्य के प्रति कोई ज्ञान नहीं होता। वह उचित–अनुचित का निर्णय इस बात से करता है कि उसे किस कार्य से आनन्द मिलता है या नहीं। पांच वर्ष का बच्चा समाज के नैतिक प्रतिमानों को थोड़ा–बहुत समझने लगता है और वह इसके अनुरूप अपना व्यवहार करने लगता है। प्रारम्भ में बच्चा केवल दण्ड के भय से ही समाज के प्रतिमानों का अनुसरण करता है, या फिर पुरस्कार और सामाजिक मान्यता पाने के लिये। बालक आज्ञा–पालन करना सीख जाता है। वह कार्य–व्यवहार के अच्छे–बुरे का मूल्यांकन करने लगता है। बाल्यावस्था में बालक को समाज के उचित–अनुचित प्रतिमानों का भली–भांति ज्ञान हो जाता है। पर आठ–नौ वर्ष की आयु के बाद बालक बहुत अधिक स्वार्थी हो जाता है। बालक का सामाजिक अनुभव बढ़ने लगता है। वह यह समझ जाता है कि सत्य और ईमानदारी की लोग बड़ाई करते हैं तथा असत्य और बेईमानी को बुरा बताते हुये उसकी निन्दा करते हैं। वह यह समझ जाता है कि लोग किस व्यवहार को मान्यता देते हैं और किसकी आलोचना करते है तथा क्यों? अतः बालक अपने व्यवहार को भी सही दिशा देता है किन्तु सभी परिस्थितियों में बालक एक जैसा व्यवहार नहीं करते।

प्रश्न–7. चरित्रवान युवाजन की विशेषतायें संक्षेप में बताइये।

अथवा

चरित्रवान युवाजन की तीन विशेषतायें बताइये।

उत्तर– चरित्रवान युवाजन सौम्य, विनम्र, मृदुभाषी, आज्ञाकारी होता है। वह सद्व्यवहार, कर्त्तव्यपालन, सत्य वचन की ओर ध्यान देता है। चरित्रवान युवाजन नियमित संयमी और निष्ठावान होता है। इसमें मानवीय गुण विद्यमान रहते हैं तथा नैतिक आचरण उसका लक्ष्य होता है। वह परपीड़न की अधमाई से बचता है तथा सदैव दूसरों की सहायता करने हेतु तत्पर रहता है।

प्रश्न–8. युवाजन के मूल्यपरक (नैतिक) विकास को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– नैतिकता अर्जित होती है। समाज में नैतिकता के मूल्य युवाजन को परम्परा से मिलते हैं। जब वह दूसरों के सम्पर्क में आता है तो उसे ज्ञात होता है कि दूसरे लोग उसके व्यवहार का मूल्यांकन किस तरह करते हैं? जैसे–जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, वह समाज के नीति–नियमों का पालन करता जाता है। चारित्रिक विकास की तरह नैतिकता का भी विकास क्रमशः होता है। जन्म के समय युवाजन न तो नैतिक होता है और न अनैतिक। उसका व्यवहार बहुत कुछ मूल्य प्रवृत्यात्मक होता है। उसमें किसी तरह के कर्त्तव्य, उचित, अनुचित का कोई ज्ञान नहीं होता है। बाद में परिवार व समाज से सीखता और प्रतिमानों का अनुकरण कर नैतिक विकास करता है। इस प्रकार वह अपने व्यवहार को सही एवं मान्य दिशा देता है।

प्रश्न–9. सुझाव चरित्र निर्माण में किस प्रकार सहायक है?

उत्तर– मनोवैज्ञानिक का मानना है कि सुझाव युवाजनों के चरित्र–निर्माण में बहुत महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है। शिक्षक युवाजनों का अंच्छे कार्य करने, अच्छी आदतें विकसित करने तथा अच्छे विचारों को धारण कर उन पर अनुकरण करने का सुझाव देता है। वह कई उदाहरण भी युवाजनों के सामने रखता है। वह सत्कर्म के प्रति रुचि जाग्रत करता है। इस प्रकार उसके सुझाव युवाजनों के नैतिक और चारित्रिक विकास में योगदान करते हैं।

प्रश्न–10. 'पुस्तकें नहीं अपितु शिक्षक का आदर्श चरित्र और उसके द्वारा शाला में संचालित पाठ्यक्रम सहभागी क्रियायें ही नैतिक शिक्षा का सशक्त माध्यम है।' इस कथन के समर्थन में कोई दो तर्क दीजिये।

उत्तर– नैतिक शिक्षा मानव जीवन का आधार है। इसका पाठ्यक्रम में समावेश अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिये। किन्तु इसके लिये पुस्तकों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। शिक्षक का आदर्श चरित्र और उसके द्वारा शाला में संचालित पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें ही नैतिक शिक्षा का सशक्त माध्यम होती है, क्योंकि शिक्षक का आदर्श चरित्र बच्चों पर अमिट छाप छोड़ता है और वह उनके द्वारा अनुकरणीय भी होता है। शाला में संचालित पाठ्यक्रम की सहगामी क्रियायें भी युवाजनों में नैतिक आचरण की आदतों का विकास करते हैं। इससे व्यवहार परिवर्तन में भी सहायता मिलती है। त्याग, कर्त्तव्य परायणता, परस्पर सहयोग की भावना का विकास पाठ्यक्रम सहभागी क्रियाओं से भली–भाँति सम्भव होता है।

प्रश्न–11. नैतिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य बताइये।

उत्तर– 1. नैतिक शिक्षा व्यक्ति को संवेदनशील बनाती है तथा उसमें साहस, धैर्य, अनुशासन और मानवीय गुणों का विकास करती है।

2. यह चरित्र निर्माण करती है तथा व्यक्ति को चरित्रवान और सदाचारी बनाने में सहायक होती है
3. नैतिक शिक्षा कर्त्तव्य–निष्ठा, सच्चाई, ईमानदारी, सदाचार, दूसरों की मदद और सद्–व्यवहार की प्रेरणा देती है।
4. यह नैतिक जीवन मूल्यों को उत्कृष्ट रूप में प्रतिष्ठित करती है।
5. शारीरिक–मानसिक शक्तियों का सही विकास करती है।
6. ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण एवं तर्क–शक्ति का विकास करती है।

7. नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का विकास तथा चरित्र निर्माण में महती भूमिका का निर्वहन।

प्रश्न–12. 'राष्ट्रीय चरित्र' हेतु कौन–कौनसे गुण आवश्यक हैं और क्यों?

उत्तर– राष्ट्रीय चरित्र हेतु निम्नांकित गुणों की आवश्यकता होती है–

1. राष्ट्र प्रेम, सदाचार एवं मानव जाति के प्रति उदार भावना।
2. धर्म निरपेक्षता, धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय एवं सहयोग की भावना।
3. कर्त्तव्य परायणता, निष्ठा, आज्ञा–पालन एवं अनुशासन प्रियता।
4. लोकतांत्रिक एवं समाजवादी आदर्शों के प्रति निष्ठा।
5. अच्छे नागरिक के सभी गुणों की गुण सम्पन्नता।
6. जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, सम्प्रदाय के हितों के ऊपर राष्ट्रीय हितों का मानना।
7. साँझी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति सम्मान एवं अभिवृद्धि एवं संरक्षण का प्रयास।
8. राष्ट्रीय विकास में परस्पर सहयोग।
9. सामाजिक व मानवीय मूल्यों का परिपालन।
10. राष्ट्रीयता की भावना के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भावना का होना।

राष्ट्रीय चरित्र देश के सामाजिक व आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है। बिना इसके देश में सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं होती है। आज ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं जापान आदि अपने राष्ट्रीय चरित्र के कारण प्रगति के पथ पर है। भारत में अभी इसका अभाव है।

प्रश्न–13. विद्यार्थियों में नैतिक शिक्षा से क्या उपलब्धियाँ सम्भव है? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– नैतिकता मानव चरित्र का अमूल्य–रत्न है। विद्यार्थियों में इसका विकास नैतिक शिक्षा से हो सकता है। निःसन्देह नैतिक शिक्षा छात्रों में उच्च चरित्र का विकास करती है तथा वे उच्च आदर्शों का पालन करना सीख जाते हैं। नैतिक शिक्षा छात्रों के व्यवहार एवं आचरण में सुधार कर उनके नैतिक–स्तर को ऊंचा उठाती है। वे मानवीय और सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं के अनुरूप अपना व्यवहार इस प्रकार बनाते हैं कि उनका चरित्र आदर्श बनता है तथा उनकी मनोवृत्तियों, आदतों और दृष्टिकोणों का व्यापक तथा उज्ज्वल स्वरूप निखरता है। इस प्रकार नैतिक उत्थान अनुशासन स्थापना में बहुत सहायक रहता है।

प्रश्न–14. पंचकोष क्या है? विवेचना कीजिये।

अथवा

कोष की परिभाषा दीजिए। कोष कितने होते हैं? उनके नाम बताइए।

उत्तर– त्रिगुण की संकल्पना और पंचकोष की अवधारणाएँ– मनुष्य ने बाधारहित पूर्ण स्वास्थ्य और अजेय व्यक्तित्व पाने के लिए हमेशा कड़ा परिश्रम किया है। व्यक्तित्व के मामले में मनोविज्ञान में विखण्डित दृष्टिकोण रहा है। फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास के लिए आधार के रूप में बचपन के अनुभवों पर जोर दिया। एडलर फ्रॉम और हेनरी व्यक्तित्व के लिए सामाजिक निर्धारकों को महत्वपूर्ण मानते हैं। एरिक्सन और आलपोर्ट ने कुछ क्षमताओं को प्राप्त करने की वकालत की है। मैस्लो मूल आवश्यकताओं पर जोर देते हैं और रोजर्स व्यक्ति के व्यक्तित्व की बात करते हैं। योग का व्यक्तित्व विकास के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण है ?

सांख्यदर्शन जिसे प्रायः सैद्धान्तिक योग के रूप में जाना जाता है, में तीन प्रकार के शरीरों की कल्पना की गई है, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। योग के अन्तर्गत यह माना गया है कि जो कुछ स्थूल शरीर को प्रभावित करता है, वह सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर दोनों को भी प्रभावित करता है। इसलिए संतुलित और सार्थक भौतिक जीवन से व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में पहुँचता है। अपने व्यक्तित्व की संरचना के अनुसार मनुष्य अपने अनुरूप योग–विधि अपना सकता है। राजसिक व्यक्ति कर्मयोग को अपना सकता है, सात्विक व्यक्ति भक्ति योग को और तामसिक व्यक्ति कर्म योग और ज्ञान योग को अपना सकता है। व्यक्ति तमस गुण के साथ प्रारंभ उसे रजस गुण में परिवर्तित कर सकता है तथा उसके बाद सत्व गुण में बदलकर अन्ततः गुणातीत/निरुद्ध अवस्था में पहुँचने से पहले सभी गुणों से परे हो जाता है।

डॉ. इन्द्रसेन (1960) ने कहा है व्यक्तित्व की भारतीय अवधारणा में इसकी सामान्य संरचना का विश्लेषण किया गया है जिसके अन्तर्गत इसके विकास की स्थितियों की खोज और उन्हें व्यवस्थित रूप से तैयार करने, तथा इसके उच्चतम विकास की गुणवत्ता व विशेषताओं का वर्णन मिलता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो यही है कि आदमी क्या है, वह क्या बन सकता है वह ऐसा कैसे बन सकता है।

तैत्तिरीय आरण्यक में शरीर के पंचकोषों की अवधारणा है : (1) अन्नमय कोष (स्थूल शरीर कोष), (2) प्राणमय कोष (क्रियात्मक शरीर कोष), (3) मनोमय कोष (भावनात्मक कोष), (4) विज्ञानमय कोष (बौद्धिक कोष) तथा आनन्दमय कोष (परमानंद कोष)। इन पाँच कोषों का सह–अस्तित्व सभी के पूर्ण सामंजस्य के साथ है।

तैत्तिरीय अरण्यक के अनुसार व्यक्ति को उचित अभ्यासों द्वारा हम सभी कोषों की ओर ध्यान देना होता है। पंचकोष की अवधारणा के अनुसार मनुष्य एक सम्पूर्ण सत्ता है, जिसमें सभी पंचकोष एक स्वस्थ मनुष्य में पूर्ण सामंजस्य बनाए रखते हैं। सभी कोषों के संवर्धन के लिए उपयुक्त योगाभ्यास अपनाने की आवश्यकता होती है। अष्टांग योग का अभ्यास समग्रता की भावना से किया जाए, तो सभी कोषों का संवर्धन समग्र रूप से होने लगता है और इस प्रक्रिया में हमें ऐसा व्यक्तित्व मिलता है, जो स्वयं में पूर्ण होता है।

केवल चिकित्सीय व्यवस्था के मामले में ही ऐसा होता है कि एक या अधिक विशेष कोषों में हम गड़बड़ी महसूस करते हैं तो अलग–अलग कोष के लिए संस्तुत प्रचलित अभ्यास को ही किया जाता है। उदाहरण के लिए– अन्नमय कोष में व्यवधान होने से हम आसन युक्ताहार (उचित और संतुलित सात्त्विक आहार) आदि संस्तुत कर सकते हैं, प्राणमय कोष में व्यवधान होने पर प्राणायाम और अन्य ऐसे ही अभ्यासों को संस्तुत किया जाता है, मनोमय कोष की समस्या के उपचार के लिए हैं– प्रत्याहार और प्रयोगात्मक योग क्रियाएँ, विज्ञानमय कोष में व्यवधान होने से धारणा और ध्यान की क्रियाएँ संस्तुत की जा सकती हैं तथा आनन्दमय कोष के लिए ध्यान संबंधी तकनीकें जो भावातीत/अनुभवातीत प्रकार की होती है, इनका अभ्यास किया जा सकता है।

प्रश्न–15. पंचकोष की अवधारणा लिखिए। रचनात्मक स्वास्थ्य के लिए इसका क्या योगदान है? समझाइये।

उत्तर– पंचकोष की अवधारणा और रचनात्मक स्वास्थ्य– तैत्तिरीय उपनिषद् में पंचकोष की अवधारणा और उनके विकास का वर्णन है। कोष का मतलब अस्तित्व की परतों से है। तैत्तिरीयोपनिषद् की आनन्दवल्ली में ब्रह्मानन्द को पाँच परतों से युक्त माना गया है। इसमें कहा गया है कि अन्नमय कोष से प्रारंभ होकर आनन्दमय कोष तक पहुँचकर हमारा अस्तित्व 5 परतों अथवा आवरणों से युक्त हो जाता है।

जिस स्थूल शरीर को हम देखते हैं, वह अन्नमय कोष है। प्राणिक ऊर्जा से बना सूक्ष्म शरीर प्राणमय कोष होता है, जो जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। तीसरा कोष मनोमय कोष या मानसिक आवरण है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य की भावनाएँ और आवेग विद्यमान होते हैं। चौथा विज्ञानमय कोष है। बौद्धिक विकास की यह अन्तिम अवस्था है जहाँ व्यक्ति सहज रूप से विवेकी बन जाता है। उसे किसी चीज (बात) को सिद्ध करने के लिए आनुभविक साक्ष्य या तर्क का सहारा नहीं लेना पड़ता अपितु वह सहज रूप में विवेक के द्वारा निर्णय करता है और अच्छे और बुरे में अन्तर कर देता है। अन्तिम परत आनंदमय कोष है। इसकी विशेषताएँ हैं– रचनात्मकता, प्रसन्नता और आनन्द। अब हम इन कोषों को विस्तार से समझते हैं।

(1) अन्नमयः कोषः आहार आवरण– अन्न का शाब्दिक अर्थ भोजन अथवा आहार से है। हालांकि अस्तित्व के निम्नतम स्तर अन्नमय कोष का तात्पर्य भौतिक अस्तित्व के जगत से है। जो कुछ भी हम अपनी इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों) के माध्यम से अनुभव करते हैं, वह भौतिक परत का भाग होता है।

भौतिक परत स्वयं में पूर्ण होती है। भौतिक संसार में होने के कारण वह आहार का उपयोग करती है। अन्ततः भौतिक अस्तित्व पदार्थ में ही विलीन हो जाता है। भौतिक शरीर हमारे अस्तित्व का सबसे बाहरी हिस्सा, जिसे अन्नमय कोष अथवा आहार आवरण के रूप में कहा गया है। यह भोजन का सार पिता से ग्रहण करके उत्पन्न होता है और माँ द्वारा लिए गए भोजन से गर्भ में पोषित होता है। आहार का उपयोग करते रहने से इसका अस्तित्व अनवरत बना रहता है और अन्त में मृत्यु के पश्चात् वापस जाकर पृथ्वी को उर्वर बनाने में योगदान देकर आहार बन जाता है। भौतिक संरचना का पदार्थ आहार से उत्पन्न होकर आहार में जीवित रहकर और पुनः आहार बन जाना स्वाभाविक ही आहार आवरण ही सबसे उत्तम नाम है। जो भोजन हम ग्रहण करते हैं वह मांसपेशियों, रक्तवाहिकाओं, नाड़ियों, रक्त और अस्थियों में परिवर्तित हो जाता है। यदि उचित अभ्यास के साथ उपयुक्त आहार या भोजन दिया जाता है तो अन्नमय कोष भलीभांति विकसित होता है। स्वस्थ विकास के लक्षण हैं, स्वास्थ्य, गतिशीलता, क्षमता और सहनशीलता। इन गुणों वाला व्यक्ति सभी प्रकार के कौशल आसानी से प्राप्त कर हाथ और आँख का उत्तम समन्वय कर लेता है। ग्रहण किया गया आहार विभिन्न पोषक तत्वों में परिवर्तित होकर हमें शारीरिक रूप से विकसित करता है। नित्य उपयुक्त आहार लेने की आदत, व्यायाम, खेलकूद, दौड़ना, टहलने और आसन आदि क्रियाओं के करने से अन्नमय कोष को विकसित किया जा सकता है।

(2) प्राणमय कोषः जैव अथवा प्राणाधार आवरण– पंच प्राण आयुर्वेद में वर्णित पाँच शारीरिक प्रणालियों के सदृश्य हैं, जो जैव या प्राणाधार कोष के रूप में माना जाता है। जो क्रियाएँ शरीर को जीवित रखने में सहायक होती हैंः वे हमारे श्वसन क्रिया की वायु के

कारण होती हैं। प्राणियों में जब तक यह प्रमुख सिद्धान्त कार्यरूप में परिणत होता रहता है, तब तक जीवन चलता रहता है। प्राणायाम और श्वसन सम्बन्धी अभ्यासों से प्राणमय कोष की गुणवत्ता में सुधार आता है। इसीलिए इसे प्राणाधार कोष कहा जाता है। पाँच प्राण, जिनसे मिलकर यह कोष बनता है, निम्नलिखित हैं–

(1) प्राण (ज्ञान के संकाय से संबंधित) यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाहरी वातावरण से प्राप्त पाँच प्रकार की संवेदनाओं के बोध को नियंत्रित करता है।

(2) अपान (उत्सर्जन का संकाय) शरीर से बाहर निकले हुए अपशिष्ट या जिन्हें शरीर स्वीकार नहीं करता जैसे पसीना, मूत्र आदि अपान की अभिव्यक्ति है।

(3) समान (पाचन संबंधी संकाय) यह आमाशय में एकत्र भोजन को पचाने का कार्य करता है।

(4) व्यान (परिसंचरण संबंधी संकाय) वह शक्ति जिससे पचे हुए भोजन से पोषक तत्वों को रक्त संचार द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों तक उपयुक्त रूप से पहुँचाया जाता है।

(5) उदान (सोच–विचार से संबंधित संकाय) व्यक्ति में उसके विचारों को वर्तमान स्तर से उठाने की क्षमता जिससे किसी नए सिद्धान्त अथवा विचार–आत्म–शिक्षा की क्षमता की कल्पना करना या उसकी सराहना की जा सके। व्यक्ति की वृद्धावस्था में ये पाँचों प्राण धीरे–धीरे कमजोर होने लगते हैं। यह जैव आवरण अन्नमय कोष को नियंत्रित और व्यवस्थित करता है। जब प्राण उपयुक्त रूप से कार्य नहीं करते हैं, तो भौतिक शरीर प्रभावित होता है। प्राणमय कोष के स्वस्थ विकास के लक्षण हैं : उत्साह, आवाज का कारगर उपयोग, शरीर की लचक, दृढ़ता, नेतृत्व के गुण, अनुशासन, ईमानदारी और उदारता।

(3) मनोमय कोष : मानसिक आवरण– मनोमय कोष मानस अथवा मन से निर्मित है। इसमें सोच–विचार, भावना और इच्छा शामिल हैं। मन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ स्वाद (जीभ), घ्राण (नाक), दृष्टि (आँख), श्रवण (कान) और स्पर्श (त्वचा) से मनोमय कोष, अथवा मन का आवरण बना है। मनुष्य का बंधन मन के कारण होता है, जिसमें सभी संवेदी परिणाम प्राप्त होते हैं। इसी में अच्छे और बुरे की पहचान होती है तथा अच्छे की इच्छा उत्पन्न होती है। यह कोष पहले वाले दोनों कोषों से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है, और यह उनको नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार यह ऊपर के दो कोषों (विज्ञानमय और आनन्दमय कोष) द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार यह मानव अस्तित्व के केन्द्र के रूप में स्थित है। इस कोष के भीतर उपचार के कई तौर–तरीके विद्यमान होते हैं जैसे सुगंध, संगीत, रंग, छदम् औषध चिकित्सा, आदि। अधिक कारगर होम्योपैथिक दवाएँ भी इसे प्रभावित करती हैं। यह मन प्राणमय कोष या प्राणवायु आवरण को भी नियंत्रित करता है। उदाहरण के लिए, जब मन किसी सदमें से परेशान होता है तो इससे प्राण और शरीर की क्रियाएँ प्रभावित हो जाती हैं। मन ज्ञानेन्द्रियों के प्रभाव को व्यक्त करता है। इसके भीतर अतीत की इच्छा और बुरी स्मृतियाँ संकलित होती हैं। नियमित प्रार्थना, और संकल्प करके मन की शक्ति में वृद्धि करना संभव

है। मन, बुद्धि और शरीर में गहरा संबंध होता है। मनोमय कोष के विकास के लिए अच्छे साहित्य का अध्ययन उपयोगी होता है जैसे कविताएँ, उपन्यास, निबंध और लेख आदि।

(4) विज्ञानमय कोष : बौद्धिक आवरण– विज्ञानमय कोष विज्ञान अथवा बुद्धि से निर्मित है, जिसके अन्तर्गत अच्छे व बुरे में अन्तर का निर्धारण होता है। इसकी रचना अधिक बौद्धिक प्रक्रियाओं से हुई है तथा धारणा संबंधी अंगों से सम्बद्ध होता है। निम्नलिखित कारणों से यह ज्ञानयुक्त आवरण स्वयं में सर्वोपरि नहीं हो सकता, यह परिवर्तनशील होता है और अनवरत स्थिर नहीं रहता तथा एक संज्ञाहीन और सीमित वस्तु है, यह हर समय मौजूद नहीं होता।

मन (मानस) तो ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाहरी संवेदनाओं को प्राप्त करता है और कर्मोन्द्रियों को सूचित कर प्रेरित करता है। यद्यपि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त संवेदनाएँ एक दूसरे से अलग तरह की होती है, उनका एक समेकित अनुभव यह होता है कि उन्हें मन को प्रेषित किया जाता है। बुद्धि विवेचक और कुशाग्र प्रक्रिया है, जिसमें प्राप्त संवेदनाओं की परख और तद्नुसार निर्णय होता है। यह मन को अपने निर्णय के विषय में सूचित भी कर देती है कि किस प्रकार की अनुक्रिया की जानी है। मन स्मृति के आधार पर अपने अनुभवों को सुख अथवा विषाद से जोड़ देता है। बुद्धि हालांकि अपनी सोचने की क्षमता से एक तर्क संगत निर्णय लेती है जो भले ही मन को अच्छा न लगता हो किन्तु यह अन्ततः व्यक्ति के लिए लाभदायक हो सकता है। मन सभी स्मृतियों और ज्ञान का भंडार होता है। अनुभव का यह भंडार मनुष्य के क्रियाकलाप में मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है। मन को आवेगों के अधिष्ठान के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। और बुद्धि उन क्षेत्रों की परख करने के लिए है, जिन्हें वे संचालित करते हैं। मन में केवल 'ज्ञात स्थानों' की यात्रा करने की क्षमता होती है किन्तु बुद्धि ज्ञान स्थलों में रहने के बावजूद नई खोजों की जाँच करके उन पर मनन करने और समझने के लिए ज्ञात स्थलों में प्रवेश कर सकती है।

(5) आनन्दमय कोष : परमानन्दमय आवरण– यह परमानन्द की स्थिति मानी जाती है, क्योंकि हम जाग्रत और स्वप्न की किसी भी अवस्था में होते हैं, तो हम पूर्व अनुभव के आधार पर ऐसी स्थिति में असीम शान्ति और परमानन्द का अनुभव करते हैं। आनन्दमय आवरण बौद्धिक आवरण को नियंत्रित करता है। जब अन्य सभी कोष पूर्ण विकसित होते हैं तो हमें अपनी अन्तरात्मा और बाह्यजगत् में समन्वय की अनुभूति होती है। इस सामंजस्य से हमें खुशी व आनन्द की अनुभूति होती है। ये पाँचों कोष व्यक्ति द्वारा पहने हुए वस्त्रों की परत जैसे होते हैं, जो पहनने वाले व्यक्ति से एकदम अलग होते हैं। इसलिए आत्मा अथवा वास्तविक अस्तित्व बाहरी अन्य पाँचों परतों से पूर्ण रूप से अलग होता है।

प्रश्न–16. पंचकोष के माध्यम से स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए योग का समेकित दृष्टिकोण विस्तारपूर्वक समझाइये।

उत्तर– स्वास्थ प्रबंधन के लिए योग का समेकित दृष्टिकोण– मनोमय कोष में स्थित बाधा प्राणमय कोष के माध्यम से शारीरिक (अन्नमय कोष) में फैल जाते हैं। इसलिए इन मनोदैहिक रोगों के उपचार में शीघ्र परिणाम प्राप्त करने के लिए हमारे अस्तित्व के इन सभी स्तरों पर कार्य करना अनिवार्य हो जाता है। अतः एकीकृत पद्धति केवल शारीरिक परत से संबंधित नहीं है जिसका प्रभाव अस्थाई रूप से हो, जैसा कि मनोदैहिक प्रकार के रोगों, जैसे दमा,

मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि के उपचार के लिए आधुनिक चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली दवाओं से हो रहा है। इसमें ऐसी तकनीकें सम्मिलित हैं, जो हमारे अस्तित्व के अलग–अलग आवरणों में संचालित होती है। योग संबंधी ग्रंथों और उपनिषदों में उपलब्ध बहुत सी क्रियाएँ, ऐसी हैं जिन्हें पाँचों कोषों के बहुत से मनोदैहिक रोगों का उपचार हो जाता है। प्रत्येक कोष से संबंधित क्रियाएँ नीचे दी गई हैं जिनका उपयोग एकीकृत स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए किया जा सकता है।

(क) अन्नमयक कोष (शारीरिक परत) सम्बन्धी क्रियाएँ– अन्नयमय कोष स्तर को व्यवस्थित रखने के लिए तथा रोगों के भौतिक लक्षण दूर करने के लिए स्वस्थ यौगिक आहार, क्रियाएँ, हलका व्यायाम और योगासन किए जाते हैं।

(1) क्रियाएँ– हमारे शरीर के भीतरी अंगों की स्वच्छता के लिए हठयोग में वर्णित ये यौगिक प्रक्रियाएँ हैं। इनसे निम्नलिखित प्रभाव होते हैं–

(क) अंगों को सक्रिय और मजबूत बनाना।
(ख) उनकी क्रियाओं को गतिशील बनाना।
(ग) विसंवेदीकरण
(घ) गहन आन्तरिक बोध लाना।

योग ग्रंथों में वर्णित मुख्य क्रियाओं में से कुछ क्रियाओं के सरलीकृत संस्करण जैसे कैथेटर नेति, जल नेति, कपालभ्राति, अग्निसार, वमन धौति (कुंजल क्रिया) आदि को विशेष रूप से उपयोग में लाया जाता है।

(2) शारीरिक व्यायाम और गतिविधि– शिथिलीकरण व्यायाम शरीर के प्रभावित अंगों को गतिशील व क्रियाशील बनाने के लिए बहुत आसान शारीरिक व्यायामों का प्रयोग किया जाता है। कुछ शारीरिक व्यायाम विशेष रोगों के उपचार हेतु अपनाए जाते हैं। जैसे–

(क) जोड़ों को लचीला बनाना।
(ख) मांसपेशियों का विस्तारण स्वाभाविक एवं शिथिलीकरण।
(ग) शक्ति में सुधार लाना।
(घ) शारीरिक क्षमता को विकसित करना।

(3) योगासन–शारीरिक मुद्राएँ– योगासन शारीरिक मुद्राएँ हैं, जिन्हें मन को शान्त बनाने के प्रयोजन से पशुओं की स्वाभाविक मुद्राओं का अनुकरण करके व्यवहार में लाया जाता है। इन आसनों के माध्यम से शरीर को सशक्त बनाया जाता है और इनसे गहन विश्रान्ति व मानसिक शान्ति मिलता है।

(ख) प्राणमय कोष (प्राण की परत)– प्राण मूल जीवन का सिद्धान्त है। प्राण पर नियंत्रण करने के लिए प्राणायाम की प्रक्रिया होती है। 'प्राणोपनिषद्' में वर्णित मानव प्रणाली में प्राणायाम की परिभाषा व्यापक रूप से दी गई है, जिससे प्राणायाम के पाँच स्वरूप बताए गए हैं। उसमें श्वसन के नियमन के माध्यम से पारस्परिक प्राणायाम का वर्णन किया गया है।

उचित श्वसन क्रिया के अभ्यास, क्रियाओं और प्राणायाम के माध्यम से हम प्राणमय कोष में क्रिया संचालित करने लगते हैं। उचित तरीके से प्राणायाम और श्वसन क्रिया के

अभ्यास से प्राणमय कोष में प्राणों के प्रवाह में होने वाले अवरोध दूर करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार इस प्राणमय कोष के स्तर पर रोगों को नियंत्रित किया जाता हैं।

(ग) मनोमय कोष संबंधी क्रियाएँ (मानसिक परत)–

(1) धारणा और ध्यान– इस स्तर पर प्रत्यक्ष उपचार पतंजलि के अष्टांग योग के अन्तिम तीन अंगों– धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा संभव हो सकता है। मन के संवर्धन की प्रक्रिया प्रारंभिक रूप से मन को किसी एक वस्तु पर एकाग्र रखने (धारणा) से पूरी होती है, उसके बाद मन को काफी लम्बे समय तक एक ही विचार (ध्यान) पर विश्रान्ति की स्थिति में रखा जाता है, जिससे अन्ततः चेतना की चरम स्थिति (समाधि) में पहुँच जाते हैं। ध्यानावस्था (ध्यान) की अवधि में एक लगातार अभ्यास से मन विश्रान्ति की अवस्था में आ जाता है। अनुभवातीत ध्यान (टी.एम.) जो एक साधारण मानकीकृत तकनीक है, के कई प्रकार के लाभ हैं, जो दिलचस्प और उल्लेखनीय होते हैं। बहुत से मनोदैहिक रोगों के उपचार में इसका प्रयोग लोकप्रिय हो गया है।

(2) संवेग नियंत्रण– मानसिक परेशानियों के मूल कारण से निपटने व उन पर नियंत्रण करने के लिए हम उन योग तकनीकों का प्रयोग करते हैं, जो हमारे संवेगों को नियंत्रित करती है। एक भक्ति सत्र द्वारा जिसमें प्रार्थना, मंत्रोच्चार, भजन, नामावली, धुन, स्रोत का पाठ होता है, एक ऐसा वातावरण बनता है, जिससे संवेगों को प्रकट किया जाता है और उनकी पहचान होती है। उन्हें क्षीण किया जाता है तथा शान्त किया जाता है। इस प्रकार भक्ति सत्र से संवेगों पर नियंत्रण हो जाता है। ऐसे नियंत्रण से संवेगात्मक असन्तुलन और उत्तेजना की लहर समाप्त हो जाती है।

(घ) विज्ञानमय कोष (विवेक अथवा प्रज्ञा सम्बन्धी परत)– भृगु इस अद्‌भुत खोज के बारे में वरुण को बताते हैं, गुरू प्रसन्न हैं और कहते हैं "आगे चलते रहो। तुम्हें कुछ कदम और आगे बढ़ना है, तुम सही दिशा में चल रहे हो।" अब गहन लम्बे तसस के माध्यम से भृगु को अनुभूति होती है कि यह विज्ञान (ज्ञान) ही है, जिससे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है और यही अन्तिम सत्य या वास्तविकता हो सकती है।

विज्ञानमय कोष हमारे अस्तित्व की चौथी परत है। हम सबके दो मन होते हैं। उदाहरण के लिए जैसे मनोमय कोष कहता है कि "यह सुन्दर गुलाब है, मैं इसे लेना चाहता हूँ" और आप अपने हाथ को फूल तोड़ने का आदेश करने लगते हो, किन्तु भीतरी मन कहता है "माफ करना, तुम इस फूल को नहीं तोड़ सकते, यह तुम्हारा नहीं है, यह तो पड़ोसी का बगीचा है" और तुम स्वयं को रोक लेते हो। यही आन्तरिक चेतना हमें लगातार मार्गदर्शन करती रहती है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, यही विज्ञानमय कोष है। यही मन का वह भाग है, जिसके माध्यम से मानव जाति इतने आगे बढ़ी है कि मनुष्य और पशु में अन्तर हो गया है। यह हमारी करणीय और अकारणीय के मध्य विभेद करने और करणीय का वरण करने की शक्ति है।

भर्तृहरि ने इस तथ्य को उजागर किया है कि यह संकाय, यानी विज्ञामय कोष किस प्रकार मनोमय कोष को लगातार मार्गदर्शन देता रहता है, इसे उन मूल प्रवृत्तियों पर महारत ल है, जो खाने, संभोग करने, डरने और सोने से संबंधित होती है। इसलिए हम जानते हैं

कि मनुष्य में ये सारी मूल प्रवृत्तियाँ मनोवैज्ञानिक होती हैं। उदाहरण के लिए, हमने पशुओं वाला वह चक्रीय व्यवहार खो दिया है जो यौन व्यवहार के लिए मद चक्र (गर्मी) उनमें अभी भी मौजूद है। स्वतंत्रता का यही तत्व हो जो सभी मनुष्यों में जन्मजात होता है, जो हमें यह विभेद करने का मार्गदर्शन देता है कि "अच्छा क्या है और बुरा क्या है", यानी "अच्छा और बुरा", "उचित और अनुचित", इसी ज्ञान से सुख (प्रसन्नता) मिलता है। इस प्रकार विज्ञानमय कोष विभेदक संकाय है।

विज्ञानमय कोष से क्रिया संचालित करने के लिए एक बुनियादी विचार महत्वपूर्ण है। उपनिषद् ऐसे ज्ञान के खजाने हैं, जो सभी दुःखों और परेशानियों के उद्धारक हैं। बहुत सी गलत आदतों और परेशानियों का कारण आन्तरिक ज्ञान की कमी है। प्रसन्नता का जैसा विश्लेषण तैत्तिरीय उपनिषद् में किया गया है, उसमें समस्त जीवित प्राणियों से संबंधित अधिकांश मौलिक समस्याओं का समाधान मौजूद है। इस विश्लेषण में पाठक व्यवस्थित रूपसे उस बुनियाद तक पहुँचता है, जहाँ से प्राण और मन का मिलन हो जाता है, यही आनन्दम कोष है। इससे व्यक्ति को लालच की प्रवृत्ति को परिवर्तित करने में सहायता मिलती है तथा सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है और फिर उस आनन्द की अनुभूति होने लगती है जो हमारे अपने भीतर मौजूद है, यही सन्निहित आनन्द की स्थिति होती है। परिणामस्वरूप, जीवन में मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है। ज्ञान से गहन आसक्ति, आग्रह, पसंद व नापसंद समाप्त हो जाते हैं, जो मन को विचलित करने के बुनियादी कारण होते हैं। इस ज्ञान (आत्मज्ञान या स्वानुभूति) से सार प्रकार की आधियाँ भी दूर हो जाती हैं।

(ङ) आनन्दमय कोष (परमानन्द की परत)– वरुण अब अपने पुत्र को तपस में वापस जाने का आदेश देता है, और इस समय भृगु कभी वापस नहीं लौटता है। गुरू यह देखने जाता है कि पुत्र वापस क्यों नहीं लौटा। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भृगु गहन आनन्द में पूर्ण रूप से तल्लीन है। वहाँ विज्ञान और मनोमय कोष का कोई व्यक्ति 'मैं' मौजूद नहीं है, जो पिता को अपनी अनुभूति के बारे में बता सके। भृगु अब उस अन्तिम सत्य के ज्ञान में स्थित हो गया था, जो आनन्द इस ब्रह्मांड का मौलिक उत्पादन है, जिससे हर वस्तु का सृजन हुआ है।

यह आनन्दमय कोष कहलाता है– हमारे अस्तित्व की परमानन्दमय परत। यह हमारे अस्तित्व का सबसे सूक्ष्म पहलू है, जिसमें अन्य कोई संवेग या भावना निहित नहीं होती, यह पूर्ण शान्ति की अवस्था है– पूर्ण समय और स्वास्थ्य की अवस्था है।

कोष	स्थिति	क्रिया
अन्नमय कोष	जैविक शरीर	चलचित्र डाउनलोड करें, फेसबुक पर पारिवारिक तस्वीरें, सप्ताहांत संबंधी सामूहिक तस्वीरें (पार्टी की) अपलोड करें।
प्राणमय कोष	ऊर्जा शरीर, शक्ति	स्वास्थ्य के उद्‌देश्य से खेलकूद, योग कार्यशालाओं में सम्मिलित हों।
मनोमय कोष	मानसिक शरीर, विचार और भावनाएँ	लोगों की मदद करें, सामाजिक गतिविधियों में सम्मिलित हों।

विज्ञानमय कोष	बौद्धिक शरीर, आध्यात्मिक विभेदीकरण और विवेक	ज्ञान की प्राप्ति।
आनन्दमय कोष	आनन्द शरीर शुद्ध चेतना	परमानन्द की स्थिति, शरीर अब भी चेतना में है।

इकाई 2

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न–1. शारीरिक गामक विकास में अभिभावकों की भूमिका को समझाइये।

अथवा

विकास के विभिन्न स्तरों पर व्यक्तित्व विकास को समझाइये।

अथवा

विभिन्न स्तरों पर व्यक्तित्व विकास की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– (I) शैशव–स्तर पर व्यक्तित्व विकास– कुछ विशेषज्ञों का यह मत है कि व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया ठीक माता के गर्भ में ही आरम्भ हो जाती है। यह माता के गर्भ धारण करते ही आरम्भ हो जाती है। परन्तु इस विचार की पुष्टि को लिये प्रयोगात्मक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। तथापि, जो वास्तविक एवं सुस्पष्ट है का वर्जन नहीं किया जा सकता।

शिशु तथा उसकी माता– एक शिशु का सबसे पहला मानवीय सम्पर्क उसका माता से होता है। शिशु की अपनी आवश्यकतायें होती हैं। परन्तु वह असहाय होता है। माता ही उसका आवश्यकताओं का उत्तर देती है। वह अधीर नहीं हो जाती क्योंकि वह एक माता है। उसका स्नेह और सम्बन्ध सकारात्मक संकेत देता है जिस कारण शिशु का सन्तोषजनक विकास होता है। निःसन्देह, व्यक्तिगत अन्तर होते हैं। परन्तु यह साबित करने के प्रमाण हैं कि एक शिशु चार मास की आयु तक अपनी माता तथा अन्य परिचित व्यक्तियों से विशेष सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। समय के व्यतीत होने के साथ, उसकी रुचियाँ कुछ चयनित व्यक्तियों तक सीमित हो जाती है। यह वास्तविक सामाजिक विकास के आरम्भ का सोपान है। शिशु की आवश्यकताओं के प्रति माता की निम्नलिखित प्रतिक्रियायें सकारात्मक परिणाम उपलब्ध करवाती हैं–

(i) बच्चे के रोने–चीखने पर तुरन्त प्रतिक्रिया।
(ii) बच्चे को भोजन देने के समय का ध्यान रखना।
(iii) बच्चे की शौच आवश्यताओं का ध्यान रखना।
(iv) बच्चे के वस्त्रों सम्बन्धी आवश्यकताओं का ध्यान रखना। बच्चे के मनोरंजन एवं खेल आवश्यकताओं का ध्यान रखना।
(v) शिशु की सामान्य आदतों का ध्यान रखना।
(vi) गाली–गलौच से परहेज करना तथा अच्छी आदतों के प्रोत्साहन देना।

(II) आरम्भिक बचपन के दौरान व्यक्तित्व विकास– ये विकास निम्नलिखित प्रकार से होते हैं–

(1) बच्चों से भली–भाँति व्यवहार करो– वह अतिसंवेदनशील होते हैं। प्रारम्भिक बचपन में मानवीय शिशु के साथ असंवेदनशील ढंग से व्यवहार न किया। वह बहुत भावुक होता है, उसे एक उत्तम व्यक्ति के रूप में तैयार किया जाये। उसकी आवश्यकता बहुत सरल परन्तु

अनेक होती हैं। उन्हें पूरा करने के लिये धैर्य की आवश्यकता होती है। व्यवहारवाद के पिता **जे.बी. वैटसन** का एक कथन इस प्रकार है– बच्चों से व्यवहार करने का एक तर्कसंगत ढंग है। उनसे युवा वयस्क की भाँति व्यवहार करें। उन्हें ध्यानपूर्वक नहलायें और वस्त्र पहनायें। आपका व्यवहार सदा वस्तुपरक एवं दयालु परन्तु दृढ़ होना चाहिये। उनका कभी आलिंगन न करें और न ही उनको चूमें, उन्हें अपनी गोद में कभी न बैठने दें। यदि आवश्यक है, तो रात को जब 'शुभ रात्रि' कहें तो उन्हें माथे पर चूम लें। सुबह उनसे हाथ मिलायें।

यदि उन्होंने एक कठिन कार्य को असामान्य रूप में अच्छे ढंग से किया है तो उन्हें सिर पर थपकी दें। इसका प्रयास करें। एक सप्ताह के समय में आप देखेंगे कि अपने बच्चे के साथ पूर्णतया वस्तुपरक होना कितना सरल है और साथ ही दयालु होना भी सरल होगा।

(2) उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की ओर ध्यान दें– प्रारम्भिक बचपन में बहुत से बच्चे अपने वातावरण से समायोजन करना सीख लेते हैं। यदि उनकी आवश्यकताओं का भली प्रकार ध्यान रखा जाता है, जिसके लिये माता सबसे अधिक उत्तरदायी है, तो बच्चे में कृतज्ञता की भावना विकसित हो जाती है। यह शिशु के व्यक्तित्व के विकास पर स्थायी चिन्ह छोड़ जाती है। माता–पिता को चाहिये कि बहुत प्यार एवं स्नेह के साथ बच्चे को, स्फाई से सम्बन्धित उनकी व्यक्तिगत आदतों, ठीक वस्त्र संहिता, अच्छी आहार आदतों आदि का ध्यान रखने की शिक्षा दें। उन्हें अपने से बड़ों का सम्मान करना सिखाया जायें।

(3) माता–पिता अच्छे सम्बन्ध बनाये रखें– माता–पिता में सम्बन्धों का बहुत महत्व है। अच्छे सम्बन्ध बनाये रखें। परिवार की अच्छी सामाजिक एवं वित्तीय स्थिति बच्चे के व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ती है।

(4) अभिजात वर्गी की राय– अध्ययन दर्शाते हैं कि अपने स्कूल के दिनों में बच्चे, अपने साथ खेलने वाले अन्य बच्चों की राय का भी ध्यान रखते हैं। परन्तु यह प्रतिक्रियायें परिवर्तनशील होती हैं। वह अन्य बच्चों की कथनी को स्थायी रूप में याद नहीं रखते। जब एक सहयोगी अधिक प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है, तो कभी–कभी ईर्ष्या जन्म लेती है।

(III) पूरवर्ती बचपन अथवा पूर्व–किशोरावस्था काल (प्रारम्भिक स्कूल के वर्ष में व्यक्तित्व विकास– औपचारिक स्कूली शिक्षा का काल छः वर्ष की आयु से आरम्भ होता है। प्रारम्भिक स्कूल के वर्ष आरम्भिक बाल्यवस्था से मेल खाते हैं। जब तक बच्चा, आरम्भिक स्कूल वर्षों (1 वर्ष से आगे) के दूसरे अर्ध–भाग में प्रवेश करता है तो बच्चा पूर्व–किशोरावस्था के चिन्ह दर्शाने लगता है। अध्ययन दर्शाते हैं कि प्रारम्भिक स्कूल वर्षों के दौरान अभिजात राय का समर्थन बढ़ता है। यह 11 से 15 वर्ष तक की आयु में सर्वोच्च सीमा पर पहुँच जाता है तथा इसके पश्चात् इसका पतन आरम्भ हो जाता है। विशेषज्ञों का विचार है कि मध्य बचपन, अभिजात मूल्यों के प्रति अधिकतम संवेदनशीलता का समय होता है। वर्तमान काल में संचार सुविधाओं की सरल उपलब्धता (टेलीफोन, मोबाइल फोन) के कारण साथियों से एक फोन कॉल द्वारा सम्पर्क सम्भव है। पूर्व–किशोरावस्था में शिशु लम्बे समय के लिये अपने साथियों से बातों में व्यस्त रहता है। जहाँ तक कि माता–पिता की राय थी मित्रों की राय के सामने फीकी पड़ जाती है। 'किशोरावस्था में युवक अपने निर्णय में अधिक विश्वास रखता है तथा वर्ग के आदर्शों के प्रति सहमति से सम्बन्धित दबावों का विरोध करने में अधिक प्रवृत्ति दिखाता है।'

शिशु पर अनेक प्रभाव उसके व्यक्तित्व के आकृति प्रदान करते हैं– इस काल के दौरान विभिन्न प्रभाव उसके व्यक्तित्व को आकृति देते हैं। स्कूल मुख्य योगदान प्रदान करता है। स्कूल का वातावरण बच्चे के व्यक्तित्व को प्रभावित करना आरम्भ कर देता है। स्कूल ही में उसकी खेल–मण्डली का विस्तार होता है। अध्यापक, माता–पिता से अधिक प्राथमिकता प्राप्त कर लेते हैं। बच्चा पहले सीखे अनुसार भूमिका प्राप्त कर लेता है। अपनी आयु–वर्ग के बच्चों में रहने से, वह अपने भविष्य में बढ़ी हुई आय के ढंग सीखता है। इसी सोपान पर वह मित्रता, नेतृत्व, सहानुभूति, समायोजन आदि के गुण प्राप्त कर लेता है।

परिवार में स्थान– परवर्ती बचपन के स्थान पर बच्चा परिवार में विशेष स्थान प्राप्त कर लेता है। परन्तु ध्यान रखा जाये कि बच्चा समानता और न्याय का पाठ सीखे। माता–पिता इस बात का ध्यान रखें कि बच्चा आवश्यकता से अधिक उन पर निर्भर न हो जाये। उसको खीट भाषा प्रयोग करने का परामर्श दिया जाये। वह स्वाग्रही होने के बहाने से हठी अथवा उग्र न बन जाये।

प्रश्न–2. शारीरिक गामक विकास के स्तर एवं विकास के लिये अवसर प्रदान करने में शिक्षकों की भूमिका का वर्णन कीजिये।

अथवा

शारीरिक – गत्यात्मक विकास के लिए अवसर उपलब्ध कराने में शिक्षकों की भूमिका को समझाइये।

अथवा

प्राथमिक स्कूल अध्यापक के लिये बाल विकास के ज्ञान का क्या महत्त्व है? संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

उत्तर– शिक्षा के तीन केन्द्रीय बिन्दु– शिशु–विकास अथवा शिशु मनोविज्ञान अध्यापक के लिये बहुत महत्व रखता है। विशेषतया प्रारम्भिक अथवा नर्सरी स्कूल के अध्यापक के लिये इसका महत्त्व और भी अधिक है। शिशु मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान, प्रारम्भिक अथवा नर्सरी स्कूल के अध्यापक का प्रभावी अध्यापन के उद्देश्यों की प्राप्ति एवं शिशु मार्ग–दर्शन में लाभप्रद ढंग से सहायता करेगा। शिक्षा के तीन केन्द्रीय बिन्दु निम्नलिखित हैं–

(1) सीखने वाला अथवा बच्चा, प्रारम्भिक अथवा नर्सरी स्कूल के अध्यापक के लिये मुख्य महत्त्व रखता है। अपना कार्य आरम्भ करने से पहले अध्यापक के लिये आवश्यक है कि वह बच्चे को जाने। शिशु विकास के सम्बन्ध में उसका ज्ञान अध्यापक के लिये स्व–मार्ग–दर्शन का कार्य करेगा। वह अपने अध्यापन की गति को शिशु–व्यवहार में, क्रमिक परिवर्तनों के अनुकूल रखेगा।

(2) शिशु विकास का ज्ञान अध्यापक का इस सम्बन्ध में मार्ग–दर्शन करेगा कि सीखने की प्रक्रिया कैसी चलती है? अध्यापक स्थिति की मांग–अनुसार परिवर्तनों को प्रभाव में ला सकता है।

(3) सीखने की स्थिति अथवा सीखने का वातावरण होता है। इसमें स्कूल, श्रेणी–कक्ष का वातावरण, माता–पिता की प्रत्याशायें तथा शिष्य की प्रतिक्रियायें आदि सम्मिलित होती हैं। शिशु मनोविज्ञान का ज्ञान, इन दायित्वों को पूरा करने के लिये मार्ग–दर्शक संकेत उपलब्ध करवायेगा।

प्राथमिक स्कूल अध्यापक के लिये बाल विकास के ज्ञान का महत्व– शिशु मनोविज्ञान अथवा शिशु विकास निम्नलिखित कारणों से अध्यापक के लिये महत्त्वपूर्ण है–

(1) **बच्चे को समझना–** यह सर्व मान्य तथ्य है कि एक अध्यापक तभी एक बच्चे को सच्ची शिक्षा दे सकता है जब उसे व्यक्तिगत अथवा सामूहिक शिशु विकास का ज्ञान हो। उदाहरण के रूप में अध्यापक को ज्ञान हो कि बच्चे कैसे सोचते हैं, उनके विकास की विभिन्न स्थितियों पर उनकी रुचियाँ कैसी होती हैं तथा शैक्षिक कार्यों के लिये उनकी शक्तियों का सर्वोत्तम उपयोग कैसे किया जा सकता है? वास्तव में अध्यापन की तकनीकों में सभी संशोधन, अध्यापन और सीखने की प्रक्रिया में मनोविज्ञान के ज्ञान के बढ़ते हुये उपयोग के परिणाम हैं।

(2) **व्यक्तिगत अन्तरों को समझना–** पहले यह कल्पना की जाती थी कि सभी बच्चे लगभग एक जैसे होते हैं तथा इसलिये सबसे उन्नति की एक ही गति की आशा की जाती थी। इसके अतिरिक्त, यह भी सोचा जाता था कि बच्चे का मन एक साफ स्लेट की भाँति होता है तथा उस पर कुछ भी लिखा जा सकता है। अब मनोविज्ञान के ज्ञान के कारण हम जानते हैं कि विभिन्न बच्चों के बीच स्पष्ट अन्तर होता है तथा प्रकृति द्वारा प्रत्येक बच्चे को विशेष क्षमतायें दी होती हैं, जिन्हें विकसित करने में अध्यापक केवल सहायता कर सकता है। शिक्षा एवं अध्यापन की प्रक्रिया में मनोविज्ञान का स्पष्ट योगदान इसी में निहित है।

(3) **बच्चों की मूल–प्रवृत्तियों को समझना तथा प्रयोग करना–** मूल–प्रवृत्तियाँ कार्य का स्त्रोत होती है। वास्तविक शिक्षा मूल प्रवृत्तियों की परिशुद्धता में निहित हो। मनोविज्ञान के ज्ञान द्वारा ही अध्यापक विद्यार्थियों की विभिन्न मूल प्रवृत्तियों को जानने के योग्य होते हैं तथा तभी वह उनकी परिशुद्धता द्वारा उनके विकास को सुनिश्चित करने में सफल होते हैं।

(4) **प्राप्य लक्ष्यों का निर्माण–** वास्तव में, मनोविज्ञान के क्षेत्र में शिक्षा के लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों के निर्माण से आशा की जाती है कि वह बहुत आदर्शवादी लक्ष्यों का निर्माण करेंगे जिनकी प्राप्ति असम्भव होगी। मनोविज्ञान उन आदर्शों को तर्क संगत एवं प्राप्य सीमाओं के बीच रखता है। इस प्रकार मनोविज्ञान, शिक्षा के वास्तविक लक्ष्यों के निर्माण में अध्यापक की सहायता करता है।

(5) **सीखने के नियमों के सम्बन्ध में ज्ञान उपलब्ध करवाता है–** अध्यापन की सर्वोत्तम परिभाषा यही हो सकती है कि यह बच्चों के सीखने का कारण बनती है। मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापकों को उन विधियों अथवा ढंगों की शिक्षा देता है जिन द्वारा सर्वोत्तम ढंग से सीखा जा सकता है। मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक की अध्यापन के ऐसे ढंगों और तकनीकों की खोज में सहायता करता है जोकि सीखने के नियमों के अनुकूल हैं।

प्रश्न–3. बालक की संवृद्धि एवं विकास पर आनुवंशिकता के प्रभाव का वर्णन कीजिये।

उत्तर– बालक की शारीरिक संवृद्धि तथा विकास पर आनुवंशिकता की भूमिका का प्रभाव– जहाँ तक बालक की शारीरिक–संरचना का प्रश्न है, यह देखने में आया है कि इस विषय में पिट्यूटरी–ग्रन्थि की अति प्रमुख भूमिका रहती है तथा यह मस्तिष्क के नीचे अथवा इसके आकार पर स्थित रहता है। इसके अग्रिम भाग से जो रासायनिक पदार्थ निकलता है, उसे संवृद्धि हॉरमोन कहते हैं। वस्तुतः यही हारमोन, जिसका आधार बालक की आनुवंशिकता

होती है। यही बालक की शारीरिक संवृद्धि तथा विकास के मूल स्वरूप को निर्धारित करता है। अब यदि इस ग्रन्थि से निकलने वाले रासायनिक पदार्थ अथवा हॉर्मोन्स की मात्रा में अपेक्षाकृत कुछ कमी ही रहती है, तब बालक की शारीरिक संरचना का स्वरूप भी सामान्य संरचना से कम ही रहता है। यदि यह मात्रा कुछ और कम हो जाती है, तब प्रायः बालक की शारीरिक संरचना और भी कम पड़ जाती है। ऐसी कुछ स्थितियों में केवल बालक का आकार छोटा व नाटा अथवा ठिगना ही रह जाता है।

यदि इस ग्रन्थि के हॉरमोन का अन्तःस्राव सामान्य रहता है, तब बालक की शारीरिक संरचना का स्वरूप भी अधिकांशतः सामान्य अथवा औसत स्तर का रहता है। अब यदि किसी कारण से इसकी मात्रा सामान्य मात्रा से कुछ अधिक हो जाती है, तब बालक की शरीर-संरचना का आकार तद्नुसार सामान्य संरचना से कुछ अधिक ही रहता है अथवा ऐसी स्थिति में बालक की अपेक्षाकृत अधिक लम्बा-चौड़ा व भारी-भरकम शारीरिक संरचना वाला होता है। इस प्रकार पीयूष-ग्रान्थि द्वारा हॉरमोन का स्त्राव शारीरिक रचना को एक प्रकार से प्रत्यक्षतः प्रभावित करते देखा जाता है। इसके अतिरिक्त, बालक के शरीर में सक्रिय अन्य अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ भी बालक की शारीरिक संवृद्धि व विकास को किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रभावित करती हैं। इनमें अबन्टु ग्रन्थि का विशेष कार्य चयापचय का नियमन करना व शारीरिक अंगों को ऊर्जा प्रदान करना होता है। यह हृदय की गति तथा रक्तचाप को भी निर्धारित तथा संचालित करता है। पैराथाइरॉयड ग्रन्थि शरीर में कैल्शियम तथा फॉस्फोरस की मात्रा को सन्तुलित करती है, जिससे शरीर में माँस-पेशियों के कार्यों, हड्डियों की वृद्धि तथा दाँतों की रचना का कार्य भी सम्पन्न होता है।

थाईमस ग्रन्थि का मुख्य कार्य बालक की आरम्भिक वृद्धि को नियमित करना तथा उसमें लैंगिक (sexual) विकास को यौवन काल तक के लिये स्थगित करना होता है। जनन-ग्रन्थि बालक एवं बालिका में लिंगभेद के आधार पर उनमें गौण लैंगिक लक्षणों को विकसित करती हैं। इससे निकलने वाले हॉरमोनसे बालिकाओं में स्तन एवं नितम्ब आदि उभरने लगते हैं तथा बालकों में मूँछें एवं दाढ़ी आने लगती हैं। वस्तुतः बालक और बालिका में जनन-ग्रन्थियों से अलग-अलग प्रकार के हॉरमोन निकलते हैं, जिनके कारण ही उनमें अलग-अलग लैंगिक लक्षण विकसित होते देखे जाते हैं।

इसी प्रकार एड्रीनल ग्रन्थि तथा पैनक्रियास ग्रन्थि भी बालक की अनेक शारीरिक क्रियाओं के स्वरूप को प्रभावित करती है, जिसके प्रभाव के कारण बालक की शारीरिक क्रियाओं में कुछ व्यक्तिगत भेद दृष्टिगत होते हैं।

प्रश्न–4. बालक की शारीरिक संवृद्धि एवं विकास में पर्यावरण की भूमिका का वर्णन कीजिये।

अथवा

बालक की शारीरिक वृद्धि को पर्यावरण के कौन-कौन से घटक प्रभावित करते हैं? संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर– बालक की शारीरिक संवृद्धि तथा विकास में पर्यावरण–सम्बन्धी भूमिका– बालक क पर्यावरण-सम्बन्धी कुछ अन्य महत्वपूर्ण स्थितियाँ, जैसे- पोषण, संवेगात्मक पोषण, माता-

पिता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, बालक की बुद्धिलब्धि, पारिवारिक प्रभाव व प्रतिष्ठा, संजातीयता, बालक का स्वास्थ्य व उसकी शारीरिक संरचना। वस्तुतः बालक की शारीरिक संरचना को प्रभावित करने वाले इन सभी निर्धारकों का यहाँ संक्षेप में वितरण प्रस्तुत अति तर्कसंगत अथवा प्रासंगिक लगता है।

बालक की शारीरिक संवृद्धि को प्रभावित करने वाली पर्यावरण–सम्बन्धी विभिन्न स्थितियों की भूमिका– ये स्थितियाँ मुख्यतः निम्नलिखित हैं–

(1) पोषण– सामान्यतः बालक के स्वास्थ्य तथा उसकी शारीरिक संवृद्धि पर पौष्टिक आहार अथवा पोषण का पर्याप्त रूप से प्रभाव पड़ता है। अतः एक बालक सामान्यतः जितना अधिक पौष्टिक आहार का सेवन करता है, अपेक्षाकृत उसकी शारीरिक संवृद्धि व विकास में लगभग उतना ही अधिक प्रभाव पड़ते देखा जाता है। पौष्टिक आहार लेते रहने पर बालक में यौवन के लक्षण भी प्रायः समयपूर्व ही परिलक्षित होने लगते हैं।

इसके विपरीत, जो बालक कुपोषण से ग्रस्त होते हैं, अथवा जिनको पर्याप्त पौष्टिक आहार नहीं मिलने पाता, उनकी शारीरिक संवृद्धि कुछ मंद ही रहती है और उनका शारीरिक विकास सामान्य स्तर से कुछ पिछड़ जाता है और उनमें किशोरावस्था सम्बन्धी लक्षण भी विलम्ब से ही उभरते व विकसित होते देखे जाते हैं।

(2) संवेगात्मक पोषण– जिन बालकों को अपने पारिवारिक परिवेश में अपने माता-पिता का अपेक्षाकृत अधिक स्नेह व अनुराग भाव प्राप्त होता रहता है अथवा जिनका पालन-पोषण सामान्यतः अधिक स्नेहपूर्ण मनोभाव के साथ होता रहता है, ऐसे बालकों का शारीरिक स्वास्थ्य व विकास भी अपेक्षाकृत सामान्य से कुछ अधिक ही देखने में आता है। इससे उनकी संवृद्धि के विभव में भी बढ़ोत्तरी होती है और उनमें यौवन काल के लक्षण भी अपेक्षाकृत शीघ्र ही प्रकट होने लगते हैं।

(3) सामाजिक-आर्थिक स्तर– सामान्यतः अनुभव किया जाता है कि जब समान आयु वाले बालकों के स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, तब ऐसा देखने में आता है कि जो बालक उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के होते हैं, उनका शारीरिक स्वास्थ्य भी कुछ अधिक ही होता है। इसके विपरीत, जो बालक प्रायः निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के परिवारों से आते हैं, उनका सामान्य स्वास्थ्य भी प्रायः कुपोषण आदि के कारण कुछ निम्न श्रेणी का ही होता है। स्पष्टतः ऐसी स्थिति में उनकी शारीरिक संवृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते देखा जाता है जबकि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले बालकों का शारीरिक विकास भी अपेक्षाकृत कुछ अधिक ही रहता है।

(4) बालक का सामान्य स्वास्थ्य– बालक की शारीरिक संवृद्धि पर उसके स्वास्थ्य के स्तर का भी बहुत प्रभाव पड़ते देखा जाता है। अतः जो बालक प्रायः अधिक स्वस्थ होते हैं उनका शारीरिक विकास अपेक्षाकृत कुछ उच्च स्तर का ही होता है, अथवा वे कुछ अधिक लम्बे व कभी-कभी भारी-भरकम भी देखने में आते हैं। इसके विपरीत, जिस बालक का स्वास्थ्य निम्न स्तर का होता है, अथवा जो निर्बल व दुर्बल होता है, उसका शारीरिक विकास भी अपेक्षाकृत कुछ मन्द ही रहता है। इसके अतिरिक्त, दुर्बल स्वास्थ्य वाले बालक

अधिकांशतः बीमार भी पड़ जाते हैं। इसका भी उनकी शारीरिक संवृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव ही पड़ते देखा जाता है।

(5) शारीरिक संरचना अथवा गठन का स्वरूप– साधाराणतः बालकों को उनकी शारीरिक रचना के आधार पर व्यापक रूप से तीन मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है– (i) गोलकाय, (ii) मध्यस्थकाय तथा (iii) लम्बाकृतिकाय।

मूलरूप से इस प्रकार की शारीरिक संरचनाओं वाले बालकों की शारीरिक संवृद्धि का स्वरूप भी प्रायः कुछ अपनी ही निश्चित प्रकार का होता है, अथवा उसकी संवृद्धि का क्रम कुछ अपने ही ढंग से निर्धारित होता है। अतः एक बाक की विशिष्ट शारीरिक संरचना भी उसकी शारीरिक संवृद्धि के क्रम को प्रभावित करती रहती है।

(6) लिंग–भेद– एक बालक की शारीरिक संवृद्धि पर उसके लिंग–भेद का भी पर्याप्त मात्रा में प्रभाव पड़ते देखा जाता है। इस आधार पर एक बालक सामान्यतः एक बालिका के अपेक्षा कुछ अधिक लम्बा व अधिक याद वाला ही होता है, जबकि किशोरावस्था के आरम्भिक काल में बालिकाओं में अधिक तीव्र गति से यौवन काल के लक्षण उभरने लगते हैं। इस काल में उनमें शारीरिक परिपक्वता अपेक्षाकृत शीघ्र ही देखने में आती है। वैसे पश्चात्–किशोरावस्था में सामान्यतः लड़के अपेक्षाकृत लड़कियों से कुछ अधिक ही भारी होते हैं क्योंकि उनकी हड्डियों में कुछ अधिक भारीपन रहता है।

(7) संजातीयता का प्रभाव– प्रत्येक संजातीय समूह की कुछ अपनी ही विशिष्ट आनुवंशिकता तथा संस्कृति होती है। इनका सम्मिलित अथवा मिश्रित प्रभाव बालक की शारीरिक संरचना व उसकी संवृद्धि के स्वरूप को भी कुछ अपने ही ढंग से प्रभावित करते देखा जाता है। वस्तुतः प्रत्येक संजातीय समूह के बालक को पालन–पोषण की पद्धति व रहन–सहन तथा खान–पान की पद्धति कुछ अपने ही ढंग की होती है। अतः इनका बालकों की संवृद्धि पर प्रत्यक्षतः प्रभाव पड़ते देखा जाता है।

प्रश्न–5. बालक के शारीरिक गत्यात्मक विकास में खेलों की भूमिका का वर्णन कीजिये।

अथवा

बालक के मानसिक एवं बौद्धिक विकास में खेल की भूमिका का वर्णन कीजिए।

उत्तर– बालक के मानसिक व बौद्धिक विकास में खेल की भूमिका– शारीरिक विकास के साथ–साथ खेल क्रियाएँ बालकों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए उपयुक्त आधार और अवसर प्रदान करने का प्रयत्न करती हैं। उनकी इस प्रकार की भूमिका को संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

(1) खेल क्रियाएँ स्नायु संस्थान के उचित विकास तथा उसकी क्रियाशीलता में काफी सहयोग देती हैं। मस्तिष्क, रीढ़ की हड्डी तथा नाड़ी तन्त्र का समुचित विकास एवं क्रियाशीलता, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों के उचित विकास एवं क्रियाशीलता में वृद्धि का कारण बनती है। इस प्रकार खेल क्रियाएँ मानसिक विकास के लिए एक सुदृढ़ शारीरिक आधार तैयार करने की भूमिका अच्छी तरह निभाने का प्रयास करती हैं।

(2) शारीरिक रूप से स्वस्थ एवं नीरोग रखकर मस्तिष्क को स्वस्थ, सजग एवं क्रियाशील बनाने का उत्तरदायित्व खेल क्रियाओं द्वारा बखूबी निभाया जा सकता है। स्वस्थ

शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है यह उक्ति खेल क्रियाओं के माध्यम से शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप खरी उतरती है।

(3) बालकों की संवेदना और प्रत्यक्षीकरण योग्यताओं के उचित विकास में खेल क्रियाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विभिन्न प्रकार की खेल क्रियाएँ जिन्हें बच्चे स्वाभाविक रूप से खेलते हैं अथवा जिनका आयोजन विशेष तौर पर उनकी इन योग्यताओं की वृद्धि हेतु किया जाता है, बालकों की श्रवण दृष्टि, स्पर्श, घ्राण या सूँघना, स्वाद आदि से सम्बन्धित संवेदना और प्रत्यक्षीकरण शक्तियों के उचित विकास में पर्याप्त सहयोग प्रदान करती हैं।

(4) संप्रत्ययों अथवा संकल्पनाओं के उचित विकास हेतु भी खेल क्रियाएँ सहयोग प्रदान करती हैं। बच्चे बहुत–सी वस्तुओं, विचारों तथा व्यक्तियों के बारे में जो संप्रत्यय बनाते हैं, उन्हें वे अपनी संगी–साथियों के साथ खेल–खेल में ही सीखते हैं। कुछ विशेष क्रियाओं का आयोजन भी इस कार्य हेतु किया जा सकता है और परिणामस्वरूप उनमें विभिन्न प्रकार के संप्रत्ययों जैसे आकार तथा स्वरूप से सम्बन्धित संप्रत्यय, रंगों की पहचान, समय, दूरी, छोटा–बड़ा, हल्का–भारी, अंक संख्या आदि से सम्बन्धित संप्रत्यय का विकास आसानी से किया जा सकता है।

(5) भाषा के उचित विकास में भी खेल क्रियाएँ महत्वपूर्ण सहयोग दे सकती हैं। भाषा और साहित्य सम्बन्धी पाठान्तर क्रियाओं तथा ऐसी खेल–क्रियाओं द्वारा जिनसे शब्द भंडार तथा भाषा सम्बन्धी योग्यता को बढ़ाने के अवसर दिये जा सकते हैं, भाषा विकास की प्रक्रिया को तेज कर बालकों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास करने में सहायता प्राप्त की जा सकती है।

प्रश्न–6. बालक के मानसिक विकास की विवेचना कीजिये।

अथवा

बालक की विभिन्न अवस्थाओं के होने वाले मानसिक विकास का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

उत्तर– बालक का मानसिक विकास– मानसिक विकास स्वतंत्र रूप से कुछ नही है। वह तो शरीर के अन्य विकास स्तरों का योग एंव अभिव्यक्ति है। बालक की क्रिया–प्रतिक्रिया से उत्पन्न व्यवहार के द्वारा ही बालक के मानसिक विकास का पता चलता है। मानसिक विकास में प्रतिमानित अनुक्रियायें निहित होती हैं। इसमें सहयोग तथा प्रतिक्रिया द्वारा व्यवहार का प्रकाशन होता है। इन अनुक्रियाओं द्वारा संवेदना, प्रतिबोध, स्मृति, कल्पना और तर्क आदि मानसिक व्यवहार का प्रकाशन होता हैं। जैसे–जैसे बालक के व्यवहार–प्रतिमानों की प्रगति होती है वैसे–वैसे व्यवहार की प्रतिक्रियाओं में मानसिक विकास दिखलाई पड़ने लगता हैं। मानसिक विकास एक सतत प्रक्रिया है और विकास की सभी अवस्थाओं में निरन्तर चलती रहती है। जन्म के बाद व्यक्ति में मानसिक विकास और शारीरिक परिपक्वता दोनों एक साथ बढ़ते हैं।

नवजात शिशु की मानासिक क्षमता– वैसे जन्म के समय बच्चा निस्सहाय होता है। वह अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दूसरों पर निर्भर रहता है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि जन्म के समय बच्चे के अंग–प्रत्यंग सत्ताहीन होते हैं। नवजात शिशु में अनेक क्रियायें क्रियाशील होती हैं, जैसे तेज आवाज पर चौंक जाना, हाथ में दी गई वस्तु को पकड़ना, छींकना, हिचकी लेना, भोजन पचाना, बाहों का इधर–उधर हिलाना आदि। इस

प्रकार बच्चा अनेक बाह्य उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रियायें करता है। पहले तो ये सभी क्रियायें प्रत्यावर्तित प्रतिक्रियायें होती हैं जो बालक को अपने वातावरण के प्रति सचेत करती हैं। मां के गर्भ में भी बालक का जन्म से पूर्व कुछ न कुछ विकास हो चुकता है। स्नायुमण्डल का विकास इसी अवस्था में होता है। जैसे–जैसे बच्चे का मानसिक विकास होता है, उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन होते जाते हैं और ये प्रतिक्रियायें अपेक्षाकृत जटिल होती जाती हैं। कुछ मानसिक प्रतिक्रियायें हैं–स्मरण, तर्क, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना आदि, किन्तु इनमें से किसी का विकास स्वतंत्र रूप से ही नहीं होता। विकास निरन्तर होता रहता है, भले ही विकास की कुछ अवस्थाओं या किसी वर्षायु में दूसरी अवस्थाओं की अपेक्षा विकास की गति अधिक हो या कम। यहां हम बालक के मानसिक विकास की कुछ प्रमुख अवस्थाओं का उल्लेख कर रहे हैं–

(i) शैशवावस्था– जन्म के समय बच्चा न तो बुद्धिमान होता है और न बुद्धिहीन। जब वह वास्तविक जगत के सम्पर्क में आता है तो उसमें चेतना का संचार होता है। जीवन के पहले तीन वर्षों में शिशु के व्यवहार से यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि वह अपनी आवश्यकताओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करता है और यह चाहता है कि उसे एक व्यक्ति के रूप में समाज द्वारा मान्यता मिले। वह अपने वातावरण की सभी वस्तुओं और सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के प्रति कौतूहल प्रकट करता है और इनसे आत्मीयकरण करने का प्रयास करता है। इस प्रकार इससे वह 'मैं' और 'तुम' के भेद को स्पष्ट कर लेता है। तीन से छः वर्ष के बालक का मानसिक विकास और भी तेजी से होने लगता है। इसका प्रमुख कारण यह होता है कि उसमें भाषा और बोलने की शक्ति में वृद्धि हो जाती है। फिर भी वह बहुत कुछ कल्पना–जगत में विद्यमान रहता है। इस आयु में शिशु में विचार शक्ति थोड़ी–बहुत आ जाती है और वह दूसरों के अनुभव का लाभ उठा सकता है। सोरेमन कहते हैं– 'जैसे–जैसे शिशु प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष बढ़ता जाता है, वैसे–वैसे उसकी मानसिक शक्तियों में परिवर्तन होता जाता है।'

(ii) बाल्यावस्था– बाल्यावस्था में बालक विद्यालय में सामाजिक और बौद्धिक दोनों प्रकार का ज्ञान प्राप्त करता है। उसकी ज्ञानेन्द्रियां पर्याप्त विकसित हो चुकती हैं। अतः वह प्रत्यक्षीकरण कर सकता है। एकाग्रता, स्मरण–शक्ति और रचनात्मक चिन्तन की प्रवृत्ति भी उसमें बढ़ जाती है। अब वह केवल अपने परिवार तक सीमित नहीं रहता, बल्कि विद्यालय, शिक्षक, संगी–साथी, सभी के प्रति रुचि लेने लगता है। उसमें नायक–पूजा की प्रवृत्ति का उदय होता है और वह जिन व्यक्तियों की प्रशंसा करता है उनका अनुकरण भी करता है। वह दूसरों से विचारों का आदान–प्रदान भी करता है। इस काल में वह अपनी जिज्ञासा शांत करने हेतु अपने अभिभावकों व शिक्षकों से अनेक प्रकार के प्रश्न पूंछता है। उसका सूक्ष्म चिंतन प्रारम्भ हो जाता है तथा समस्या पर चिन्तन करके कारण और निदान खोजने का प्रयत्न करता है।

इस अवस्था में 6 वर्ष के बालक को दायें–बायें का ज्ञान, 13–14 वीं वर्ष में वस्तुओं को गिनना, समस्या का समाधान करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। 7 वर्ष के बालक में दो वस्तुओं का अंतर करने की शक्ति विकसित हो जाती है। 8 वर्ष की आयु में वह 16–17

शब्दों के वाक्यों को दोहरा सकता है। 9 वर्ष की आयु में वह दिन, समय, तारीख बता सकता है, सिक्कों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तथा 5–6 तुकांत शब्दों को बताने में सफलता प्राप्त कर लेता है। 10 वर्ष की आयु में वह छोटे–छोटे वाक्यों की त्रुटियों को दोहराने लगता है। 11 वर्ष की आयु में समानता, भिन्नता, तुलना, नर–नारी, पशु–पक्षी आदि में भेद कर सकता है। 12 वर्ष की आयु में वह किसी बात का कारण बता सकता है तथा अपनी ओर से व्याख्या कर सकता है।

प्रश्न–7. बालक की किशोरावस्था के मानसिक विकास का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

अथवा

किशोर अवस्था की बालक के मानसिक विकास की विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिये।

उत्तर– किशोरावस्था– किशोरावस्था में बालक का मानसिक विकास उचित परामर्श की अपेक्षा रखता है। शिक्षकों और अभिभावकों को इस अवस्था में होने वाले किशोर के मानसिक विकास की जानकारी प्राप्त करके उसे मार्गदर्शन देने का दायित्व निर्वाह करना पड़ता है। इस अवस्था में मानसिक विकास की प्रमुख विशेषतायें निम्नानुसार होती हैं–

(i) बालक में किसी वस्तु या विषय के प्रति ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता विकसित हो जाती है। वह अमूर्त चिन्तन कर सकता है। बाल्यकाल की चंचलता समाप्त हो जाती है और उसके ध्यान में बाहरी परिस्थितियों की बाधायें कम हो जाती हैं।

(ii) किशोर की स्मरण–शक्ति विकसित हो जाती है तथा स्थायी स्मरण योग्यता में वृद्धि हो जाती है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में रटने की शक्ति अधिक बढ़ जाती है।

(iii) किशोरावस्था में कल्पना–शक्ति विकसित हो जाती है। इस कल्पना–शक्ति के आधार पर ही वह अपनी आन्तरिक शक्तियों का विकास करता है। कल्पना का विकास लड़कों में लड़कियों की अपेक्षा अधिक होता है।

(iv) इस अवस्था में तर्क–शक्ति के विकास के कारण किशोर किसी भी बात को तर्क के अभाव में स्वीकार नहीं करता। उसमें प्रत्येक समस्या के विषय में प्रश्न करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। उसमें वातावरण से अनुभव और ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति भी विकसित हो जाती है।

(v) किशोरावस्था में रुचियों का भी विकास तेजी से होता है तथा उनकी रुचि विशिष्ट रुचियों की ओर विकसित होती है।

किशोरावस्था की रुचियां– ये रुचियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं, इनमें से कुछ का उल्लेख निम्नानुसार किया जा रहा है–

(i) इस अवस्था में लड़के और लड़कियों के खेल की रुचि भिन्न–भिन्न हो जाती है। लड़के सामूहिक खेल खेलने में रुचि रखते हैं, जैसे–फुटबॉल, क्रिकेट, कबड्डी आदि। लड़कियां नृत्य, संगीत,नाटक आदि में रुचि लेती है।

(ii) किशोरावस्था में शरीर के प्रदर्शन की भावना विकसित होने लगती है। प्रायः लड़के अपने शरीर को मांसल बनाते हैं और लड़कियां श्रृंगार–सामग्री का अधिक अच्छी तरह प्रयोग करने लगती है।

(iii) बालकों की स्वतंत्र पठन में भी रुचि विकसित हो जाती है। लड़के विज्ञान, साहित्य, हास्य, देश–प्रेम, रोमांच तथा यौन साहित्य पढ़ने का प्रयत्न करते हैं। लड़कियां प्रेम कहानियां तथा लुकछिप कर यौन साहित्य भी पढ़ती हैं। लड़कों की समाचार–पत्रों में खेल के स्तम्भ को पढ़ने में भी रुचि हो जाती है।

(iv) किशोरावस्था में सिनेमा देखने, टी.व्ही. देखने, रेडियो से हास्य प्रहसन सुनने, फिल्मी गीत सुनने का शौक बढ़ जाता है। लड़के जासूसी साहित्य पढ़ने, मारधाड़ के चलचित्र देखने में अधिक रुचि लेते हैं तो लड़कियां रोमांसपूर्ण, सुखान्त एवं धार्मिक चित्र देखना पसन्द करती है। रेडियो और टी.व्ही. पर उनकी रुचि हास्य, रोमांस और मनोरंजनात्मक सीरियल सुनने व देखने की रहती है।

(v) किशोरावस्था में बातचीत के विषय का भी निर्धारण होता है। लड़कों में वार्तालाप का आधार खेल–कूद, सिनेमा, टी.व्ही. सीरियल आदि होते हैं। वे सामाजिक कार्यों में भी रुचि लेने लगते हैं और लड़कियों के विषय में भी बातचीत करने लगते हैं। लड़कियां अपनी सहेलियों से व्यक्तिगत समस्याओं, लड़कों के सम्बन्ध एवं सामाजिक क्रियाओं के विषय में वार्तालाप करती हैं। लड़के यात्रा और खेल सम्बन्धी बातों में अधिक रुचि लेते हैं।

(vi) किशोरावस्था में किशोर अपने भविष्य की योजनायें बनाने लगते हैं। आजकल वे मेडीकल, इन्जीनियरिंग, प्रशासन तथा अन्य सामान्य व्यवसायों को ग्रहण करने की दिशा में प्रारम्भिक प्रयास करना आरम्भ कर देते हैं। लड़कियों की रुचि डॉक्टर, नर्स, शिक्षिका, लेखिका, सामाजिक कार्य करने तथा अभिनेत्री आदि बनने की होती है।

जन्म के उपरान्त व्यक्ति के मानसिक विकास और शारीरिक परिपक्वता दोनों एक साथ बढ़ते हैं। मानसिक विकास में अनेक तत्व सहायक होते हैं, जैसे जन्मजात स्नायु–मण्डलों की रचना, रोग और वातावरण की अनुकूल परिस्थितियां आदि। सामान्यतया जो तत्व शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं, वे ही मानसिक विकास पर भी अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

प्रश्न–8. बालक के सामाजिक विकास का वर्णन कीजिये।

उत्तर– बालक का सामाजिक विकास– नवजात शिशु न तो सामाजिक और न असामाजिक होता है, अपितु वह निस्सहाय होता है। अतः वह उन दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर रहता है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करें। धीरे–धीरे उसका सामाजिक विकास होता है। समाज में वह अन्य व्यक्तियों से प्रभावित होता है तथा स्वयं दूसरों को प्रभावित करता है। इस अन्तरप्रक्रिया में उसकी प्रतिक्रियायें दूसरों के प्रति दो तरह की होती है– एक वयस्कों के प्रति और दूसरी बच्चों के प्रति। इस अन्तरप्रक्रिया में बच्चा जैसे–जैसे प्रौढ़ व्यक्ति व बच्चों के सम्पर्क में आता है, वैसे–वैसे उसमें सामाजिक विकास की प्रक्रिया तीव्र होती जाती है। बच्चा इस प्रक्रिया में दूसरों को प्रभावित करता है और दूसरों के द्वारा प्रभावित होता है। धीरे–धीरे उसमें सामाजिक सम्बन्धों की परिपक्वता आने लगती है। नवजात शिशु में इस प्रकार की मांसपेशियां और शरीर–रचना होती है जो केवल प्रारम्भ में सीमित दायरे में काम करती है,

किन्तु परिपक्वता और विकास के साथ इसमें परिवर्तन आता है। बच्चा संतोष प्रदान करने वाले सभी व्यक्तियों के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण अपना लेता है और इस प्रकार उसमें सामाजिक परिपक्वता होती जाती है। यह सामाजिक परिपक्वता सामाजिक पर्यावरण में रहने के कारण होती है। बालक की मानसिक योग्यता उसे अपने प्रति दूसरों के व्यवहार को समझने तथा दूसरों के प्रति एक विशिष्ट व्यवहार अपनाने में बहुत सहायक सिद्ध होती है।

सामाजिक विकास की अवस्थायें– बालक के सामाजिक विकास की तीन मुख्य अवस्थायें मानी गयी हैं–जो निम्नलिखित हैं– (i) जन्म से एक वर्ष की आयु तक, (ii) दो से पांच वर्ष की आयु तक, (iii) छः से ग्यारह वर्ष की आयु तक। प्रथम दो अवस्थायें शैशवावस्था तथा तीसरी अवस्था बाल्यकाल की होती है। प्रथम अवस्था में सामाजिक प्रतिक्रियायें दो–तीन महीने से प्रारम्भ होती हैं। शिशु अपनी 'मां' या 'आया' को देखकर मुस्कराता है। वह झिड़कने पर रोता है। दूसरे छोटे शिशुओं से छेड़खानी करता है और फिर लगभग एक वर्ष की आयु में बड़ों की नकल करता है। दूसरी अवस्था में, जो दो से लेकर पांच वर्ष की आयु तक रहती है, बालक साथियों की आवश्यकता अनुभव करने लगता है और वह दूसरे साथियों के साथ खेलना पसन्द करता है। पर इन साथियों की संख्या बहुत कम होती है। प्रायः ये चार–पांच ही होते हैं। इस अवस्था में बच्चों में अच्छे–बुरे का थोड़ा ज्ञान हो जाता है। विकास की तीसरी अवस्था में जो छः से ग्यारह वर्ष रहती है, बच्चे विद्यालय जाने लगते हैं। इनके अंग परिपक्व हो जाते हैं और ये दस–ग्यारह वर्ष की अवस्था तक अपने साथियों के साथ समूहों में मिल–बैठकर हंसना–खेलना सीख जाते हैं।

शैशवावस्था की सामाजिक विकास की विशेषतायें– शैशवास्था के सामाजिक विकास की विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

(i) 6–7 माह में परिजनों को पहचानने लगना।

(ii) दो वर्ष की आयु में बच्चों के साथ खेलना आरम्भ करना।

(iii) तीन वर्ष की आयु में समूहों के कार्यों में रुचि लेने लगना

(iv) पांच वर्ष की आयु तक सामूहिक खेलों में भाग लेने लगना।

(v) इस अवस्था में लड़के–लड़कियों के सामाजिक विकास में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। लड़कियां गुड़ियां खेलती हैं। लड़के अनुकरणात्मक खेल खेलते हैं।

(vi) इस उम्र में क्रोध करना, रूठना आदि की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। बच्चे अक्सर लड़ भी बैठते हैं, किन्तु यह लड़ाई क्षणिक होती है।

(vii) वास्तव में इस अवस्था में शिशु का अपना समाज होता है। हरलॉक के अनुसार– 'शिशु दूसरे बच्चों के सामूहिक जीवन को अनुकूलन, उनसे लेन–देन करना, अपने–अपने खेल के साथियों को अपनी वस्तुओं में साझीदार बनाना सीख जाता है। वह जिस समूह का सदस्य होता है, उसके स्वीकृत–प्रतिमान के अनुसार अपने को बनाने का प्रयास करता है।'

बाल्यावस्था की सामाजिक विकास की विशेषतायें– बाल्यावस्था के सामाजिक विकास की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

(i) बाल्यावस्था में बालक घर से निकलकर विद्यालय के वातावरण में पहुंचता है। यहां उसमें समूह बनाने तथा समूह में रहने की प्रवृत्ति विकसित होती है।
(ii) बालकों में मित्रभाव उत्पन्न हो जाता है।
(iii) लड़के तथा लड़कियां अलग–अलग खेलना पसन्द करते हैं।
(iv) इस अवस्था में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न होने लगती है।
(v) बाल्यावस्था में विषमलिंगी आसक्ति का भाव माता–पिता के प्रति तो पाया जाता है, भाई–बहन भी एक–दूसरे को बहुत चाहते हैं।
(vi) इस अवस्था में नेतृत्व के गुणों का विकास होता है।
(vii) बालकों में स्वत्वाधिकार की भावना भी जाग्रत हो जाती है।

किशोरावस्था की सामाजिक विकास की विशेषतायें– किशोरावस्था के सामाजिक विकास की विशेषतायें निम्नलिखित है–

(i) किशोरावस्था में सामाजिक विकास पर बालक की रुचियों, आवश्यकताओं, असुरक्षा की भावना आदि का प्रभाव पड़ता है।
(ii) इस अवस्था में किशोर अपने सामाजिक वातावरण के प्रति जागरूक हो जाते हैं।
(iii) इस अवस्था में किशोरों में समान उद्देश्य होने के कारण स्थायी मित्रता का उदय होता है। मित्रता में रुचि, अभिवृत्ति, सामाजिक व आर्थिक स्तर का भी ध्यान किशोर रखते हैं।
(iv) इस अवस्था में किशोरों को यह ज्ञान हो जाता है कि उनकी सामाजिक मान्यता किस स्थान पर है और किस पर नहीं। वे स्वतंत्रता के आकांक्षी होते हैं।
(v) किशोरावस्था में यौन विकास के कारण लड़के–लड़कियां आपस में मिलना, बात करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना चाहते हैं।
(vi) किशोर अपने दल और साथियों की प्रतिष्ठा के लिये त्याग करने को तत्पर रहते हैं।
(vii) लड़कियों का सामाजिक विकास अधिक परिपक्वता लिये होता है। वे लड़कों और उनसे सम्बन्धित चर्चा तथा साहित्य में अधिक रुचि लेती हैं।
(viii) किशोरों में सामाजिक चेतना का विकास तीव्र गति से होता है। वे माता–पिता व अन्य व्यक्तियों से अपनी प्रशंसा सुनना पसन्द करते हैं। रूठना व अपनी बात मनवाना भी उनका ध्येय रहता है।
(ix) किशोरों के व्यवहार में स्वार्थपरता अधिक पायी जाती है।

इस प्रकार सामाजिक विकास की आधारभूत प्रक्रिया बालक का समाजीकरण है। वह समाज के सम्पर्क में आकर सामाजिक बनता है तथा समाज की मान्यता के अनुरूप कार्य करता है। सामाजिक विकास के फलस्वरूप बालक असहाय से समर्थ बनता है और यह सामर्थ्य ही समायोजन की ओर दिशा बोध देती है।

प्रश्न–9. 'एक अच्छे वंशक्रम में पैदा होने वाले बालक के समुचित विकास के लिये आवश्यक वातावरण की आवश्यक होता है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– मानव जन्म से ही कुछ शक्तियों को लेकर जन्म लेता है और उसका विकास भी इसी अनुकूल दिशा में होता है। जैसा कि उसे वातावरण मिलता है। **फ्रीमैन, हैलसिंगर एवं न्यूमैन** ने दो बालकों को अलग–अलग वातावरण में रखकर उनका अध्ययन किया। उन्होंने इनमें से एक बालक को गाँव के वातावरण में तथा दूसरे बालक को शहरी वातावरण में रखा। थोड़े समय के पश्चात् उन्होंने दोनों में पर्याप्त अन्तर पाया। क्योंकि इनमें से गाँव का बालक अशिष्ट, तनाव एवं चिन्ताग्रस्त तथा कम बुद्धिमान था। जबकि इसके विपरीत शहर का बालक शिष्ट, तनाव एवं चिन्ता रहित तथा अधिक बुद्धिमान था। इससे स्पष्ट होता है कि एक अच्छे वंशक्रम में पैदा होने वाले बालक के समुचित विकास के लिये एक अच्छा वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रश्न–10. 'बालक अपने वातावरण एवं वंशानुक्रम का ही एक मिला–जुला रूप है।' इस कथन के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर– बालकों के व्यवहार का निर्धारण मूलतः वातावरण एवं आनुवंशिकता द्वारा होता है। मनुष्य जिस प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण में रहता है और अपने विकास के लिये जिन संसाधनों को जुटाता है इन सभी को उसका वातावरण कहा जाता है। मनुष्य की ये जन्मजात शक्तियाँ उसके विकास का आधार होती है। किन्तु उसका विकास उसी प्रकार होता है जिस प्रकार का उसे वातावरण मिलता है। क्योंकि मनुष्य बोलने एवं सुनने की शक्ति वंशानुक्रम से ही प्राप्त करता है। किन्तु भाषा वह वही सीखता है जो उसके परिवार एवं सामाजिक परिवेश में बोली जाती है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि बालक अपने वातावरण एवं वंशानुक्रम का ही एक मिला–जुला रूप है।

प्रश्न–11. माता–पिता के व्यक्तित्व का बाल विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?

अथवा

विकासशील बालक पर परिवार का क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर– माता–पिता के व्यक्तित्व का बाल–विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है–

(1) माता–पिता का जैसा व्यक्तित्व होता है, उसी दिशा में बालक का विकास होता है।
(2) माता–पिता के पारस्परिक सम्बन्ध और उनकी आर्थिक स्थिति भी बच्चों के विकास को प्रभावित करती है।
(3) आमतौर पर पढ़े–लिखे, सम्पन्न परिवार के बच्चे, शारीरिक एवं मानसिक रूप से निरक्षर व विपन्न परिवार के बच्चों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होते हैं।
(4) माता–पिता का बच्चों के प्रति व्यवहार, अधिक समय तक सम्पर्क, बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति, प्रेरणा, सहानुभूति और दिशा–निर्देशन बच्चों के विकास में सहायक होते हैं। माता–पिता का अधिक लाड़–प्यार बच्चे के विकास में बाधक होता है। इसी प्रकार माता–पिता की उपेक्षा भी बाल विकास के लिये घातक सिद्ध होती है।

(5) वैसे कहा जाता है कि जैसे जिसके 'जैसे जाके नदी–नाले तैसे तिनके भरिका, जैसे जिनके माई–बाप तैसे तिनके लरिका' इससे स्पष्ट है कि माता–पिता के व्यक्तित्व का बाल–विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

प्रश्न–12. योगासन क्या है? इसका शरीर और मानसिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? समझाइये।

उत्तर– योगासन एवं योगासन का शरीर एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव– योग को समझने के लिये व्यक्ति को समझना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि योग व्यक्ति के लिये है। व्यक्ति साधक है तथा योग साधना। साधक, साधना द्वारा अपने व्यक्तित्व के विकास की बाधाओं को दूर करता है और इस प्रकार अपने सर्वांगींण विकास की दिशा में कदम बढ़ाता है। वह जानता है कि एकाकी विकास अर्थहीन है। वस्तुतः व्यक्ति का सर्वांगींण विकास ही उसके व्यक्तित्व का विकास है। यह तभी सम्भव है, जब इसके लिये किसी विज्ञानपूर्ण पद्धति का सहारा लिया जाये। जहां तक पद्धतिपूर्ण विज्ञान का प्रश्न है, प्राचीनकाल में ऋषियों ने योग को सदैव श्रेष्ठ माना है। उन्होंने बताया है कि योग मानव कल्याण के लिये है और मानव तत्व योगमय है। इन दोनों को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। योग में व्यक्ति मन, शरीर और इन्द्रियों को आपस में समन्वित कर और साधकर एक ओर लगाता है। ऐसा किया गया कार्य सफल और मोक्ष दिलाने वाला होता है। योग एक साधना है जो व्यक्ति शरीर और इन्द्रियों को समन्वित कर क्रिया रूप में परिणित करता है।

योगासन एवं यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा शारीरिक अवयवों को सशक्त, इन्द्रियों को नियन्त्रित, मन को एकाग्र, भावनाओं को सन्तुलित, प्राण को अनुशासित और बुद्धि को सबल बनाकर अहंकार, द्वेष से मुक्ति तथा आत्मिक निर्मलता प्राप्त की जा सकती है। विद्यार्थी जीवन में योगासन का बहुत महत्व है। भारतीय परम्परा के अनुसार विद्यार्थी जीवन, ब्रह्मचर्य जीवन है। ब्रह्मचर्य जीवन इस बात का संकेत है कि शरीर हृष्ट–पुष्ट, स्वस्थ, सुडौल और सशक्त हो, भावनाओं और इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण हो, बुद्धि कुशाग्र, चित्त एकाग्र और जीवन संयमित हो, परन्तु आज का विद्यार्थी आधुनिक सभ्यता तथा चलचित्र के प्रभाव स्वरूप प्रायः उपर्युक्त गुणों से रहित है। वह शरीर में दुर्बल, बुद्धि से विह्वल, मन से चंचल तथा असंयमित है। प्राचीनकाल का विद्यार्थी गुरू–शिष्य परम्परा का पालन करते हुये योग प्रणाली का अभ्यासी था। आज का विद्यार्थी इससे बहुत दूर है। आज योग शिक्षण नितान्त आवश्यक है, क्योंकि इसका निम्नानुसार शरीर व मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है–

1. शरीर और मन की स्वस्थता– यदि आज योग साधना का अभ्यास विद्यार्थियों को कराया जाये तो वे शरीर और मन से स्वस्थ बन सकते हैं। इन्द्रियों की चंचलता को अपने नियंत्रण में कर सकते हैं तथा भावनाओं पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर बुद्धि को कुशाग्र बना सकते हैं।

2. सफल अध्ययन– इस बात का सदियों से शिक्षाविद् एवं दार्शनिकों को अनुभव है कि दुर्बल शरीर में सफल अध्ययन कठिन हो जाया करता है, क्योंकि दुर्बल शरीर में इन्द्रियाँ भी विक्षिप्त हो जाया करती हैं। जब इन्द्रियाँ विक्षिप्त हो जाती हैं तो जो कुछ अध्ययन किया जाता है वह एकाग्र मन से नहीं होता और जब अध्ययन एकाग्र मन से नहीं होता, तो बुद्धि उसे

ग्रहण भी नहीं कर पाती। यही कारण है कि आज का विद्यार्थी कितना ही क्यों न अध्ययन करे। परन्तु उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता है और अन्ततः वह अध्ययन से दूर भागता है तथा कोरा ही रह जाता है। परन्तु विद्यार्थी योग के आसनों, मुद्राओं, क्रियाओं और प्राणायाम के द्वारा अपने अवयवों को, विभिन्न प्रकार से व्यायाम देकर सशक्त बना लेता है जिससे उसके शरीर के बाह्य और आन्तरिक अवयवों में किसी प्रकार का रोग नहीं होने पाता। यदि रोग हो जाते हैं तो उन्हीं प्रणालियों से दूर हो जाते हैं तथा उसके शरीर में स्वतः प्रतिकार क्षमता का गुण आ जाता है जो आजीवन स्वस्थ रखने के साथ सुडौल और दीर्घायु बनाये रखता है। इससे विद्यार्थियों का अपने अध्ययन को सफल बनाने का लक्ष्य पूरा होता है।

3. बुद्धि विकास एवं चरित्र निर्माण– योग, बुद्धि विकास एवं चरित्र निर्माण के अहम् उद्देश्यों की पूर्ति करता है। स्वस्थ एवं बलवान व्यक्ति ही चरित्रवान बन सकता है और चरित्रवान ही बुद्धिमान होता है। समाज सदैव चरित्रवान एवं बुद्धिमान व्यक्ति की पूजा करता है। चरित्र एवं बुद्धि विद्यार्थी जीवन में ही प्राप्त की जा सकती है। विद्यार्थी जीवन में संचय किये गये गुणों, क्षमता एवं शक्ति का सदुपयोग वह गृहस्थ जीवन में करता है। ब्रह्मचर्य की साधना उसके समस्त भावी जीवन की आधारशिला होती है जो उसके जीवन को सुखमय बनाती है।

4. संयम एवं अनुशासन– योग शिक्षण से अनुशासन एवं संयम में वृद्धि होती है। अनुशासन एवं संयम व्यक्ति के जीवन में नितान्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। योग शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थी जीवन से ही व्यक्ति में संयम एवं अनुशासन की भावना कूट–कूटकर भरी जा सकती है।

5. मानवीय गुणों का विकास– योग दया, क्षमा, परोपकार, पवित्रता, सत्यता, अहिंसा, अपरिग्रह, निष्ठा, श्रद्धा आदि मानवीय गुणों का व्यक्ति में विकास करता है तथा काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, झूठ, कपट आदि मनोविकारों का अन्त करता है। अतः योग शिक्षण का उद्देश्य व्यक्ति में मानवीय गुणों का विकास करना एवं मनोविकारों का अन्त करना है।

प्रश्न–13. मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ स्पष्ट कीजिये तथा उसके स्वरूप को समझाइये।

अथवा

मानसिक स्वास्थ्य से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

उत्तर– मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ (Meaning of Mental Hygiene)– मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मानसिक रोगों की रोकथाम के अध्ययन और उपायों से सम्बन्धित है और मनुष्य के स्वस्थ मानसिक विकास के सुझाव प्रस्तुत करता है।

शिक्षा शब्दकोष के अनुसार– 'यह मानसिक विकारों के निरोध करने के नियमों एवं इसके व्यावहारिक उपयोगों का अध्ययन करता है।'

क्रो एण्ड क्रो के अनुसार, 'मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मानव–कल्याण के लिये है और वह मानवीय सम्बन्धों के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है।'

हैडफील्ड के शब्दों में, 'मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण तथा मानसिक रोगों के निराकरण से है।'

बैब्सटर शब्दकोष के अनुसार, 'मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान, वह विज्ञान है जिसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हैं तथा पागलपन और स्नायु सम्बन्धी रोगों को पनपने से रोकते हैं।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य से है। 'वही मन स्वस्थ कहा जा सकता है जो मानसिक संघर्षों और भावना–ग्रंथियों से मुक्त हो। जिस प्रकार स्वस्थ शरीर की पहचान नाड़ी, हृदय और रुधिर की नियमित गति से है, उसी प्रकार स्वस्थ मन की पहचान अन्तर और वाह्य में समायोजन है।' ज्ञान–विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप जो प्रगति हुई उससे यह समझा जाने लगा कि 'शारीरिक रोगों की भांति मानसिक रोग भी होते हैं और विकृत वंशानुक्रम, दैहिक विकृतियाँ, विषैले पदार्थ एवं दूषित वातावरण इनके कारण है।' अतः मानसिक व्याधियों का भी वैज्ञानिक अध्ययन किया जाने लगा और निराकरण हेतु चिकित्सालय, उपचार–गृह तथा निर्देशन केन्द्र खोले जाने लगे। साथ ही यह भी समझा जाने लगा कि मानसिक रोग प्रारम्भ हो जाने पर उसका उपचार करने के साथ ही साथ ऐसे उपाय भी किये जायें कि रोग होने की सम्भावनायें ही कम हो जायें और व्यक्ति स्वस्थ मन का विकास कर सके।

मानसिक स्वास्थ्य के उद्देश्य– मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बालकों के लिये मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के निम्नांकित उद्देश्य हो सकते हैं–

(i) मानसिक रोगों का निराकरण करना।
(ii) बालकों के व्यक्तित्व में सहायता देना, उन उलझनों को दूर करना जिनके कारण उनका विकास पूर्ण और व्यवस्थित रूप से नहीं हो पाता।
(iii) बाल–जीवन में समायोजन लाना।
(iv) बालकों को उनकी स्वाभाविक इच्छाओं की तुष्टि का समुचित उपाय बताना ताकि इनका दमन न हो।

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य का स्वरूप– अमरीकी मनोचिकित्सा संस्था के अनुसार, 'मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान रोक–थाम एवं प्रारम्भिक उपचार द्वारा मानसिक रोग का दबाव–प्रभाव कम करने एवं मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति करने का प्रयास है।' इस प्रकार स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान में हम व्यक्ति और समाज के मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण और व्यक्ति के सामाजिक एवं शैक्षिक समायोजन का अध्ययन करते हैं। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का स्वरूप एक व्यावहारिक विज्ञान जैसा है। चूंकि प्रत्येक समाज का पर्यावरण अलग–अलग होने से मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये व्यक्ति को अलग–अलग अवसर मिलते हैं। अतः मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान किन्हीं सार्वभौमिक नियमों पर बल नहीं देता।

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य का स्वरूप व्यापक है। उनकी मानसिक विकास की अनेकानेक समस्यायें होती हैं। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान बालक को मानसिक संघर्षों और भावना–ग्रंथियों से मुक्त करने में सहायक रहता है और वे सभी प्रयास करता है जो बाल–जीवन में समायोजन ला सकें। समय–समय पर उत्पन्न मानसिक व्याधियों और रोगों के निराकरण में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है।

प्रश्न–14. बालकों के मानसिक स्वास्थ्य सुधार में विद्यालय के योगदान का उल्लेख कीजिये।

उत्तर– **विद्यालय–** मानसिक स्वास्थ्य–सुधार के सशक्त अभिकरण के रूप में परिवार के बाद बालक के जीवन के आरम्भिक वर्ष सबसे अधिक विद्यालय में गुजरते हैं। अतः विद्यालय का वातावरण बालक के मानसिक स्वास्थ्य–सुधार के रूप में महत्वपूर्ण एवं उपयोगी दायित्व का निर्वाह करता है। यह मानसिक स्वास्थ्य–सुधार के सशक्त अभिकरण के रूप में क्रियाशील रहता है। विद्यालयों में बालक का मानसिक स्वास्थ्य–सुधार करने हेतु निम्नांकित साधन एवं उपाय काम में लाये जा सकते हैं–

(1) **शारीरिक स्वास्थ्य की उन्नति–** विद्यालयों को वे सभी साधन अपनाने चाहिये जिनके द्वारा बच्चों का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहे। संतुलित आहार, स्वच्छता, व्यायाम, खेल–कूद, समुचित विश्राम, उचित समय पर रोगों का उपचार आदि ये साधन हैं जिनके द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य उन्नत किया जा सकता है। शारीरिक स्वास्थ्य की उन्नति मानसिक स्वास्थ्य सुधार हेतु नितान्त आवश्यक है।

(2) **संवेगात्मक सुरक्षा–** बालक स्नेह, सुरक्षा तथा स्थिरता चाहता है। विद्यालय में उसे ये सभी मिलने चाहिये क्योंकि संवेगात्मक विकास के लिये ये बातें आवश्यक हैं। संवेगात्मक सुरक्षा के अभाव में बालक को स्नायु सम्बन्धी रोग हो सकते हैं।

(3) **मित्रवत सम्बन्धों की व्यवस्था–** विद्यालय में बालकों को संगी–साथियों की आवश्यकता पड़ती है। सेलैस के अनुसार, 'बालकों में कुसमायोजन का कारण मित्रों का अभाव है। विद्यालय में ऐसा वातावरण बनाना चाहिये व कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिये कि बालक एक–दूसरे के सम्पर्क में आ सकें और इन्हें मित्र बनाने में कोई कठिनाई न आये।'

(4) **साहसपूर्ण कार्य करने के अवसर–** विद्यालय में बालकों के साहसपूर्ण कार्य करने की प्रवृत्ति को संतुष्ट करने के लिये पर्याप्त अवसर उपलब्ध होने चाहिये। बालचर, गर्ल्स गाइड, सहगामी क्रियाओं के द्वारा यह बात संभव हो सकती है।

(5) **स्वतंत्रता तथा आत्मविश्वास की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति–** स्वतंत्रता और आत्मविश्वास बालकों की मूलभूत आवश्यकतायें हैं। इनकी पूर्ति हेतु क्रियाओं की व्यवस्था की जाना चाहिये ताकि बालक स्वतंत्र रूप से कार्य कर अपने आत्मविश्वास में वृद्धि कर सके।

(6) **सुदृढ़ संकल्प–शक्ति का निर्माण–** विद्यालय ऐसे कार्यक्रम अपनाये जिससे बालक में संकल्प–शक्ति सुदृढ़ हो, क्योंकि जिस बालक में यह जितनी सुदृढ़ होगी, उसका मानसिक स्वास्थ्य उतना ही सुन्दर होगा। सुदृढ़ संकल्प–शक्ति वाला बालक ही भावना–ग्रंथियों तथा अन्तर्द्वन्द्वों का सामना करने में समर्थ होता है।

(7) **बाल–केन्द्रित शिक्षण विधियाँ–** बाल–केन्द्रित शिक्षण विधियाँ मानसिक स्वास्थ्य उन्नत करने में महत्वपूर्ण होती हैं। ये उपयोगी हैं। खेलविधि, योजना–विधि, बालोद्यान–विधि आदि को अपनाया जाना चाहिये।

(8) पाठ्यक्रम का निर्माण मानसिक स्वास्थ्य को दृष्टिगत करते हुये किया जाना चाहिये ताकि वह अरुचिकर व बोझिल न रहे।

(9) **शिक्षक का व्यवहार–** शिक्षक का व्यवहार बालकों के प्रति स्नेहपूर्ण, लोकतांत्रिक, उदारवादी और उनकी समस्याओं का निवारण करने वाले के रूप में होना चाहिये।

(10) **शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन–** बालकों की क्षमताओं और योग्यताओं को दृष्टिगत रखते हुये उन्हें समय-समय पर शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन दिये जाने की व्यवस्था होनी चाहिये। इससे बालक रुचि के अनुसार विषयों का चयन करेगा और उसका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहेगा तथा कुसमायोजन की स्थिति उत्पन्न नहीं होगी।

प्रश्न–15. आसनों का मानवीय व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है?

अथवा

मानवीय व्यक्तित्व में आसनों की क्या भूमिका है?

उत्तर– आसनों का वर्गीकरण– आसनों को सांस्कृतिक, विश्रान्त और ध्यानस्थ रूप में भी वर्गीकृत किया गया है। शवासन, मकरासन (मगरमच्छ जैसा आसन), शीतल ताड़ासन और शीतल धनुरासन विश्रान्ति वाले आसन हैं। पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन और सुखासन आदि को ध्यानरथ आसन कहा जाता है। अन्य सभी आसन सांस्कृतिक आसन कहलाते हैं। ये आसन विशेष रूप से हमारे व्यक्तित्व के संवर्धन के लिए होते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे लोग हैं जो बहुत शर्मीले होते हैं और उनके कंधे आगे की ओर झुके होते हैं, चेहरे पर संकोच होता है। ऐसे लोगों में आत्मविश्वास लाने, शर्मीलेपन को दूर करने तथा उन्हें निर्भीक व सक्रिय बनाने के लिए उन्हें सांस्कृतिक आसन करने की सलाह दी जाती है, जैसे पीछे की ओर झुकने वाले आसन या चक्रासन, भुजंगासन (कोबरे की आकृति वाला आसन), अर्ध चक्रासन (खड़े होकर पीछे की ओर झुककर) और सुप्त वज्रासन। दूसरी ओर ऐसे भी लोग होते हैं जो जन्म से ही (ए-प्रकार के हैं)– बहुत ही अहंकारी और घमंडी हैं। उनके कंधे हमेशा पीछे की ओर झुके होते हैं और सिर ऊपर रहेगा। ऐसे लोगों में नम्रता लाने के लिए आगे की ओर झुकने वाले आसन जैसे पश्चिमोत्तासन, शशांकासन, पादहस्तासन निर्धारित हैं, जिससे उनके अहंकारी स्वभाव में सुधार आ सके और प्रसन्नचित और हंसता-मुस्कुराता व्यक्तित्व बन सके। इसलिए प्रत्येक सांस्कृतिक आसन व्यक्तित्व के निर्माण की दृष्टि से निर्धारित है।

प्रश्न–16. योग की परिभाषा लिखिये।

अथवा

'योग–एक स्थिति है।' कथन को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

योग के उद्देश्य एवं लक्ष्य पर चर्चा कीजिये।

उत्तर– योग– मन पर विजय प्राप्त करना– पतंजलि ने अपने द्वितीय सूत्र में योग को **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः** (योग सूत्र 1.2) के रूप में पारिभाषित किया है। योग मन को नियंत्रित करने की प्रक्रिया है। नियंत्रण में दो पहलू होते हैं– किसी वांछित विषय अथवा वस्तु पर ध्यान को एकाग्र करने की शक्ति और लम्बे समय तक शांत रहने की क्षमता। पहले पहलू, यानी

एकाग्रता को हम विकसित कर रहे हैं किन्तु मनुष्य की दूसरी क्षमता मौन और शांत रहने का कार्य कभी-कभी ही हो पाता है। इसलिए योग में इस दूसरे पहलू पर मुख्य रूप से जोर दिया गया है। योग वासिष्ठ जो योग पर सर्वोत्तम ग्रंथ है: **''मनः प्रशमनोपायः योगः इत्यभिधीयते''** – योग मन का शान्त करने का एक कुशल उपाय है। यह मन में उठने वाले विचारों/भावनाओं को रोकने की एक कठोर, यांत्रिक या स्थूल प्रक्रिया नहीं, बल्कि कुशल व सूक्ष्म प्रक्रिया है। योग मन पर नियंत्रण स्थापित करने का एक कौशलपूर्ण विज्ञान है। यह पूर्णता की अंतिम स्थिति तक पहुँचने की एक प्रक्रिया अथवा एक तकनीक के रूप में विख्यात है। किन्तु योग को उच्च शक्ति और क्षमताओं की स्थितियों के रूप में भी परिभाषित किया गया है और इसे मौन की अंतिम स्थिति के रूप में भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त योग को समस्त रचनात्मक कार्यों की शक्ति के रूप में भी वर्णित किया गया है और स्वयं में यह एक सृजन भी है।

एक अकुशल व्यक्ति यदि दूरदर्शन सेट की मरम्मत करने का प्रयत्न करता है तो लगभग यह माना जाएगा कि वह इसे बरबाद कर देगा, जबकि एक अनुभवी और कार्यकुशल व्यक्ति पूर्ण रूप से जानता है कि इसमें क्या खराबी है और इसकी मरम्मत किस प्रकार करनी है। यह इसकी उचित रूप से मरम्मत करता है। इसलिए जानकारी का होना अनिवार्य है।

कार्य रूप में परिणत करने में योग एक विशेष कौशल है, जिससे मन एक स्थिर अवस्था में पहुँच जाता है **''योगः कर्मसु कौशलम्''** (गीता 2.50)। योग कर्म में दक्षता है। दक्षता विश्राम और सृजगता को कर्म में कायम रखने की होती है। इस प्रकार योग मन पर नियंत्रण स्थापित करने का एक कौशलपूर्ण विज्ञान है। योग लोकप्रिय रूप से पूर्णता की अंतिम स्थिति तक पहुँचने की एक प्रक्रिया अथवा एक तकनीक के रूप में विख्यात है किन्तु योग को उच्च शक्तियाँ और क्षमताओं की अवस्थाओं के रूप में भी परिभाषित किया गया है और इसे मौन की अंतिम स्थिति के रूप में भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त योग को समस्त रचनात्मक कार्यों की शक्ति के रूप में भी वर्णित किया गया है और स्वयं में यह एक सृजन भी है।

योग–एक स्थिति– योग के द्वारा व्यक्ति चेतना के उच्च स्तरों में कूद जाता है और वह इन स्थितियों में बने रहने और इनके अनुरूप क्रिया करने में समर्थ हो जाता है। योग प्रायः हमारे मन की सूक्ष्म कारणात्मक पर्तों से संबंध स्थापित करता है।

योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्ता धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

हे! धनंजय सफलता या असफलता में समान भाव रखते हुए आसक्ति को त्याग कर योग में स्थिर होकर कर्म करते रहो। समता भाव रखना ही योग है।

इस प्रकार,मन की वह सूक्ष्म अवस्था जो स्थिरता द्वारा परिलक्षित होती है, योगावस्था कहलाती है। भावना के स्तर पर योग व्यापक रूप से स्थिरता की एक स्थिति होती है, जिसमें मानसिक स्तर पर ध्यान की एकाग्रता और अनासक्ति उत्पन्न होती है तथा शारीरिक स्तर पर स्थिरता प्राप्त होती है। इसमें शरीर और मन का समन्वय स्थापित होने के कारण व्यक्ति में पूर्णता आ जाती है। इस प्रकार योग है–

- मन को शांत रखकर स्वयं को एकाग्र करने की प्रक्रिया।

- मन की उच्च, सूक्ष्म पर्तों की स्थितियाँ।
- मनुष्य और प्रकृति की रचनात्मक शक्ति को भी योग कहा गया है।

योग के उद्देश्य एवं लक्ष्य–

- जीवन से अज्ञान (अशिक्षा अथवा वास्तविकता के बोध का अभाव) को दूर करना, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश (अर्थात् जीवित रहने की उत्कट इच्छा), जीवन की इन पाँच क्लेशों का विलोपन।
- उच्चतम चेतनता की ऐसी स्थिति में प्रवेश करना जिसमें जीवन को सत्य (बोध) पूर्ण चैतन्य, (ज्ञान) परम ज्ञान, आनन्द और प्रेम के रूप में प्रकटीकरण हो।
- वास्तविक आत्म के प्रति बोध।

प्रश्न–17. योग का आधार क्या है? समझाइये।

उत्तर– योग का आधार– योग का आधार प्रसन्नता की तलाश है। किन्तु हम प्रसन्नता की तलाश बाह्य रूप में ऐन्द्रियिक सुख में करते हैं। प्रसन्नता तो हमारे अपने भीतर होती है। यह मन को शान्त रखने से मिलती है। यह विचारों से विहीन स्थिति होती है। यह आनन्द, स्वतंत्रता, ज्ञान और रचनात्मकता की स्थिति होती है। उपनिषदों में भी यह उल्लेख मिलता है कि मौन साधना की मूल स्थिति, समस्त दृष्टि (सृजन) की हेतुक (कारणात्मक) स्थिति होती है। जो लोग उस व्यापक और स्थाई प्रसन्नता और आनन्द की तलाश में रहते हैं, जो लोग ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं, जो एकदम स्वतंत्र रहकर अधिक से अधिक रचनात्मक बनने की इच्छा रखते हैं, उनका एकमात्र उद्देश्य रहता है कि वे एकदम पूर्ण मौन की स्थिति में पहुँच जाएँ। यह स्थिति होती है। यहाँ विचारों के लिए कोई स्थान नहीं होता और यह तब होता है जब हम स्वयं को उस आनन्दमय आन्तरिक बोध से सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं।

प्रश्न–18. योगासन क्या है? इसका शरीर और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है? समझाइये।

अथवा

योगासन के उद्देश्य लिखिए।

उत्तर– योगासन एवं योगासन का शरीर एवं मस्तिष्क पर प्रभाव– योग को समझने के लिये व्यक्ति को समझना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि योग व्यक्ति के लिये है। व्यक्ति साधक है तथा योग साधना। साधक, साधना द्वारा अपने व्यक्तित्व के विकास की बाधाओं को दूर करता है और इस प्रकार अपने सर्वांगीण विकास की दिशा में कदम बढ़ाता है। वह जानता है कि एकाकी विकास अर्थहीन है। वस्तुतः व्यक्ति का सर्वांगीण विकास ही उसके व्यक्तित्व का विकास है। यह तभी सम्भव है, जब इसके लिये किसी विज्ञानपूर्ण पद्धति का सहारा लिया जाये। जहां तक पद्धतिपूर्ण विज्ञान का प्रश्न है, प्राचीनकाल में ऋषियों ने योग को सदैव श्रेष्ठ माना है। उन्होंने बताया है कि योग मानव कल्याण के लिये है और मानव तत्व योगमय है। इन दोनों को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। योग में व्यक्ति मन, शरीर और इन्द्रियों को आपस में समन्वित कर और साधकर एक ओर लगाता है। ऐसा किया गया कार्य सफल और मोक्ष दिलाने वाला होता है। योग एक साधना है जो व्यक्ति शरीर और इन्द्रियों को समन्वित कर क्रिया रूप में परिणित करता है।

योगासन एवं यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा शारीरिक अवयवों को सशक्त, इन्द्रियों को नियन्त्रित, मन को एकाग्र, भावनाओं को सन्तुलित, प्राण को अनुशासित और बुद्धि को सबल बनाकर अहंकार, द्वेष से मुक्ति तथा आत्मिक निर्मलता प्राप्त की जा सकती है। विद्यार्थी जीवन में योगासन का बहुत महत्व है। भारतीय परम्परा के अनुसार विद्यार्थी जीवन, ब्रह्मचर्य जीवन है। ब्रह्मचर्य जीवन इस बात का संकेत है कि शरीर हृष्ट–पुष्ट, स्वस्थ, सुडौल और सशक्त हो, भावनाओं और इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण हो, बुद्धि कुशाग्र, चित्त एकाग्र और जीवन संयमित हो, परन्तु आज का विद्यार्थी आधुनिक सभ्यता तथा चलचित्र के प्रभाव स्वरूप प्रायः उपर्युक्त गुणों से रहित है। वह शरीर में दुर्बल, बुद्धि से विह्वल, मन से चंचल तथा असंयमित है। प्राचीनकाल का विद्यार्थी गुरू–शिष्य परम्परा का पालन करते हुये योग प्रणाली का अभ्यासी था। आज का विद्यार्थी इससे बहुत दूर है। आज योग शिक्षण नितान्त आवश्यक है, क्योंकि इसका निम्नानुसार शरीर व मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है–

1. शरीर और मन की स्वस्थता– यदि आज योग साधना का अभ्यास विद्यार्थियों को कराया जाये तो वे शरीर और मन से स्वस्थ बन सकते हैं। इन्द्रियों की चंचलता को अपने नियंत्रण में कर सकते हैं तथा भावनाओं पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर बुद्धि को कुशाग्र बना सकते हैं।

2. सफल अध्ययन– इस बात का सदियों से शिक्षाविद् एवं दार्शनिकों को अनुभव है कि दुर्बल शरीर में सफल अध्ययन कठिन हो जाया करता है, क्योंकि दुर्बल शरीर में इन्द्रियाँ भी विक्षिप्त हो जाया करती हैं। जब इन्द्रियाँ विक्षिप्त हो जाती हैं तो जो कुछ अध्ययन किया जाता है वह एकाग्र मन से नहीं होता और जब अध्ययन एकाग्र मन से नहीं होता, तो बुद्धि उसे ग्रहण भी नहीं कर पाती। यही कारण है कि आज का विद्यार्थी कितना ही क्यों न अध्ययन करे। परन्तु उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता है और अन्ततः वह अध्ययन से दूर भागता है तथा कोरा ही रह जाता है। परन्तु विद्यार्थी योग के आसनों, मुद्राओं, क्रियाओं और प्राणायाम के द्वारा अपने अवयवों को, विभिन्न प्रकार से व्यायाम देकर सशक्त बना लेता है जिससे उसके शरीर के बाह्य और आन्तरिक अवयवों में किसी प्रकार का रोग नहीं होने पाता। यदि रोग हो जाते हैं तो उन्हीं प्रणालियों से दूर हो जाते हैं तथा उसके शरीर में स्वतः प्रतिकार क्षमता का गुण आ जाता है जो आजीवन स्वस्थ रखने के साथ सुडौल और दीर्घायु बनाये रखता है। इससे विद्यार्थियों का अपने अध्ययन को सफल बनाने का लक्ष्य पूरा होता है।

3. बुद्धि विकास एवं चरित्र निर्माण– योग, बुद्धि विकास एवं चरित्र निर्माण के अहम् उद्देश्यों की पूर्ति करता है। स्वस्थ एवं बलवान व्यक्ति ही चरित्रवान बन सकता है और चरित्रवान ही बुद्धिमान होता है। समाज सदैव चरित्रवान एवं बुद्धिमान व्यक्ति की पूजा करता है। चरित्र एवं बुद्धि विद्यार्थी जीवन में ही प्राप्त की जा सकती है। विद्यार्थी जीवन में संचय किये गये गुणों, क्षमता एवं शक्ति का सदुपयोग वह गृहस्थ जीवन में करता है। ब्रह्मचर्य की साधना उसके समस्त भावी जीवन की आधारशिला होती है जो उसके जीवन को सुखमय बनाती है।

4. संयम एवं अनुशासन– योग शिक्षण से अनुशासन एवं संयम में वृद्धि होती है। अनुशासन एवं संयम व्यक्ति के जीवन में नितान्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। योग शिक्षण के

माध्यम से विद्यार्थी जीवन से ही व्यक्ति में संयम एवं अनुशासन की भावना कूट-कूटकर भरी जा सकती है।

5. मानवीय गुणों का विकास– योग दया, क्षमा, परोपकार, पवित्रता, सत्यता, अहिंसा, अपरिग्रह, निष्ठा, श्रद्धा आदि मानवीय गुणों का व्यक्ति में विकास करता है तथा काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, झूठ, कपट आदि मनोविकारों का अन्त करता है। अतः योग शिक्षण का उद्देश्य व्यक्ति में मानवीय गुणों का विकास करना एवं मनोविकारों का अन्त करना है।

प्रश्न–19. योग की क्या उपयोगिता है? यम के अंगों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

उत्तर– योग शरीर तथा आत्मा की आवश्यकतायें पूरा करने का उपयुक्त एवं सर्वोत्तम साधन है। इसकी उपयोगिता उसे करने पर स्वतः ही स्पष्ट होने लगती है। योग को करने से मनुष्य का शरीर स्वस्थ रहता है, रोग दूर होते हैं, मानसिक कमजोरी का अन्त होता है तथा बुद्धि विकसित होती है। शरीर सुडौल एवं सुदृढ़ बनता है, चरित्र निर्माण होता है, चिन्ता, परेशानियाँ, व्याकुलता एवं अनेक प्रकार के मनोविकार समाप्त हो जाते हैं। योग के प्रायोगिक रूप के लिये अर्थात् योग सीखने हेतु विद्यार्थियों में जिज्ञासा, श्रद्धा, उत्साह, स्मृति, एकाग्रता, प्रज्ञा आदि बातें होनी चाहियें। योग शिक्षण के लिये उपयुक्त गुरू एवं स्थान भी होना चाहिये तभी योग शिक्षण का अभ्यास किया जाना उचित रहता है।

यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा शारीरिक अवयवों को सशक्त, इन्द्रियों को नियंत्रित, मन को एकाग्र, भावनाओं को सन्तुलित, प्राण को अनुशासित और बुद्धि को सबल बनाकर अहंकार, द्वेष से मुक्ति तथा आत्मिक निर्मलता प्राप्त की जा सकती है। इसके लिये योग के आठ अंगों का पालन आवश्यक है। ये आठ अंग हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें से प्रथम पाँच बहिरंग और शेष तीन अन्तरंग हैं।

यम के भी पाँच अंग हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इनका सम्बन्ध व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास से है।

अहिंसा– अहिंसा का अर्थ है मनसा, वाचा, न तो किसी को कष्ट देना, न ही कष्ट देने के लिये प्रेरित करना और न ही कष्ट देने के लिये प्रोत्साहित करना।

सत्य– अहिंसा के बाद दूसरा स्थान सत्य का है। सत्य का अर्थ है जैसा सुना हो, जैसा देखा हो, वैसा ही कहना सत्य कहलाता है।

अस्तेय– दुःख और अशान्ति से बचने के लिये किसी के धन का अपहरण न करना और अपहरण करने वालों को प्रोत्साहित न करना, अस्तेय है।

ब्रह्मचर्य– चंचल और दूषित भावनाओं पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करना और विषय रहित जीवन जीना ब्रह्मचर्य है।

अपरिग्रह– लोभवश अनावश्यक वस्तुओं के संचय में शक्ति का दुरुपयोग करना अपरिग्रह है। योग का सच्चा साधक बनने के लिये उपर्युक्त बातों का पालन आवश्यक है। इसीलिये योगाभ्यासी को चाहिये कि वह सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह को अपनाये।

योग के मान्य नियमों का ज्ञान– योग के नियम के भी पाँच अंग हैं। वे हैं– शौच, सन्तोष, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान।

शौच– गन्दा शरीर, मलिन मन एवं भ्रष्ट बुद्धि साधना में बाधक होते हैं। इसलिये शरीर, मन, बुद्धि आदि की स्वच्छता और निर्मलता प्राप्त करना चाहता है। इसे योग में शौच कहा गया है। जब तक योगाभ्यासी शरीर, मन, बुद्धि आदि की स्वच्छता प्राप्त नहीं कर पाता उसकी आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता है।

सन्तोष– इस शरीर को स्वस्थ रखने के लिये प्रत्येक साधक को थोड़ा कठिन श्रम करना पड़ता है। उस कठिन श्रम का जो पारिश्रमिक प्राप्त होता है उससे ही सन्तुष्ट रहकर साधक द्वारा अपनी साधना में अग्रसर होते रहना सन्तोष माना गया है, अन्यथा साधक का सम्पूर्ण जीवन असन्तोष से भरा रहेगा, वह एक के बाद दूसरी आवश्यकता की पूर्ति में लगा रहेगा। फलतः उसका आत्म-विकास सम्भव नहीं हो पायेगा।

तप– प्रायः व्यक्ति विवेक शून्य हो जाता है। वह उचित और अनुचित का निर्णय नहीं कर पाता। थोड़ी-सी सर्दी अथवा गर्मी उसे व्याकुल कर देती है। व्यक्ति द्वारा सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहर्ष सहन करना तप है।

ईश्वर प्राणिधान– योग कहता है कि विश्व में एक सर्वशक्तिमान शक्ति है जिसके आधीन सभी शक्तियाँ हैं, वह ईश्वर है। उस ईश्वर पर अपने को अर्पित कर देना, जो कुछ है उसे ईश्वर का ही सुख-दुःख-रूपी प्रसाद मानना उसकी इच्छा का सम्मान करना है। इस प्रकार की भावना ईश्वर प्राणिधान है। योगाभ्यासी को अपने आपको, अपने कर्मों को उस ईश्वर को अर्पण करके केवल अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिये।

आसन– आसनों का प्रभाव शरीर के महत्वपूर्ण अवयवों– नाड़ी, संस्थान, ज्ञान तन्तु संस्थान, श्वांस संस्थान, पाचन संस्थान, रुधिर संस्थान आदि पर होता है और वे शक्तिशाली बनते हैं। आसन और क्रियायें फेफड़ों, हृदय, यकृत, तिल्ली, उदर, अन्तड़ियों और मेरुदण्ड को विभिन्न प्रकार से आराम देकर उन्हें शक्तिशाली बनाते हैं। प्रत्येक अवयव में स्वतः रोग-प्रतिकार की शक्ति आ जाती है।

प्रश्न–20. अष्टांग योग क्या है? समझाइये।

अथवा

अष्टांग योग क्या है? इसके अंगों का वर्णन कीजिए।

अथवा

यम एवं नियम के बारे में संक्षेप में समझाइये।

अथवा

योग के सिद्धान्त क्या है? विस्तारपूर्वक लिखिये।

उत्तर– अष्टांग योग या राज योग– पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग को अष्टांग कहा गया है जिसके 8 अंग हैं। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है–

- यम
- नियम
- आसन
- प्राणायाम
- प्रत्याहार
- धारणा
- ध्यान

• समाधि

यम और नियम अथवा योग के सिद्धान्त– योग भौतिक अनुशासन से कहीं बढ़कर है। यह जीवन की एक शैली है– एक समृद्ध दार्शनिक मार्ग। यम (निग्रह) और नियम (वैयक्तिक स्तर पर अनुपालनीय) ऐसे दस सामान्य सिद्धान्त हैं जो एक सामाजिक संदर्भ में एक स्वस्थ, बेहतर और खुश जीवन बिताने और आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करने के लिए अत्यन्त सहायक है। वे आपके चिंतन के लिए यहाँ दिए गए हैं ताकि आप एक तर्कपूर्ण ढंग से यह सोच सकें कि एक जटिल मन से कैसे निपटा जा सके, क्योंकि योग बाह्य रूप से थौपे गए नियमों को स्वीकार नहीं करता– यह आपके लिए सत्य की तलाश करता है और आपको इससे सम्बद्ध करता है।

(1) यम– पतंजलि योगसूत्र के अनुसार यम केवल 5 होते हैं। इन्हें सर्वभौम महाव्रत भी कहा जाता है, क्योंकि वे किसी वर्ग, धर्म, समय अथवा परिस्थितियों तक सीमित नहीं होते। वे बाहरी दुनिया से अन्योन्यक्रिया करते संबंधी दिशानिर्देश हैं। इन्हें सामाजिक अनुशासन भी कहा जाता है, जिससे हम दूसरों से जुड़ते हैं। ये निम्नलिखित हैं–

- अहिंसा
- सत्य
- अस्तेय
- ब्रह्मचर्य
- अपरिग्रह

याज्ञवल्क्य संहिता के अनुसार अहिंसा यानी हिंसा से दूर रहना अर्थात् विचार, वचन और कर्म में अहिंसा के प्रति सजग और अभ्यासरत रहना है। इसमें हमें करुणा, प्रेम, समझ, धैर्य और सार्थकता का अभ्यास करने की प्रेरणा मिलती है।

पतंजलि सत्य को इस प्रकार वर्णित करते हैं मन, कर्म और वचन में सामंजस्य रखना, सत्य के अनुसार बोलना और विचार करना, जो कुछ देखा गया, समझा गया था सुना गया है, तद्नुसार बोलकर अभिव्यक्त करना और उसे बुद्धि में बनाए रखना। पूर्ण रूप से जो सच्चा व्यक्ति होता है, वह बोलकर वही अभिव्यक्त करता है, जो वह मन में सोचता है। अन्ततः उसी के अनुसार कार्य करता है।

अष्टांग योग के यम का तीसरा घटक अस्तेय या चोरी न करना है। इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि जिस वस्तु पर हमारा अधिकार नहीं है उस पर बलात् अधिकार नहीं जमाना चाहिए। विचार, वचन और कर्म में हमें ईमानदार होना चाहिए। अस्तेय से ईर्ष्या और द्वेष समाप्त हो जाते हैं। इसमें व्यक्ति की पूर्णता और आत्मनिर्भरता पर जोर दिया गया है, जिससे वह असीम प्रगति की ओर अग्रसर हो सके।

यम के चौथे घटक यानी ब्रह्मचर्य का महत्व वेदों, स्मृतियों और पुराणों में वर्णित है। यह विश्वास किया जाता है कि वासनाओं का परित्याग करने से व्यक्ति दिव्य ईश्वर के निकट पहुँचता है। इस यम के अन्तर्गत मानसिक, मौखिक या शारीरिक सभी प्रकार के वासनामय सुख से दूर रहने पर जोर दिया गया है।

पांचवें यम यानी अपरिग्रह का शाब्दिक अर्थ है सांसारिक वस्तुओं का संचय न करना, उनके प्रति मोह या सम्बद्धता न हो। महर्षि व्यास ने कहा है कि यम की यह अन्तिम अवस्था

तभी प्राप्त हो सकती है जब हम हर प्रकार के वासनामय सुख से एकदम सम्बन्ध विच्छेद कर लें। इससे किसी प्रकार की हिंसा जैसी प्रवृत्ति भी पूर्ण रूप से रूक जाएगी।

(2) नियम– नियम अष्टांग योग का दूसरा अंग है। हम स्वयं से, अपने आन्तरिक दुनिया से कैसे सम्पर्क स्थापित करें। नियम हमारे आत्म नियमन के लिए होते हैं, जिनसे एक सकारात्मक वातावरण बनाए रखने में सहायता मिलती है, जिससे हमारा विकास होता है। पहले यमों के माध्यम से जो ऊर्जा उत्पन्न होती है, नियमों से उस ऊर्जा का उपयोग होता है। पतंजलि में निम्नलिखित 5 नियमों का उल्लेख किया है–

- शौच अथवा शुद्धता
- संतोष अथवा संतुष्टि
- तप अथवा तपस्या
- स्वाध्याय अथवा आत्म–शिक्षा
- ईश्वर प्रणिधान अथवा दिव्य शक्ति के प्रति समर्पण भाव

शौच से तात्पर्य है बाह्य और आन्तरिक परिशुद्धता। ऋषि मनु के शब्दों में– जल से शरीर की परिशुद्धता होती है, सत्य से मन की, वास्तविक ज्ञान से बुद्धि की और आत्मा की परिशुद्धता ज्ञान और तप से होती है। इसमें बौद्धिक वाचिक और शारीरिक परिशुद्धता पर जोर दिया गया है।

दूसरा नियम संतोष है, जितना हमने ईमानदारी से परिश्रम करके अर्जित किया है, उससे अधिक की इच्छा नहीं होनी चाहिए। मन की इस अवस्था में हमे जो कुछ जीवन से मिला है उसमें सामंजस्य रखते हुए संतोष की अनुभूति होती है। संतोष से आनन्द प्राप्त करने का अभ्यास होता है– हर अवस्था में शान्ति को कायम रखना। मन की यह अवस्था बाह्य कारणों पर निर्भर नहीं होती।

महर्षि व्यास के अनुसार आत्म–शिक्षा या स्वाध्याय के अन्तर्गत धर्मग्रन्थों का अध्ययन समाहित है। धर्मग्रन्थ है– वेद, उपनिषद आदि। गायत्री मंत्र और मंत्र को जपना भी इसके अन्तर्गत शामिल है।

अन्तिम नियम ईश्वर प्रणिधान को व्याख्याकारों ने समस्त कर्मों को चाहे ये बुद्धि द्वारा किए जाते हों, वचन अथवा शरीर द्वारा किए जाते हों, उन्हें दिव्य ईश्वर को समर्पित किए जाने के रूप में वर्णित किया है। ऐसे कर्मों के परिणाम पर अन्य किसी का अधिकार नहीं है, इसलिए यह दिव्य ईश्वर के निर्णय पर निर्भर है। नश्वर मन को सामान्य रूप से दिव्य ईश्वर की अनुभूति समर्पण, परिशुद्धि, प्रशान्ति और मन की एकाग्रता से हो सकती है। इस दिव्य ध्यान से योगी के जीवन के सभी पहलू प्रभावित हो जाते हैं।

प्रश्न–21. यम–नियम के अनुष्ठान के फल की विवेचना कीजिये।

अथवा

यम और नियमों के अभ्यास के लाभ लिखिये।

उत्तर– यम और नियमों के अभ्यास का लाभ– यम और नियमों से हमारी ऊर्जा को व्यवस्थित करने में सहायता मिलती है, जिससे हमारा बाहरी जीवन आन्तरिक विकास की ओर उन्मुख हो जाता है। इनमें हमें स्वयं में करुणा और जागरूकता लाने में सहायता मिलती है। इनकी सहायता से इस जीवन के मूल्यों का समादर होने लगता है, जिससे हम, बाहरी

नियंत्रण के साथ आन्तरिक सन्तुलन को कायम रखने में सक्षम होते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो यही है कि इनमें हमें एक चैतन्य जीवन की ओर अग्रसर होने में सहायता मिलती है।

(अ) यम– अष्टांग योग का प्रथम अंग है यम। 'यम' शब्द 'यमु उपरमे' धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है– यम्यन्ते उपरम्यन्ते निवर्त्यन्ते हिंसादिभ्य इन्द्रियाणि यैस्ते यमाः 'अर्थात् जिनके अनुष्ठान से इन्द्रियों एवं मन को हिंसादि अशुभ भावों से हटाकर आत्मकेन्द्रित किया जाये, वे यम हैं।' महर्षि पतंजलि ने इन यमों की परिगणना इस प्रकार की है–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह– ये पाँच यम हैं। इनका क्रमशः संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार से है–

(1) अहिंसा– अहिंसा का अर्थ है किसी प्राणी को मन, वचन तथा कर्म से कष्ट न देना। मन से भी किसी का अहित न सोचना, किसी को कटु वाणी आदि के द्वारा भी कष्ट न देना तथा कर्म से भी किसी भी अवस्था में, किसी भी स्थान पर 'किसी भी दिन' किसी भी प्राणी की हिंसा न करना, अपितु प्राणिमात्र से आत्मबल प्रेम तथा सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति मैत्री एवं करुणा की दृष्टि रखना यही यथार्थ वास्तविक रूप से अहिंसा है। महर्षि व्यास भी कहते हैं–

तत्राहिंसा सर्वदा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।

(2) सत्य– जैसा देखा, सुना तथा जाना हो, वैसा ही शुद्ध भाव मन में हो, वही प्राणी में तथा उसी के अनुरूप कार्य हो तो वह सत्य कहलाता है। दूसरों के प्रति ऐसी वाणी कभी नहीं बोलना चाहिए, जिसमें छल–कपट हो, भ्रान्ति पैदा होती हो अथवा जिसका कोई प्रयोजन न हो। ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिससे किसी प्राणी को दुःख न पहुँचे। सत्य वाणी भी सर्वभूतहिताय होनी चाहिए। दूसरों की हानि करने वाली वाणी पापमयी होने से दुःखजनक होती है। अतः परीक्षा करके सब प्राणियों का हित करने वाली वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए। यही बात महर्षि व्यास सत्य के सम्बन्ध में कहते हैं–

'सत्यं यथार्थे वाङ्मनसी। यथादृष्टं यथानुमितं यथाश्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति। परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वाधिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिबन्ध्या वा भवेदिति। एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय'।

(3) अस्तेय– अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। दूसरों की वस्तु पर बिना पूछे अधिकार करना अथवा शास्त्रविरुद्ध ढंग से वस्तुओं का ग्रहण करना स्तेय (चोरी) कहलाता है। दूसरों की वस्तु को प्राप्त करने की मन में लालसा भी चोरी है। अतः योगी पुरुष को न तो चोरी करनी चाहिए, न किसी से करवानी चाहिए, अपितु अपने सात्त्विक व पूर्ण पुरुषार्थ से तथा भगवान् की कर्मफल व्यवस्था के अनुरूप या प्रकृति के विधान से जो कुछ हमें प्राप्त होता है, उसमें पूर्ण सन्तुष्ट एवं आनन्दित रहना चाहिए।

(4) ब्रह्मचर्य– काम वासना को उत्तेजित करने वाले खान–पान, दृश्य–श्रव्य साधनों एवं शृंगारादि का परित्याग कर सतत वीर्य–रक्षा करते हुए ऊर्ध्वरेता होना ब्रह्मचर्य कहलाता है। अष्टविध मैथुन– वासना की दृष्टि से किसी दर्शन, स्पर्शन, एकान्त–सेवन, भाषण, विषय–कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान तथा संग ये आठ प्रकार के मैथुन हैं। ब्रह्मचारी को इनसे बचते हुए सदा जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त इन्द्रियों आँख, कान, नाक, त्वचा एवं रसना को

सदा शुभ की ओर प्रेरित करना चाहिए तथा मन में सदा भद्र, सुविचार, शुभ–संकल्प रखना चाहिए। साधक को सदा ही अपने मन में इस विचार को दृढ़ रखना चाहिए कि मेरी स्वाभाविक अवस्था विकार रहित है। जैसे जल का स्वाभाविक गुण शीतलता एवं द्रवत्व (बहना) है। जमना, गर्म होना, वाष्प बनाना तथा बनकर उड़ना ये गुण उसके स्वाभाविक नहीं होते तथा गर्म करने, वाष्प बनने तथा बर्फ बनने पर ठोस हो जाने के बाद भी वह अपनी स्वाभाविक अवस्था में ही वापस लौट आता है, इसी तरह ब्रह्मचर्य हमारी स्वाभाविक अवस्था है।

(5) अपरिग्रह– परिग्रह का अर्थ है– चारों ओर से संग्रह (इकट्ठा) करने का प्रयत्न करना। इसके विपरीत जीवन जीने के लिए न्यूनतम, धन, वस्त्र आदि पदार्थों एवं मकान से सन्तुष्ट होकर जीवन के मुख्य लक्ष्य ईश्वर–आराधना में निरत रहना अपरिग्रह है। साधक एवं प्रत्येक विवेकशील मनुष्य को इस विचार के साथ जीवन को जीना चाहिए कि क्या इसके बिना भी मेरे जीवन का निर्वाह हो सकता है? यही योगवृत्ति है, यही अपरिग्रह है। इसके विपरीत भोगवृत्ति या उपभोक्तावाद है। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार जीवन में जो कुछ भी धन, वैभव, भूमि, भवन आदि ऐश्वर्य हमें प्राप्त हों, उनको कभी अहंकार के वशीभूत होकर अपना नहीं मानना चाहिए तथा भौतिक सुख तथा बाह्य सुख के साधनों की इच्छा भी साधक को नहीं करनी चाहिए अनासक्त भाव से जीवन जीते हुए अपने–आप जो भी सुख–साधन उपलब्ध हों, उनका उपयोग दूसरों को सुख पहुँचाने व सेवा के लिए करना चाहिए। महर्षि व्यास कहते हैं–

विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः।

(ब) नियम– योग का दूसरा आधारभूत अंग है– नियम। महर्षि पतंजलि लिखते हैं–

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर–प्रणिधान– ये पाँच नियम हैं।

(1) शौच– शौच कहते हैं शुद्धि को, पवित्रता को। यह शौच, शुचिता या पवित्रता भी दो प्रकार की होती है– एक बाह्य, दूसरी आभ्यन्तर। महर्षि मनु ने शौच के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर कहा है–

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

साधक को प्रतिदिन जल से शरीर की शुद्धि, सत्याचरण से मन की शुद्धि, विद्या और तप के द्वारा आत्मा की शुद्धि तथा ज्ञान के द्वारा बुद्धि की शुद्धि करनी चाहिए। भगवती गंगा आदि के पवित्र जल से भी शरीर की शुद्धि हो सकती है। मन, बुद्धि एवं आत्मा की शुद्धि के लिए तो ऋषियों द्वारा बतायें गये उपायों को करना ही होगा।

(2) सन्तोष– अपने पास विद्यमान समस्त साधनों से पूर्ण पुरुषार्थ करें। जो कुछ प्रतिफल मिलता है, उससे पूर्ण सन्तुष्ट रहना और अप्राप्त की इच्छा न करना, अर्थात् पूर्ण पुरुषार्थ एवं ईश्वर–कृपा से जो प्राप्त हो, उसका तिरस्कार न करना तथा अप्राप्त की तृष्णा न रखना ही सन्तोष है। महर्षि व्यास कहते हैं–

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्। कुतस्तद्धनलुब्धानमितश्चेतश्च धावताम्।।

सन्तोष–रूपी अमृत के पान करने से तृप्त हुए शान्तचित्त मनुष्यों को जो आत्मिक और हार्दिक सुख मिलता है, वह धन–वैभव की लालसा व व्याकुलता में इधर–उधर भटकने वाले मनुष्यों को कभी नहीं मिल सकता। अन्यत्र भी कहा गया है–

'सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः'।

सुख का मूल आधार सन्तोष है और इसके विपरीत तृष्णा–लालसा दुःखों का मूल है। उपनिषद् में ऋषि कहते हैं–

'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'।

धन के द्वारा मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं हो सकती। अतः साधक को पूर्ण पुरुषार्थ करते हुए उसका जो भी प्रतिफल ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्थानुसार प्रदान करते हैं, उसमें पूर्ण सन्तुष्ट रहना चाहिए और यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि ईश्वर सदा ही हमारी आवश्यकता और पात्रता से अधिक ही हमें रूप, यौवन, धन, समृद्धि एवं समस्त वैभव प्रदान करते हैं।

(3) **तप–** महर्षि व्यासदेव कहते हैं– 'तप द्वन्द्वसहनम्' अर्थात् अपने सद्–उद्देश्य की सिद्धि में जो भी कष्ट, बाधाएँ, प्रतिकूलताएँ आयें, उनको सहजता से स्वीकार करते हुए, निरन्तर, बिना विचलित हुए, अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना तप कहलाता है। महाभारत में प्रसंग आता है कि यक्ष युधिष्ठिर से प्रश्न करता है– 'तपसः किं लक्षणम्' तो महाराज युधिष्ठिर उत्तर देते हैं– 'तपः स्वधर्मवर्तित्वम्'। हे यक्ष! अपने कर्तव्य के पालन में जो भी विघ्न–बाधाएँ आयें, उन्हें सहते हुए निरन्तर अपने स्वधर्म का पालन करना ही तप है। ये द्वन्द्व हैं– भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख, लाभ–हानि, मान–अपमान, स्तुति–निन्दा, जय–पराजय आदि। इन सब प्रतिकूलताओं में सम रहना तप है, न कि अग्नि के बीच तपना या एक पैर पर खड़े होकर अपने शरीर को आवश्यक व अवैज्ञानिक रूप से कष्ट देना आदि।

(4) **स्वाध्याय–** महर्षि व्यासदेव कहते हैं– **'प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं वा'।** अर्थात् प्रणव–ओंकार का जप करना तथा मोक्ष की ओर ले जाने वाले वेद–उपनिषद्, योगदर्शन, गीता आदि जो सत्यशास्त्र हैं, इनका श्रद्धापूर्वक अध्ययन करना स्वाध्याय है। हम यदि इस स्वाध्याय शब्द पर शाब्दिक दृष्टि से विचार करें तो इसके मुख्यार्थ दो हैं। एक है– **'सु–अध्ययनं स्वध्यायः, स्वध्याय एव स्वाध्यायः'** अर्थात् उत्तम अध्ययन। ऋषि–प्रतिपादित सत्–शास्त्रों का पूर्ण श्रद्धा और आस्था के साथ अध्ययन करना। उत्तम ग्रंथों के अध्ययन से हमारे विचारों एवं संस्कारों में पवित्रता, दिव्यता तथा दृढ़ता आती है और विचारों की पवित्रता एवं दृढ़ता से ही जीवन में सात्त्विकता आती है। दूसरा स्वाध्याय का अर्थ है– स्व–अध्ययन स्वाध्यायः अर्थात् अपना अध्ययन, अपने–आपको पढ़ना, अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में चिन्तन, विचार तथा निदिध्यासन करना कि मैं कौन हूँ? मुझे क्या करना चाहिए? मैं क्या कर रहा हूँ? मेरे जीवन का क्या लक्ष्य है? मुझे किसने पैदा किया है और क्यों पैदा किया है?

इस प्रकार साधक सजग होकर विवेकपूर्वक विचार करेगा तो वह बाहर के वैभव में न फँसकर प्रणव (ओंकार) का जप तथा ऋषि–प्रतिपादित अध्यात्मविद्या, पराविद्या के ग्रंथों का अध्ययन करता हुआ परमेश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर सफल हो सकता है।

(5) **ईश्वर–प्रणिधान–** महर्षि व्यासदेव कहते हैं– **'तस्मिन् परमगुरौ सर्वक्रियाणामर्पणम्'।** अर्थात्, उस गुरुओं के भी गुरु, परम गुरु परमात्मा में अपने समस्त कर्मों का अर्पण कर देना। भगवान को हम वही समर्पित कर सकते है, जो शुभ है, दिव्य एवं पवित्र है। इसलिए साधक पूर्ण श्रद्धा, भक्ति एवं सर्वात्मना प्रयत्न से वही कार्य करेगा, जिसे वह भगवान् को समर्पित कर सके, अर्थात् उसकी समस्त क्रियाओं का ध्येय ईश्वर–अर्पण होगा। सच्चा भक्त सदा यही विचार करता है कि मुझे जीवन में शरीर, मन, बुद्धि, शक्ति, रूप, यौवन, समृद्धि, ऐश्वर्य, पद, सत्ता, मान आदि जो कुछ वैभव मिला है, सब ईश्वर–कृपा से ही मिला है। इसलिए मुझे अपनी समस्त शक्तियों का उपयोग अपने प्रियतम प्रभु को प्रसन्न करने के लिए ही करना है। इस जीवन का सम्पूर्ण प्रयास तथा पुरुषार्थ मेरा यही है कि मैं सब कुछ, अपने अस्तित्व–सहित, प्रभु में अर्पण कर दूँ और ऐसे भक्त पर ही भगवान की कृपा एवं ईश्वरीय अमृत सदा बरसता है, जो सर्वात्मना ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाता है।

यम–नियम के अनुष्ठान का फल–

(1) अहिंसा के अनुष्ठान का फल–

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

साधक में अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर जो प्राणी उस योगी पुरुष के संग में रहते हैं, उनका भी हिंसा–वैरभाव छूट जाता है। योगी पुरुष पूर्ण रूप से अहिंसा का मनसा–वाचा–कर्मणा पालन करता है, जब योगी पुरुष सब प्राणियों के प्रति हृदय से सहज, निश्छल, निःस्वार्थ स्नेह करता है, तब यह कैसे संभव है कि उसके प्रति कोई भी वैर भाव रखे। योगी पुरुष के सान्निध्य से केवल मनुष्यों का ही वैर भाव नहीं छूटता– सर्प, सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जीव भी हिंसा छोड़ देते हैं।

(2) सत्याचरण का फल–

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

सत्य के पूर्ण पालन का फल है कि पूर्ण सत्याचरण करने वाला योगी पुरुष जो कह देता है, वही हो जाता है। जो सत्य ही मानता, बोलता और वैसा ही आचरण भी करता है, उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। इसलिए ज्ञात आज तक जितने भी महापुरुष, योगिराज हुए, उनके जीवन में हम देखते हैं कि उन्होंने जो कुछ भी कहा, वही हुआ है, परन्तु यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि योगी पुरुष कभी असंभव, अयुक्त तथा हानिकारक वाणी का प्रयोग नहीं करते। योगी पुरुष सदा सत्य एवं शुभ ही उच्चारण करते हैं। इसलिए योगी जनों का एक शब्द ही जीवन को रूपान्तरित कर देता है, जीवन के प्रवाह को शुभ की ओर बदल देता है। बहुत बड़ी शक्ति होता है, सत्यवादी महापुरुषों में।

(3) अस्तेय के पालन का फल–

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

पूर्णरूप से चोरी का त्याग कर देने पर साधक को चारों ओर रत्नों की प्राप्ति होने लगती है। यह नितान्त सत्य भी है कि योगी पुरुष, चोरी की बात तो बहुत दूर है, किसी पदार्थ की इच्छा ही नहीं करते कि यह मेरे पास होनी चाहिए। योगी पुरुष को जीवन–निर्वाह के लिए जो कुछ चाहिए, उसे भगवान स्वतः प्रदान करते हैं।

यह दुनिया का नियम है कि जो यहाँ माया के बहुत अधिक चाहता है, माया उतना ही आगे–आगे भागती है तथा जो माया का त्याग करते हैं, माया उन्हीं के पीछे दौड़ती है। योगी महापुरुषों की भी यही स्थिति होती है। वे पूर्ण निर्लोभ निःस्पृह ही होते हैं, इसलिए दुनिया के वैभवशाली पुरुष उनको सब प्रकार के ऐश्वर्य रत्न–आभूषण दिलाते हैं एवं उनके चरणों में अर्पित कर देते हैं। वे योगी पुरुष भी पुनः उन रत्न आदि ऐश्वर्यों को समस्त मानवता के हित में अर्पित कर देते हैं।

(4) ब्रह्मचर्य के पालन का फल–

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

ब्रह्मचर्य के पूर्णरूप से पालन करने से योगी पुरुष का ओज, तेज, कान्ति, वीर्य (वीरता), बल तथा पराक्रम बढ़ जाता है। बिना ब्रह्मचर्य–पालन के कोई भी पुरुष योगी नहीं हो सकता।

(5) अपरिग्रह के अनुष्ठान का फल–

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।

अपरिग्रह का फल है कि मनुष्य विषयासक्ति से रहित होकर सदा जितेन्द्रिय रहता है। तब मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझे क्या करना चाहिए? इत्यादि शुभ गुणों का विचार कर योगी भौतिक पदार्थों का संग्रह नहीं करता है, किन्तु जिस आत्मबोध के होने से जन्म–मरण के बंधन से छुटकारा मिलता है, वह उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

(6) शौच के अनुष्ठान का फल–

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः।

शरीर की बार–बार जल आदि से शुद्धि करता हुआ साधक जब यह अनुभव करता है कि इस शरीर को मैं इतना शुद्ध करने का प्रयत्न करता हूँ, फिर भी यह शरीर पुनः मलिन होता रहता है, इसमें चारों ओर से दुर्गन्ध ही निकलता रहता है तो साधक को स्वांग–जुगुप्सा अपने शरीर के अंगों से जुगुप्सा (घृणा) होने लगती है तथा दूसरों के शरीर को भी वह जब देखता है, तब उसको सबके शरीर मलमूल आदि से भरे हुए दिखते हैं और वह दूसरे स्त्री–पुरुष से अपने शरीर के स्पर्श की इच्छा नहीं करता। आलिंगन आदि से भी उसे अनासक्ति होने लगती है। योगी शरीर का उपयोग साधन की तरह करता है, साध्य तो आत्मा की पूर्णता ही है। शरीर की स्वाभाविक मलिनता के विषय में महर्षि व्यास भी कहते हैं–

स्थानाद् बीजादुपष्टम्भान्निस्यन्दात्रिधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुः।।

अर्थात्, यह शरीर पवित्र नहीं है, क्योंकि यह मलमूत्रमय योनि से पैदा होता है। रजवीर्यादि रूप से निर्मित होने से, मल–मूत्र स्थान एवं रोमकूप और मुख आदि से भी निरन्तर दुर्गन्ध निकलने तथा मरणोपरान्त शव के भी अति दुर्गन्धमय होने से यह शरीर पवित्र नहीं है, अपितु मल का भंडार है। इस शरीर की बार–बार जल से शुद्धि करने पर भी यह सदा मलिन ही रहता है। इस प्रकार विचार करके साधक की शरीर से आसक्ति हट जाती है। वह शरीर से मोह नहीं करता हैं। वह शरीर की अपेक्षा आत्मा से प्रेम करने लगता है। यह ता बाह्य शौच (शुद्धि) का फल है। आन्तरिक शुद्धि का फल महर्षि पतंजलि बताते हैं–

सत्त्वशुद्धिसौमनस्येकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।

सत्य, अहिंसा, विद्या, तप आदि आन्तरिक शौच से अन्तःकरण की शुद्धि, मन की प्रसन्नता और एकाग्रता, इन्द्रियों पर विजय तथा आत्मा को जानने की योग्यता प्राप्त होती है।

(7) संतोष के अनुष्ठान का फल–

संतोषादनुत्तमः सुखलाभः।

संतोष से जो सुख होता है, वह सबसे उत्तम सुख है। संतोष–सुख को ही तृष्णाक्षयजन्य सुख भी कहते हैं। इस विषय में महर्षि व्यासदेव का कथन है–

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्।।

संसार में कामनाओं के पूर्ण होने से जो सुख मिलता है तथा पुण्यात्माओं को जो दिव्य स्वर्गीय सुख मिलता है, ये दोनों ही संतोषी व्यक्ति को मिलने वाले तृष्णाक्षयजन्य सुख के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकते। अतः संतोष–सुख से बढ़कर दुनिया में और कोई सुख नहीं।

तृष्णा ही हमें पग–पग पर सताती है। भर्तृहरि कहते हैं– तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः। अर्थात् तृष्णा की पूर्ति करने वाले बूढ़े हो जाते हैं, परन्तु तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती।

(8) तप के अनुष्ठान का फल–

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः।

तप के अनुष्ठान से अशुद्धि के क्षीण होने से, साधक का शरीर तथा इन्द्रियाँ सदा दृढ़ एवं नीरोग रहती हैं। महर्षि दयानन्द जी महाराज तप के सम्बन्ध में कहते हैं– 'यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, शरीर, इन्द्रिय और मन से शुभकर्मों का आचरण करना, वेदादि विद्याओं का पढ़ना–पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम तप है। धातु को तपा के चमड़ी जलाना तप नहीं कहलाता।'

(9) स्वाध्याय के अनुष्ठान का फल–

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।

स्वाध्याय का अनुष्ठान करने वाले योगी को विद्वान्, देव, मंत्रद्रष्टा ऋषि और सिद्ध पुरुष दिखाई दे जाते हैं और साधक की साधना में सहायक हो जाते हैं। जो साधक प्रणव (ओंकार) का जप तथा मोक्षशास्त्रों का निरन्तर अध्ययन करता है, उसे जब–जब योग–साधना करते हुए कठिनाई या बाधा आती है, तब सिद्ध–सन्त पुरुष प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसका मार्गदर्शन करते हैं। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार साधक को मार्गदर्शक सिद्ध गुरु मिल ही जाते हैं।

(10) ईश्वर–प्रणिधान का फल–

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

ईश्वर–प्रणिधान, अर्थात् अपनी समस्त क्रियाओं को परमगुरु के प्रति समर्पित कर उन कार्यों के फल की इच्छा का परित्याग कर देने से (ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा)। साधक को समाधि की सिद्धि (प्राप्ति) सुगमता से हो जाती है।

प्रश्न–22. आसन की परिभाषा लिखिये।

अथवा

आसन की भूमिका को संक्षेप में समझाइये।

उत्तर– आसन– प्रत्येक व्यक्ति जीवन में सुख, शांति व आनंद की अनुभूति करना चाहता है। कोई भी व्यक्ति कष्ट या दुःख भोगना नहीं चाहता किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को सुख और दुःख दोनों ही भोगना पड़ते हैं। कुछ तो नियति के कारण भोगना पड़ते हैं, पर बहुत से लोग स्वयं ही दुःखों को अर्थात् बीमारियों को आमंत्रित करते हैं, जिसका कारण है– अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह होना।

यदि व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा हो तो वह जीवन में सभी कुछ प्राप्त कर सकता है, लेकिन यदि स्वास्थ्य अच्छा न हो, तो कितना भी धन हो, ऐश्वर्य हो, पद–प्रतिष्ठा हो, वह सुख और शांति की अनुभूति नहीं कर सकता।

ऐसा नहीं कि लोग स्वास्थ्य को ठीक रखना नहीं जानते हों लेकिन आलस्य के कारण ऐसा नहीं कर पाते। यदि व्यक्ति चाहे तो स्वास्थ्य को ठीक रखने का सुगम तरीका है नियमित रूप से योगाभ्यास करना। आसन, प्राणायाम अस्वस्थ व्यक्ति को स्वस्थ और स्वस्थ व्यक्ति को हमेशा के लिए स्वस्थ रख सकते हैं।

आसन और व्यायाम में अन्तर– आसन और व्यायाम में मौलिक अन्तर है। व्यायाम शरीर के किसी विशेष भाग को पुष्ट करने में सहायक है, जबकि योगासन सम्पूर्ण शरीर को समान रूप से स्वस्थ व सुन्दर रखने के लिए उपयोगी है। व्यायाम विशिष्ट आयु के व्यक्ति ही कर सकते हैं, जबकि आसन किसी भी आयु वर्ग का व्यक्ति कर सकता है। आसनों का उद्देश्य ही शरीर को स्वस्थ व सुन्दर रखना व साथ ही निरोगी व मानसिक रूप से शांत रखना है।

नियमित रूप से योगासन करने वाले व्यक्ति का शरीर लचीला होता है। हमारे शरीर में रीढ़ की हड्डी सबसे महत्वपूर्ण है। रीढ़ की हड्डी के मूल पर सारे शरीर का ढांचा व्यवस्थित रहता है। इसीलिए रीढ़ की हड्डी के मूल को पृथ्वी तत्व कहा जाता है क्योंकि पृथ्वी ही सारे विश्व का भार सहन करती है। रीढ़ की हड्डी जितनी लचीली होती है उतना शरीर स्वस्थ होने लगता है। योगासन रीढ़ की हड्डी को लचीला रखने का एक उपयुक्त साधन है।

प्रश्न–23. सूर्य–नमस्कार हेतु सामान्य नियमों का वर्णन कीजिये।

अथवा

सम्पूर्ण शरीर पर सूर्य–नमस्कार के प्रभावों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– सूर्य नमस्कार– धरती पर ऊर्जा के स्रोतों– हवा, पानी, सूर्य आदि में सूर्य सबसे प्रमुख है। इससे प्राणी जगत् विशेषतः ऊर्जित होता है। यह भी वैज्ञानिक रूप में सिद्ध तथ्य है कि प्रातःकाल के उदीयमान सूर्य की किरणों का हमारे शरीर पर विशिष्ट चिकित्सकीय प्रभाव पड़ता है। हमारे पूर्वज मनीषियों ने विशेष शोध व अनुसंधान के द्वारा पाया कि इस समय अर्थात् प्रातःकालीन बेला में अलग–अलग प्रकार के बारह आसनों का एक विशेष क्रमपूर्वक अभ्यास करने से हमें चौबीस घंटे तक ऊर्जा का स्तर बनाये रखने में विशेष सहायता मिलती है। मनीषियों ने इन्हीं बारह आसनों के क्रम को 'सूर्य–नमस्कार' का नाम दिया है, जो अपने आप में एक स्वतंत्र व पूर्ण व्यायाम है।

वस्तुतः सूर्य–नमस्कार की प्रक्रिया के द्वारा हमारे मनीषियों ने हमें प्राकृतिक नियमों के साथ साहचर्य बनाने की शिक्षा देते हुए आरोग्यमय जीवन जीने का यह अद्भुत संदेश दिया है।

सूर्य–नमस्कार हेतु सामान्य नियम– ये निम्न हैं–

(1) सूर्य–नमस्कार की 12 स्थितियों को एक बार पूरा करना एक आवृत्ति (चक्र) कहलाती है। इस प्रकार सूर्य–नमस्कार से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्रत्येक दिन कम से कम 10 से 15 आवृत्तियों का अभ्यास करना चाहिए।

(2) इन 12 स्थितियों को करते वक्त पूरक, कुम्भक व रेचक को ध्यान में रखकर करने से विशेष लाभ मिलता है।

(3) बीमार अवस्था में सूर्य–नमस्कार नहीं करना चाहिए अथवा योग–शिक्षक से परामर्श लेकर ही धीरे–धीरे करना चाहिए।

(4) प्रत्येक स्थिति का अभ्यास मानसिक मंत्रोच्चारणपूर्वक परमात्मा/अल्लाह/गॉड/वाहे गुरू आदि के प्रति मन ही मन नमस्कार/स्मरण तथा कृतज्ञता/धन्यवाद का भाव जगाते हुए, निर्दिष्ट शरीरस्थ चक्र में ध्यान केन्द्रित करते हुए करना चाहिए।

सूर्य–नमस्कार के लाभ– ये निम्नवत् हैं–

(1) सूर्य–नमस्कार एक पूर्ण व्यायाम है। इससे शरीर के सभी अंग–प्रत्यंग बलिष्ठ एवं निरोगी हो जाते हैं।

(2) इससे पेट, आंत्र, आमाशय, अग्न्याशय, हृदय एवं फेफड़े स्वस्थ रहते हैं।

(3) यह मेरुदण्ड एवं कमर को लचीला बनाकर इनमें आयी हुई विकृतियों को दूर करता है।

(4) यह सम्पूर्ण शरीर में रक्तसंचरण अच्छी तरह से सम्पन्न करता है। इससे रक्त में आयी हुई अशुद्धियाँ दूर होकर चर्मरोगों का नाश होता है।

(5) यह सम्पूर्ण शरीर को आरोग्य प्रदान करता है, अतः प्रातः शीघ्र उठकर सूर्य–नमस्कार का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

(6) सूर्य की किरणें त्वचा पर पड़ने से हमारे शरीर में विटामिन 'डी' का निर्माण होता है। यह विटामिन कैल्शियम व फॉस्फोरस जैसे अति आवश्यक खनिज लवणों को शरीर के लिए अतीव उपयोगी बनाता है, जिसके कारण शरीर की हड्डियाँ मजबूत हो जाती हैं।

(7) आमाशय, आंत्र, कलेजा, गुर्दा, फेफड़ा, पित्ताशय तथा मेरुदण्ड निरोगी बनते हैं।

(8) यह अन्तःस्रावी ग्रंथियों में धीरे–धीरे अच्छा प्रभाव डालता है।

(9) प्रातःकालीन सूर्य की रोशनी का भरपूर उपयोग करने से तनाव, थकान व उदासीनता दूर हो जाते हैं। मन, मस्तिष्क एवं शरीर तरोताजा रहते हैं। अतः प्रातःकाल सूर्याभिमुख होकर सूर्य–नमस्कार अवश्य करना चाहिए।

प्रश्न–24. योगनिद्रा से क्या आशय है?

अथवा

योगनिद्रा के लाभ का वर्णन कीजिये।

उत्तर– योगनिद्रा – पीठ के बल सीधे भूमि पर लेट जायें। दोनों पैरों में लगभग एक फुट का अन्तर हो तथा दोनों हाथों को भी जंघाओं से थोड़ी दूरी पर रखते हुए हाथों को ऊपर की ओर खोलकर रखें। आँखें बन्द, गर्दन सीधी पूरा शरीर तनाव–रहित अवस्था में हो। धीरे–धीरे चार–पाँच लम्बे श्वांस भरें और छोड़ें। अब मन द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग को देखते हुए संकल्प द्वारा एक–एक अवयव को शिथिल तथा तनाव–रहित अवस्था में अनुभव करना है। जीवन के समस्त कार्यों और महान उद्देश्यों की सफलता के पीछे संकल्प की ही शक्ति मुख्य हुआ करती है। अब हमें इस समय शरीर को पूर्ण विश्राम देना है। इसके लिए भी हमें शरीर के विश्राम अथवा शिथिलीकरण का संकल्प करना होगा।

योगनिद्रा के लाभ– योगनिद्रा के लाभ निम्नवत् हैं– मानसिक तनाव (डिप्रेशन), उच्च रक्तचाप, हृदयरोग तथा अनिद्रा के लिए यह आसन सर्वोत्तम है। इन रोगियों को यह आसन नियमित करना चाहिए।

(1) इस आसन के करने से स्नायु–दुर्बलता, थकान तथा नकारात्मक चिन्तन दूर होता है।

(2) शरीर, मन, मस्तिष्क एवं आत्मा को पूर्ण विश्राम, शक्ति, उत्साह एवं आनन्द मिलता है।

(3) ध्यान की स्थिति का विकास होता है।

(4) आसन करते हुए बीच–बीच में शवासन करने से थोड़े ही समय में शरीर की थकान दूर हो जाती है।

प्रश्न–25. स्वस्थ जीवनचर्या के लिए समेकित योग मॉड्यूल व्यक्त कीजिए।

उत्तर– योग की वास्तविक प्रकृति का सार निम्नलिखित प्रकार से दिया जा सकता है :

- योग सम्पूर्णता की अनुभूति करने का विज्ञान और कला है अर्थात् इसका उद्देश्य अन्तिम वास्तविकता अथवा उच्चतम चेतनता को प्राप्त करना है।
- सकल जीवन पद्धति अर्थात् शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक कल्याण से युक्त सम्पूर्ण जीवन।
- स्वास्थ्य, सामंजस्य और प्रसन्नता का विज्ञान जहाँ स्वास्थ्य, सामंजस्य और प्रसन्नता का अर्थ है–

  स्वास्थ्य (सकल स्वास्थ्य)– शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक कल्याण।

  सामंजस्य– आन्तरिक सामंजस्य (शरीर, मन और भावना) तथा बाह्य सामंजस्य (सामाजिक, व्यावसायिक)।

  आनन्द– प्रसन्नता की स्थायी अवस्था अथवा परमानन्द की स्थिति अथवा आनन्दमय कोष– यह आत्म अनुभूति की स्थिति है।

उपर्युक्त के आधार पर हमने समझा है कि दिव्यता की ऊँचाईयों तक व्यक्ति के विकास को संभव बनाने के लिए योग की सामान्य क्रियाविधि के अन्तर्गत ऐसी उपचारात्मक तकनीक आनी चाहिए जिनके उपयोग से व्यक्ति अधिक स्वस्थ बना रहे।

योग ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तित्व विकास में निम्नलिखित के आधार पर मुख्य भूमिका निभाती है–

(1) आसनों के द्वारा मांसपेशियों में गहन विश्रान्ति आ जाती है।

(2) श्वसन क्रिया की दर कम तथा श्वास लेने की प्रक्रिया सन्तुलित हो जाती है जो प्राणायाम और श्वसन संबंधी अभ्यासों से संभव है।

(3) ध्यान के द्वारा मानसिक धरातल पर सृजनात्मक और इच्छाशक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

(4) ज्ञान योग के अभ्यास से बुद्धि को तीव्र बनाना तथा मन की शान्ति स्थापित करना संभव होता है।

(5) जीवन में प्रसन्नता का समावेश तथा भावनात्मक स्तर पर समरसता लाई जा सकती है। यह भजनों, धुनों और भक्तिपूर्ण कीर्तनों के माध्यम से संभव है।

(6) मनुष्य के जीवन के हर पहलू में अन्तर्जात दिव्यता का प्रकटीकरण कर्म–योग के नियमों के अनुसरण द्वारा संभव है।

प्रश्न–26. प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि पर टिप्पणी लिखिये।

अथवा

धारणा का क्या अर्थ है?

अथवा

अष्टांग योग में ध्यान का क्या अर्थ है? समझाइये।

उत्तर– प्राणायाम– पतंजलि के अनुसार, **तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः** अर्थात् अन्तःश्वसन और बहिःश्वसन (श्वास व उच्छ्वास) की गति को तोड़ना प्राणायाम कहलाता है। प्राण श्वसन से संबंधित है और जब कोई श्वसन क्रिया पर नियंत्रण करने लगता है, तो यह समझिए कि उसने प्राणायाम करना शुरू कर दिया है। श्वसन प्रणाली स्वैच्छिक तथा स्वतः दोनों रूपों में कार्य कर सकती है। किन्तु जब कोई सजग नहीं रहता तो श्वसन क्रिया स्वतः ही एक विशेष गति से होती रहती है। इसकी सामान्य गति 15 श्वासें (अन्तः श्वसन के साथ–साथ बहिःश्वसन) प्रति मिनट की होती है। प्राणायाम करते हुए व्यक्ति श्वसन गति को स्वेच्छा से कम कर देना है और दोनों नासिका छिद्रों के मध्य इसे संतुलित भी कर देता है।

प्राणायाम में पहला सोपान परिमार्जन (स्वच्छता) का होता है। यह देखना बहुत आवश्यक है कि इसमें हमारी श्वसन प्रणाली हमारे नियंत्रण में आ जाती है। इसमें तीव्रगति से श्वसन तकनीक शामिल है, जिसे कपालभाति कहा जाता है। यह क्रिया श्वसन मार्ग को स्वच्छ बना देती है। कपाल का अर्थ है खोपड़ी और भाति का अर्थ चमक से है। तीव्र श्वसन क्रिया से मस्तिष्क की कोशिकाएँ संवेदनशील हो जाती हैं और कपाल (खोपड़ी) में चमक आ जाती है। ऐसा दोनों नासिका छिद्रों से सक्रिय उच्छ्वास से और उसके बाद स्वतः अन्तःश्वसन से होता है। यह सम्पूर्ण क्रिया पेट में होती है, इसमें आमाशय को अन्दर की ओर खींचना होता है, जिसमें फुफकार के साथ श्वास तेजी से बाहर आती है। पूरी श्वास फुफकार से बाहर आनी चाहिए। जब यह दोनों नासिका छिद्रों से की जाती है तो इसे द्विनासिका कपालभाति कहते हैं। मगर जब बारी–बारी से दोनों नासिकाओं से की जाती है तो पहले फुफकार बायीं नासिका छिद्र से और उसके बाद दायीं नासिका छिद्र से एकान्तर नासिका कपालभाति कहा जाता है।

सामान्य रूप से इसकी गति 120 सोपान प्रति मिनट यानी 120 बार अन्तः श्वसन तथा 120 बार उच्छ्वास प्रतिमिनट होती है। इस क्रिया से रक्त में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा कम हो जाती है और रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा में वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप सारी प्रणाली स्वच्छ हो जाती है। कपालभाति से श्वसन प्रणाली की सफाई हो जाती है। चाहे द्विनासिका कपालभाति हो या एकान्तर कपालभाति दोनों का प्रभाव एक ही तरह से होता है। पूरी प्रणाली में ऑक्सीजन का संचार होता है और मस्तिष्क की कोशिकाएँ भी संवेदनशील हो जाती हैं, क्योंकि मस्तिष्क में पूर्ण रूप से ऑक्सीजन युक्त रक्त की आपूर्ति हो जाती है इससे स्मरणशक्ति और एकाग्रता शक्ति बढ़ती है और मन पर व्यापक रूप से नियंत्रण हो जाता है।

दूसरा सोपान श्वसन को सामान्य करना होता है, जिसे अनुभागीय/आंशिक श्वसन से पूरा किया जाता है। श्वास लेने और श्वास छोड़ने की प्रक्रिया से श्वसन का एक चक्र पूरा होता है। सामान्य श्वसन क्रिया की दर 15 से 18 प्रति मिनट होती है। किन्तु कुछ लोगों की गलत आदत होने के कारण उनकी श्वसन क्रिया बहुत तीव्र होती है और अधिकांश लोग श्वास संबंधी समस्याओं से ग्रस्त होते हैं। यह देखा गया है कि श्वसन क्रिया की दर बहुत तेज होती है।

सरलतम प्राणायाम किसी भी सुविधाजनक स्थिति में विश्राम की अवस्था में बैठकर धीरे-धीरे श्वसन करना होता है। यह सुलभ प्राणायाम होता है। प्रगति की दृष्टि से श्वास लेते समय शीतल वायु की अनुभूति कीजिए और बाहर छोड़ते समय गर्म वायु की अनुभूति होती है। जब भीतर श्वास लेते हैं तो ऐसा लगना चाहिए कि पूरे शरीर में ऊर्जा का संचार हो रहा है और जब श्वास धीरे-धीरे बाहर छोड़ते हैं तो पूरे शरीर में विश्रान्ति की अनुभूति होती है, जिससे आगे लाभ होता है। इस प्राणायाम को किसी भी दिन किसी भी समय खड़े होकर बैठकर अथवा लेटकर किया जा सकता है।

- **प्रत्याहार**– इन्द्रियाँ पर नियंत्रण करने से जब इन्द्रियों का उनके विषयों से सम्बन्ध टूट जाता है तब इन्द्रियाँ चित स्वरूप हो जाते हैं जैसा कि योगसूत्र में कहा गया है–

  स्ववषयासम्प्रयोगे चित्स्वरूपानुकर इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

  तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों का निग्रह ही प्रत्याहार है। जब इन्द्रियाँ विषयों की तरफ नहीं भागती हैं तो चित स्थिर हो जाता है। यही प्रत्याहार की स्थिति है।
- **धारणा**– प्रारंभिक रूप से मन में कई प्रकार के विचार और विषय तैरते रहते हैं। एकाग्रता के माध्यम से इन विचारों और विषयों को कम किया जाता है और उसके बाद मन को एक विषय के ऊपर या एक विचार के ऊपर केन्द्रित किया जाता है। धारणा की यही अवस्था है। पतंजलि कहते हैं कि देशबन्धश्चितस्य धारणा (पा.यो.सू. 3.1) जिसमें मन को एक बिन्दु विशेष पर एकाग्र किया जाता है। वस्तुतः यह वाटक की एक क्रियाविधि होती है। जलती हुई मोमबत्ती की लौ को ही एक तरफ से देखते रहते हैं तो यह एकाग्रता का उदाहरण है। यही धारणा होती है।
- **ध्यान**– धारणा का दूसरा सोपन ध्यान या मेडीटेसन होता है। यदि धारणा केन्द्रित होती है तो ध्यान विकेन्द्रित होता है। पतंजलि हमें ध्यान के बारे में बताते हैं कि यह प्रयासहीन धारणा है। जैसाकि धारणा के अन्तर्गत यदि विपरीत रूप से ध्यान को केन्द्रित किया जाता है तो प्रयासहीन ध्यान के अन्तर्गत पूरा विकेन्द्रीकरण होता है। यह पतंजलि के अष्टांग योग का सातवां अंग है।
- **समाधि**– ध्यान से पूर्व मन में अनेक यादृच्छिक विचार विद्यमान होते हैं। ध्यान की अवस्था में ये सब विचार समाप्त हो जाते हैं। तब केवल वही वस्तु दिखाई देती है जिस पर ध्यान केन्द्रित होता है। ध्यान की परिपक्व अवस्था आने पर उस वस्तु का ज्ञान भी नहीं रहता है। उस अवस्था में द्रष्टा और दृश्य का भेद मिट जाता है। द्रष्टा चैतन्य रूप हो जाता है। यही समाधि है। सम्यक् आधीयते इति समाधिः अर्थात् गहन तल्लीनता अथवा महा–चेतनता ही समाधि है।

प्रश्न–27. स्वस्थ रहने के यौगिक सिद्धान्त क्या हैं? संक्षेप में वर्णन कीजिये।

उत्तर– स्वस्थ रहने के यौगिक सिद्धान्त (आहार, विहार, आचार, विचार)– 'स्वास्थ्य ही धन है', यह एक प्रमाणित तथ्य है। एक स्वस्थ जीवन जीने के लिए अनिवार्य है कि हम अच्छी चीजें करें और एक स्वस्थ जीवन शैली अपनाएँ। आधुनिक जगत जीवन शैली की व्यापक विकृतियों की विडम्बना झेल रहा है, जिसमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता है तथा जिसे व्यक्ति स्वयं सचेतन रूप से ला सकते हैं। उचित और स्वस्थ जीवन शैली अपनाने में योग का बड़ा महत्व है, इसके मुख्य घटक इस प्रकार हैं–

(1) **आचार : उचित आचार (नियमित दैनिक कार्य) द्वारा बेहतर मानसिक स्वास्थ्य–** योग में स्वस्थ कार्यकलाप के महत्व पर जोर दिया जाता है, जैसे– नियमित व्यायाम तथा आसन, प्राणायाम और क्रियाओं की संस्तुति की जाती है। सलाह ही दी जाती है कि इन्हें दिनचर्या बिल्कुल नियमित रूप से करनी चाहिए। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि कार्य, भोजन, व्यायाम और सोने के समय का ध्यान रखा जाए। नियमित आचार का एक उत्तम उदाहरण सूर्य है। इस प्रकार के स्वस्थ कार्यकलाप का एक मुख्य परिणाम है हृदय और श्वास संबंधी स्वास्थ्य।

(2) **विचार : सही विचारों द्वारा उत्तम बौद्धिक स्वास्थ्य–** जीवन के प्रति उचित विचार और उचित दृष्टिकोण (अभिवृत्ति) होना हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। संतुलित मानसिक स्थिति को नैतिक नियंत्रण और नीतिपरक मूल्यों (यम–नियम) का पालन करके हासिल किया जा सकता है। महात्मा गांधी ने कहा था– "प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के लिए इस दुनिया में बहुत कुछ मौजूद है, किन्तु किसी व्यक्ति की लालसा के लिए यह पर्याप्त नहीं है।"

(3) **आहार–** 'अन्नम् ब्रह्म' भोजन ब्रह्म है। योग में स्वस्थ, पोषक तत्वों से भरपूर आहार की आवश्यकता पर जोर दिया गया है, जिसमें संतुलित ताजे आहार के साथ ताजा पानी, हरा सलाद, अंकुरित अन्न आदि, अशोधित अनाज और ताजे फल शामिल हैं। सात्त्विक आहार की आवश्यकता के प्रति सजग रहना बड़ी बात है, और यह प्रेम और स्नेह से बनाया हुआ होना चाहिए, और भोजन परोसने में भी वही भाव होना आवश्यक है।

प्रश्न–28. अच्छे स्वास्थ्य के लिए भोजन का क्या योगदान है? लिखिए।

उत्तर– कब खाना चाहिए– प्राचीन ग्रंथों में कहा गया है कि व्यक्ति को सूर्योदय के समय रातभर का व्रत तोड़ना चाहिए और सूर्यास्त के समय अंतिम भोजन कर लेना चाहिए।

- राजा की तरह नास्ता करो। जो कुछ भी हम सुबह के समय खाते हैं, उसका अवशोषण और संचय अधिकतम होता है। इसलिए सुबह का भोजन पूर्ण रूप से पौष्टिक होना चाहिए।
- दोपहर का भोजन एक राजकुमार की तरह करो, दोपहर का भोजन ऐसा होना चाहिए जो आसानी से पच जाए।
- शाम का अल्पहारः अपनी–अपनी पसंद के अनुसार किसी भी तरह के स्वाद का नाश्ता किया जा सकता है।
- रात का भोजन एक भिखारी की तरह रात का खाना पूरे दिन के भोजन से सबसे हल्का होना चाहिए।

क्या खाया जाए– 'जैसा खाओ अन्न, वैसा होता मन' और जैसा मन होता है, वैसा ही आदमी होता है।

- **सात्त्विक भोजन–** पाचक भोजन आराम से खाओ, इससे विश्रान्ति और शान्ति की भावना आती है।
- **राजसिक भोजन–** इस भोजन से बड़ी मात्रा में ऊर्जा मिलती है, यह आसानी से नहीं पचता तथा इससे मन विचलित होता है, इसलिए इससे बचना चाहिए।
- **तामसिक भोजना–** यह बासी भोजन है तथा इस पचाने में काफी समय लगता है इसको खाने से व्यक्ति सुस्त, निष्क्रिय, आलसी हो जाता है इससे तो अवश्य बचना चाहिए।

प्रश्न–29. 'विचार से बेहतर भावनात्मक स्वास्थ्य', कथन को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

स्वस्थ रहने के लिए कैसे विचार रखने चाहिए?

उत्तर– 'विचार से बेहतर भावनात्मक स्वास्थ्य'– अच्छे स्वास्थ्य के लिए उचित मनोरंजक कार्यकलाप होने चाहिए जिससे शरीर और मन को आराम मिले। इसमें पूर्ण विश्रान्ति की अवस्था रहती है। वाणी तथा विचार भी शांत हो। उस तरह की गतिविधि भी हो सकती है, जिनमें व्यक्ति व्यष्टित्व की भावना खो दे। समष्टि की भावना अपनाने और व्यष्टि की भावना छोड़ने के लिए कर्मयोग सबसे शानदार तरीका है। समष्टि सक्रिय रचनात्मक शौक होने से दबी हुई भावनाएँ निकल जाती हैं और मन तरोताजा हो जाता है। ऐसे कार्यकलाप, जैसे– बागवानी, कोई संगीत का यंत्र बजाना, गीत या कविताओं का गायन, कलाकृति बनाना तथा पेंटिंग या अन्य ऐसे शौक जो व्यक्ति को पसंद होते हैं, करने से आनन्द की प्राप्ति में सहायता मिलती है। बगीचे, समुद्रतट, झील अथवा नदी के किनारे, सुबह या शाम के समय पहाड़ की चोटी पर प्रकृति की सैर करने से शरीर, मन और आत्मा जीवन्त हो उठती है। साधारण खेल वाले कार्यकलाप जैसे आपस में गेंद/रिंग खेलना या फेंकना या डफ बॉल खेलना, ऐसे खेल नियमित रूप से हंसते हुए खुशी से खेलने से शरीर, मन एवं आत्मा तरोताजा हो जाते हैं। बच्चों के साथ खेलने या बच्चों के कार्यकलाप के साथ धुलमिल जाने से भी आराम और ताजगी प्राप्त होती है। लम्बे समय तक कठोर शारीरिक और मानसिक परिश्रम करने के बाद हठ योग की चैतन्य विश्रान्ति वाली क्रियाएँ जिनमें शवासन या निस्पंदभाव क्रियाएँ शामिल हैं।

इन्हें करने से व्यक्ति को आराम और ताजगी मिलती है। चैतन्य विश्रान्ति से नींद भी अच्छी आती है, शरीर को बहुत आराम मिलता है और मन एकदम शान्त व निश्चिंत हो जाता है।

प्रश्न–30. योग तथा यौगिक आहारीय विचार से चिंता तथा तनाव प्रबंधन के बारे में लिखिये।

अथवा

चिन्ता, अवसाद, तनाव कम करने में योग की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– योग तथा यौगिक आहारीय विचार से तनाव प्रबंधन– तनाव एक दुष्प्रभावी अनुक्रिया है, जो संबंधित व्यक्ति में उसकी विशेषता के अनुरूप होती है तथा उसके अनुभव व अत्यधिक मनोदैहिक, मनो–सामाजिक और जैव–पारिस्थितिकीय आवश्यकताओं से संबंधित होती है।

पतंजलि योग सूत्र के अनुसार 'तनाव एक मनोशारीरिक असंतुलन की अवस्था है, जिसकी अनुभूति अपने आप का मानसिक वृत्तियों के साथ एकात्मीकरण के कारण होती है तथा जो हमारी अस्तित्व संबंधी वेदना और मनस्ताप, (जिन्हें क्लेशों की संज्ञा दी गई है) से उत्पन्न होती है एवं सामाजिक वातावरण तथा मनोशारीरिक अनुक्रिया प्रारूपों द्वारा प्रेरित होती है।'

योग द्वारा तनाव को कम करना– यू–स्ट्रैस–डिस्ट्रैस द्विभाजन में योग का कोई योगदान नहीं होता। योग के मतानुसार मानसिक गतिकी को पूरी तरह से शांत किया जा सकता है, (प.यो.सू. 1:2), जिससे व्यक्ति यहीं पर और अभी अपने अनुभवातीत 'स्व' को महसूस करता है (प.यो.सू. 1:3)। चेतना की इस अनुभवतीत स्थिति को यौगिक साहित्य में रचनात्मक और जीवन और जीवनयापन से संबंधित सांसारिक तनाव से कहीं ऊपर माना जाता है। हम जिस सीमा तक इस दिव्य स्थिति का अनुभव करते हैं, उसी सीमा तक हम अपने आप को मन की वृत्तियों के साथ एकात्मीकरण से परे ले जाते हैं। इसका आशय है कि हम योगाभ्यास में जितनी प्रगति करेंगे, हमारा मनोदैहिक संतुलन उतना ही सुदृढ़ होगा। इससे समत्व प्राप्त होता है (भगवद्गीता 2:47), जिसमें हमारे सारे कर्म कौशलपूर्ण और रचनात्मक बन जाते हैं (भगवद्गीता 2:49)। इस प्रकार योगाभ्यास करने वाले को सभी मानसिक विकारों से रहित एवं निरन्तर विकास व पूर्णता से सम्पन्न सकारात्मक स्वास्थ्य की अनुभूति होने लगती है। योगाभ्यास के प्रभाव से योग साधक का तनावों के प्रति रवैया और धारणा बदल जाने के कारण उसमें अनुपम सामर्थ्य आ जाता है और तनाव समाप्त हो जाता है।

प्रश्न–31. आहार के द्वारा प्राण संयमन पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– आहार के द्वारा प्राण संयमन (ऊर्जा की गतिकी का व्यवस्थित प्रवाह)– हठप्रदीपिका (11:2) में कहा गया है कि वित्त और प्राण एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। एक को सुधारने से दूसरा भी सुधर जाता है। प्राण सभी दैहिक क्रियाओं के लिए आधार तैयार करता है तथा समस्त दैहिक क्रियाएँ मुख्य रूप से तंत्रिका तंत्र, श्वसन तंत्र और पाचन तंत्र द्वारा संचालित होती है इसलिए इन तंत्रों की अपसामान्य क्रियाओं का मनुष्य के क्रियात्मक–जगत पर प्रतिकूल प्रभाव होता है, जिससे प्राण की अपसामान्य क्रिया का पता लगता है। अशांत प्राण, जिसे विसूची प्राण कहा गया है, भी मन की कार्यात्मकता को प्रभावित करता है।

इस दृश्चक्र से मनुष्य में दूषित भावनाएँ, विचार और व्यवहार आने लगते हैं। इसलिए अधिक नमकीन, खट्टा, चटपटा, गर्म और मसालेदार भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि इनसे तंत्रिका तंत्र उत्तेजित होता है तथा इससे जलन उत्पन्न होती है। इसी कारण मांसाहारी भोजन से भी सामान्य नियमानुसार परहेज करने के लिए कहा गया है। लगभग सभी यौगिक ग्रंथों में यही कहा गया है कि मनोदैहिक क्रियाओं को सुव्यवस्थित व शांत करने से ही प्राण की क्रिया सुचारू रूप से चलती रहती है और यही सकारात्मक स्वास्थ्य का मार्ग होता है। पतंजलि योग में यम, नियम तथा हठयोग के द्वारा सलाह दी गई कि अधिक जनसम्पर्क से दूर रहें, इसमें सम्प्रेषित करने के लिए यही संदेश है। हमारी मनोदैहिक प्रणाली को सुव्यवस्थित रखने के लिए सार्थक रूप से संतुलित सामाजिक जीवन और सद्भावपूर्ण सामाजिक समायोजन बहुत आवश्यक है। इससे मानव शरीर के भीतर एक आदर्श प्राणिक क्रिया सुचारू रूप से चलती रहती है।

प्रश्न–32. स्वस्थ व्यक्ति की दिनचर्या पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– स्वस्थ व्यक्ति की दिनचर्या– उत्तम स्वास्थ्य ही सम्पूर्ण सुखों का आधार है। स्वास्थ्य है तो जहान है, नहीं तो शमशान है। स्वस्थ कौन है? आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ सुश्रुतसंहिता में **महर्षि सुश्रुत** लिखते हैं–

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

जिसके तीनों दोष– बात, पित्त एवं कफ सम हों, जठराग्नि सम (न अति मन्द, न अति तीव्र) हो, शरीर को धारण करने वाली सप्त धातुएँ रस, रक्त, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य उचित अनुपात में हों, मल–मूत्र की क्रिया सम्यक् प्रकार से होती हो और दस इन्द्रियाँ (कान, नाक, आँख, त्वचा, रसना, गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर एवं जिव्हा), मन एवं इनका स्वामी आत्मा भी प्रसन्न हो तो ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है। **महर्षि सुश्रुत** ने 'स्वस्थ' शब्द की बहुत ही व्यापक एवं वैज्ञानिक परिभाषा की है।

महर्षि चरक के अनुसार इस स्वस्थता की प्राप्ति हेतु आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य– ये तीन (उपस्तम्भ) खम्भे हैं।

त्रय उपस्तम्भा इति– आहारः स्वप्नो (निद्रा) ब्रह्मचर्यमिति।

वात, पित्त, कफ रूपी तीन स्तम्भों पर स्थित यह शरीर पूर्वोक्त तीन उपस्तम्भों (आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य) द्वारा स्वस्थ व दृढ़ बना है। गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण भी कहते हैं–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

जिसके आहार, विहार, विचार एवं व्यवहार सन्तुलित तथा संयमित हैं, जिसके कार्यों में दिव्यता, मन में सदा पवित्रता एवं शुभ के प्रति अभीप्सा है, जिसका शयन एवं जागरण नियमित है, वही सच्चा योगी है। इन उपस्तम्भों एवं अन्य नियमों के विषय में यहाँ संक्षिप्त रूप से विचार प्रस्तुत है।

(1) आहार–

यथा च खायते ह्यन्नं तथा सम्पद्यते मनः। यथा च पीयते वारि तथा निर्गद्यते वचः।।

आहार से व्यक्ति के शरीर का निर्माण होता है। आहार का शरीर पर ही नहीं, मन पर भी पूरा प्रभाव पड़ता है– 'जैसा अन्न, वैसा मन'।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

आहार के विषय में आयुर्वेद का एक दृष्टान्त बहुत ही सुन्दर है। प्रश्न किया गया कि 'कोऽस्क्, कोऽरुक्, कोऽरुक्?' कौन निरोगी है? उत्तर दिया– 'हितभुक्, ऋतुभुक्' अर्थात् हितकारी द्रव्यों का भोजन करने वाला, उचित मात्रा में भोजन करने वाला एवं ऋतु के अनुकूल भोजन करने वाला निरोगी रहता है। अपनी प्रकृति (वात, पित्त, कफ) को जानकर उसके अनुसार भोजन लें। यदि वात प्रकृति है, शरीर में वायु विकार होते हैं तो वायुकारक एवं खट्टा भोजन का त्याग कर देना चाहिए। छोटी पिप्पली, सोंठ, अदरक, लहसुन, घृतकुमारी, निर्गुण्डी, परिजात आदि का प्रयोग करते रहना चाहिए। पित्त प्रकृति वाले को गर्म, तले हुए पदार्थ नहीं लेने चाहिए। घीया, खीरा, ककड़ी, अंकुरित अन्न, भीगा हुआ मुनक्का एवं अंजीर आदि तथा कच्चा भोजन लाभदायक होता है। कफ प्रकृति वाले को ठंडी चीजें घी, दही, छाछ आदि का सेवन अति मात्रा में कभी नहीं करना चाहिए। दूध में छोटी पिप्पली, हल्दी, आदि डालकर सेवन करना चाहिए। उचित मात्रा में भोजन लेना चाहिए। आमाशय के दो भाग अन्न के लिए होने चाहिए, तृतीय भाग पेय पदार्थों के लिए रखते हुए चतुर्थ भाग को वायुसंचार के लिए खाली रखना चाहिए। इस प्रकार का भोजन मित भोजन कहलाता है। ऋतु के अनुसार पदार्थों का मेल करके सेवन करने से रोग पास में नहीं आते। भोजन का समय निश्चित होना चाहिए। असमय में किया हुआ भोजन अपचन की स्थिति बनाकर रोग उत्पन्न करता है। प्रातःकाल फलों या सब्जियों का रस अथवा अंकुरित या दलिया आदि अल्पाहार, दोपहर संतुलित, सात्त्विक व पौष्टिक भोजन तथा सायंकाल 8 बजे से पहले हल्का भोजन लेना चाहिए। भोजन करते समय वार्तालाप करने से भोजन अच्छी तरह से चबाया नहीं जाता तथा अधिक भी खा लिया जाता है। एक ग्रास को बत्तीस बार या कम से कम बीस बार तो चबाना ही चाहिए। चबाकर भोजन करने से हिंसा भाव की भी निवृति होती है, क्योंकि हम सब जानते हैं कि जब क्रोध आता है, तब व्यक्ति दाँत पीसने लगता है, अर्थात् क्रोध का उद्गम–स्थान दाँत भी है। यदि हम हिंसाभाव को समाप्त करना चाहते हैं तो हमें चबाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। आप स्वयं इसका अनुभव करके देखेंगे तो इसके परिणाम से परिचित होंगे। यदि भोजन रूक्ष हो तो भोजन के बीच में थोड़ी मात्रा में पानी पी सकते हैं। भोजन के बाद दो–तीन घूँट से ज्यादा पानी नहीं पीयें। यदि छाछ हो तो जरूर पीना चाहिए। संस्कृत में एक श्लोक आता है–

भोजनान्ते पिबेत् तक्रं दिनान्ते च पिबेत् पयः।
निशान्ते च पिबेद्वारि किं वैद्येन प्रयोजनम्।।

इसका तात्पर्य है– जो प्रातःकाल उठकर जल पीता है, रात्रि को भोजनोपरान्त दूध पीता है तथा मध्यान्ह में भोजन के बाद छाछ पीता है, उसे वैद्य की आवश्यकता नहीं होती। अर्थात् वह व्यक्ति निरोग रहता है। इसके साथ–साथ हमारा भोजन पूर्ण रूप से हमारे लिए उपयुक्त हो। भोजन में खनिज, लवण एवं विटामिन्स भी भरपूर होने चाहिए। भोजन में मांस, अंडे आदि का प्रयोग न हो। भगवान ने हमें शाकाहारी बनाया है। जब हम रोटी खाकर जी सकते

हैं, जिसमें कोई हिंसा नहीं, तो किसी प्राणों की हत्या कर उसके प्रिय जीवन को नष्ट कर जीने की क्या आवश्यकता है? इस जीने से मर जाना बेहतर है। मांस खाने से दया, करुणा, सहानुभूति, प्रेम, अपनत्व एवं श्रद्धाभक्ति आदि मानवीय गुणों का अन्त हो जाता है। मानव दानव होकर विचरता है। मांसाहारी का पेट एक मुर्दाघर या कब्रिस्तान की तरह होता है।

(2) निद्रा– निद्रा अपने–आप में सुखद अनुभूति व भगवान का वरदान जैसी है। यदि व्यक्ति को नींद न आये तो पागल भी हो सकता है। निद्रा देखने में तो कुछ नहीं लगती, परन्तु जिनको नींद नहीं आती, वे ही जानते हैं, इसका क्या महत्व है। एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए 6 घंटे की नींद पर्याप्त है। बालक एवं वृद्ध के लिए आठ घंटे सोना उचित है। सायंकाल शीघ्र सोना एवं प्रातःकाल शीघ्र उठना व्यक्ति के जीवन को उन्नत बनाता है।

भगवान ने प्रकृति को कुछ ऐसे ही नियमों में बाँधा है कि सभी मनुष्येतर प्राणी पशु, पक्षी सायंकाल होने पर अपने–अपने ठिकानों पर विश्राम करने लगते हैं। उल्लू व चमगादड़ आदि को छोड़कर सभी पक्षी जैसे ही रात्रि का अवसान होता है, प्रभु का स्मरण करके अपने कार्यों में लग जाते हैं। मुर्गा दूसरों को ब्रह्म मुहूर्त में न सोने का संदेश देता है। चिड़िया सुन्दर गीतों से भगवान के नाम का स्तवन करती हुई नजर आती है, परन्तु वह अभागा मनुष्य उल्लू की तरह रात भर जागता है और इसका आनन्द लिए बिना ही पड़ा रहता है और अन्त में रोगी हो जाता है। हम भी मूक प्राणियों से प्रेरणा प्राप्त करें। जल्दी सोना एवं जल्दी उठना व्यक्ति को स्वस्थ एवं महान बनाता है।

(3) ब्रह्मचर्य– अपनी इन्द्रियों एवं मन को विषयों से हटाकर ईश्वर एवं परोपकार में लगाने का नाम ब्रह्मचर्य है। केवल उपस्थ इन्द्रिय का संयम–मात्र ही ब्रह्मचर्य नहीं, अपितु इन्द्रियों एवं मन की शक्तियों का रूपान्तरण कर उनको आत्माभिमुखी कर ब्रह्म की प्राप्ति करना ब्रह्मचर्य का लक्ष्य है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भोग को हम नहीं भोगते, भोग ही हमें भोग लेते हैं। (जैसे– मोटापा, मधुमेह, कोलेस्ट्रोल व उच्चरक्तचाप आदि होने पर भोजन को हम नहीं खाते अपितु असंचय भोजन हमें खाने लगता है।) तप नहीं तपा जाता, हम स्वयं तप जाते हैं। काल का अन्त नहीं होता, हम ही काल में समा जाते हैं। तृष्णाएँ जीर्ण नहीं होतीं, हम स्वयं जीर्ण हो जाते हैं। भोग भोगने से तृप्ति कदापि नहीं होती, अपितु इच्छाएँ बलवती होती चली जाती हैं। महर्षि मनु कहते हैं–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

काम, काम के उपभोग से शान्त नहीं होता, अपितु अग्नि में जैसे घृत डालने से अग्नि तीव्र होती है, वैसे ही भोगों को भोगने से वासनाएँ और अधिक बढ़ जाती हैं। महर्षि कपिल भी सांख्यदर्शन में कहते हैं–

न भोगाद् रागशान्तिर्मुनिवत्।

अर्थात् भोग से कभी राग की शान्ति नहीं होती, प्रत्युत बढ़ती ही जाती है। सारी सृष्टि मर्यादाओं के पालन का सतत उपदेश दे रही है। हम भी इस मर्यादित सृष्टि के सहयोगी बनें।

(4) व्यायाम– इस शरीर को चलाने के लिए जैसे आहार की आवश्यकता है, वैसे ही आसन–प्राणायाम एवं व्यायाम आदि की भी परमावश्यकता है। बिना व्यायाम के शरीर अस्वस्थ तथा कान्तिहीन हो जाता है। जबकि नियमित रूप से व्यायाम करने से दुर्बल, रोगी एवं कुरूप व्यक्ति भी बलवान्, स्वस्थ एवं सुन्दर बन जाता है। हृदयरोग, मधुमेह, मोटापा, वातरोग, बवासीर, गैस, रक्तचाप, मानसिक तनाव आदि का भी मुख्य कारण शारीरिक श्रम का अभाव है। यदि नित्य प्रति योगाभ्यास किया जाये तो ये रोग कभी नहीं हो सकते। व्यायाम के भी कई प्रकार हैं। इन सबमें आसन–प्राणायाम सर्वोत्तम हैं। दूसरे व्यायामों से शारीरिक परिश्रम तो होता है, परन्तु मन में एकाग्रता एवं शान्ति नहीं आती। भारी व्यायाम करने से मांसपेशियों का ही अधिक व्यायाम होता है। इसीलिए भारी व्यायाम से मांसपेशियाँ इतनी सख्त हो जाती हैं कि उनमें धीरे–धीरे रक्त–संचार होना भी कम हो जाता है तथा दर्द होना प्रारंभ हो जाता है। जबकि आसन–प्राणायाम से पूर्ण आरोग्य लाभ होता है तथा किसी भी प्रकार की कोई हानि नहीं होती एवं शरीर के साथ मन में एकाग्रता एवं शान्ति का विकास होता है।

(5) स्नान– आसन आदि के पश्चात् शरीर का तापमान सामान्य होने पर स्नान करना चाहिए। स्नान से शरीर में ताजगी आती है, अनावश्यक गर्मी शान्त होकर शरीर शुद्ध एवं हल्का बन जाता है।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

जल से शरीर शुद्ध होता है। सत्य से मन की शुद्धि होती है। विद्या एवं तप के अनुष्ठान से आत्मा शुद्ध होती है तथा ज्ञान से बुद्धि निर्मल बनती है।

रोगी को छोड़कर सामान्य व्यक्ति को ताजा ठंडे पानी से स्नान करना चाहिए। शीतकाल में वृद्ध एवं वातरोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए उष्ण जल से स्नान हितकर होता है, पर उन्हें सिर पर उष्ण जल नहीं डालना चाहिए, क्योंकि इससे दृष्टि दुर्बल हो जाती है और बाल झड़ने लगते हैं तथा असमय में सफेद हो सकते हैं। आयुर्वेद का उल्लेख है–

उष्णाम्बुनाधः कायस्य परिषेको बलावहः।
तेनैव तूत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम्॥

शीतकाल में गर्म पानी से स्नान करना बलप्रद है, परन्तु सिर पर गर्म पानी डालने से केश एवं दृष्टि का बल क्षीण हो जाता है। अतः सिर पर गर्म पानी न डालें। स्नान के पश्चात् शरीर को खादी के तौलिए से खूब रगड़ना चाहिए। इससे कान्ति बढ़ती है। यदि कब्ज है तो पेट को भी तौलिए से रगड़ना चाहिए। स्वच्छ जल वाले तालाब, नदी आदि में तैरकर स्नान करें तो सर्वोत्तम है।

(5) ध्यान– शौच, स्नान, आसन आदि नित्यकर्मों से निवृत्त होकर सुख, शान्ति एवं आनन्द की कामना रखने वाले व्यक्ति प्रतिदिन कम से कम 15 मिनट से लेकर एक घंटे तक भगवान् का ध्यान, उपासना अवश्य करें। प्रणव (ओ३म्) एवं गायत्री आदि मंत्रों का दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक किया हुआ जप परम शक्ति, शान्ति एवं आनन्द प्रदान करता है।

प्रश्न–33. राज्य को परिभाषित कीजिये।

अथवा

राज्य की दो परिभाषायें लिखिये।

उत्तर– राज्य का अर्थ और परिभाषा– वास्तव में राज्य शब्द का प्रयोग एक ऐसे संगठित मानव समूह के लिये किया जाता है जो किसी निश्चित भू–भाग में रहते हैं और जिनकी अपनी स्वतन्त्र संगठित सरकार हो, जो प्रभुत्व–सम्पन्न हों। राज्य शब्द का वैधानिक अर्थ समझने के लिये हमें इसके अंग्रेजी शब्द ''स्टेट'' का अर्थ समझ लेना चाहिये। यह शब्द लैटिन भाषा के 'स्टेट्स' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'व्यक्ति का सामाजिक–स्तर'। प्राचीन काल में इसे पोलिस कहा जाता था। अब विद्वानों द्वारा दी गई राज्य की कुछ परिभाषायें जानना आवश्यक है। इनमें अग्रलिखित परिभाषायें मुख्य हैं–

अरस्तू के अनुसार– ''राज्य परिवारों तथा ग्रामों का एक ऐसा संघ है जिसका उद्देश्य एक पूर्ण, एक आत्म–निर्भर जीवन की प्राप्ति करना है, जिसका महत्व एक सुखी सम्मानित (मानव) जीवन से है।'' राज्य की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा विद्वान **गार्नर** की मानी जाती है। यह परिभाषा निम्नलिखित है– ''राजनीति विज्ञान और सार्वजनिक कानून की धारणा के अनुसार राज्य थोड़े या अधिक मनुष्यों का एक ऐसा समुदाय है जो किसी निश्चित भू–भाग पर स्थायी रूप से निवास करता हो और जो किसी बाह्य नियन्त्रण से पूर्णतया या अधिकांशतः मुक्त हो, जिसकी एक सुसंगठित सरकार हो जिसके आदेशों का पालन निवासियों के विशाल समुदाय द्वारा स्वभावतः किया जाता हो।''

प्रश्न–34. वैधानिक सम्प्रभुता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– वैधानिक सम्प्रभुता– उस सत्ता को वैधानिक सम्प्रभु कहते हैं जिसको समस्त राज्य के लिये विधि निर्मित करने का सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है और उसके आदेश विधि के समान मान्य होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति उन विधियों का अनिवार्य रूप से पालन करता है। उसको आध्यात्मिक विधान, नैतिक सिद्धान्तों और जनमत के आदेशों का उल्लंघन करने का अधिकार प्राप्त होता है। उसके अधिकारों पर किसी अन्य शक्ति का नियंत्रण नहीं होता है। इंग्लैण्ड में संसदमय सम्राट है। उसकी शक्तियों पर कोई भी वैधानिक प्रतिबंध नहीं है। **डायसी** ने तो इस सम्बन्ध में इतना तक कह डाला कि– 'इंग्लैण्ड की संसद वैधानिक रूप से इतनी शक्तिशाली है कि वह एक बच्चे की पूरी उम्र को घोषित कर सकती है, मरने के बाद भी किसी व्यक्ति को राजद्रोह का अपराधी बना सकती है, वह किसी गैर–वैधानिक बच्चे को वैधानिक घोषित कर सकती है, अथवा उचित समझे तो किसी व्यक्ति को अपने ही मामले में न्यायाधीश घोषित कर सकती है।' इंग्लैण्ड में वैधानिक सम्प्रभुता वहां की संसद के हाथ में है जिसका अर्थ यह है कि इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट कोई भी विधि बना सकती है और किसी भी विधि की समाप्ति की घोषणा कर सकती है। वहां केवल पार्लियामेंट द्वारा निर्मित विधि ही मानी जाती है तथा वहां के न्यायालय या न्यायाधीश केवल पार्लियामेंट द्वारा बनाई विधियों को ही मान्यता प्रदान करते हैं।

प्रश्न–35. लोकप्रिय सम्प्रभुता से क्या आशय है? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– लोकप्रिय सम्प्रभुता– मध्य–युग के विचारक जो राजा की शक्ति के विरोधी थे। उन्होंने लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अट्ठारहवीं शताब्दी में इसका प्रतिपादन फ्रांस के दार्शनिक रूसो ने बड़े जोरदार शब्दों में किया। उन्नीसवीं शताब्दी में इस सिद्धान्त का प्रचार तथा विकास प्रजातंत्र के विकास के साथ–साथ आरंभ हुआ। यदि

वैधानिक सम्प्रभुता जनता की इच्छा है और यह जनता की इच्छा का विरोध करती है तो वह अधिक समय तक कार्य नहीं कर सकती है और उसका शीघ्र अन्त कर दिया जाता है। जनता वैधानिक सम्प्रभुता के आदेशों का पालन इसलिये करती है, क्योंकि उसके आदेश जनता की इच्छानुसार होते हैं। प्रोफेसर रिची ने लोक सम्प्रभुता का समर्थन खुले शब्दों में किया। उनके अनुसार जनता प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन द्वारा सम्प्रभुता का प्रयोग करती है और परोक्ष रूप से विद्रोह करने के अधिकार द्वारा दबाव, आदि के कारण सम्प्रभुता का प्रयोग करती है, जनता के हाथ में शारीरिक बल होता है और उसके द्वारा यह सरकार को उलट सकती है।

प्रश्न–36. नागरिकता से आप क्या समझते हैं? नागरिकता का अर्थ लिखिये।

उत्तर– नागरिकता का अर्थ और परिभाषा– प्रसिद्ध यूनानी विद्वान **अरस्तू** ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'राजनीति' में इसकी सर्वप्रथम व्याख्या कर नगर या राज्य में उन निवासियों को नागरिक माना है जिन्हें उस नगर व राज्य में राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो तथा उनकी इस स्थिति को नागरिकता कहा है। अतः अरस्तू के अनुसार नागरिक वह है जो राज्य (नगर) के विचारात्मक कार्यों में और उसके अधिकारियों के चयन में भाग लेता है।

नागरिकता की अन्य परिभाषायें निम्नलिखित हैं–

विद्वान **ब्लेकवेल** के शब्दों में– 'नागरिकता का आशय एक राज्य की पूर्ण और उत्तरदायित्व भरी सदस्यता है।'

विद्वान **डी. डब्ल्यू. ब्रोगन** के अनुसार, 'नागरिकता के दो पहलू हैं– प्रथम प्रत्येक नागरिक का यह अधिकार है, कि राजनीतिक समाज के प्रबन्ध में उसकी सलाह ली जाये।'

प्रश्न–37. लोकतंत्र अथवा प्रजातंत्र का अर्थ और परिभाषायें लिखिये।

उत्तर– लोकतन्त्र एक शासन–प्रणाली के रूप में **डेमोक्रेसी (Democracy)** शब्द के हिन्दी रूपान्तरण के रूप में प्रयुक्त होता है, परन्तु कई विद्वान इसे मात्र एक शासन–प्रणाली नहीं मानते, अपितु इसे जीवन–पद्धति मानते हैं। इस मत के अनुसार मनुष्य का व्यवहार लोकतांत्रिक होता है, तभी किसी समाज में लोकतन्त्र है, ऐसा माना जाता है। यह शब्द आजकल इतना लोकप्रिय है अतः इसकी परिभाषा जानना आवश्यक है। वैसे तो लोकतन्त्र की सैकड़ों परिभाषायें हैं, परन्तु इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं–

इन परिभाषाओं में अमेरिका के राष्ट्रपति **अब्राहिम लिंकन** की परिभाषा सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध है, उनके अनुसार– 'लोकतन्त्र जनता का जनता के लिये जनता द्वारा शासन है।'

प्रसिद्ध विद्वान **ब्राईस** के अनुसार– 'लोकतन्त्र शासन के उस रूप को कहते हैं जिसमें शासन–शक्ति वैधानिक रूप से किसी श्रेणी या वर्ग में निहित नहीं होती है वरन् समस्त समाज के सब व्यक्तियों में निहित होती है।'

प्रश्न–38. 'धर्म निरपेक्ष राज्य' से आप क्या समझते हो?

उत्तर– वह राज्य जिसमें प्रत्येक नागरिक को उसकी स्वयं की इच्छानुसार धर्म का पालन करने व प्रचार–प्रसार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। राज्य की दृष्टि में समस्त धर्म समान होते हैं। वह किसी के धार्मिक अनुष्ठान में व्यवधान पैदा नहीं कर सकता है। धार्मिक संविधानानुसार भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है।

प्रश्न–39. 'सामाजिक लोकतन्त्र' से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– 'सामाजिक लोकतन्त्र' से आशय है कि समाज के समस्त वर्गों, जातियों एवं धर्मों के लोगों को अपनी प्रगति के समान अवसर प्राप्त हों। समस्त जाति एवं धर्मों के लोग बगैर किसी भेदभाव के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकें। न्याय एवं दण्ड व्यवस्था में कोई भेदभाव न हो। स्वस्थ, शिक्षित एवं शोषण विहीन समाज की स्थापना की जाये। समाज में जाति–पाँति तथा ऊँच–नीच का भेदभाव न रहे। इस तरह की सामाजिक व्यवस्था को ही सामाजिक लोकतन्त्र कहा जाता है।

प्रश्न–40. भारत का गौरव क्या है? समझाइये।

अथवा

अनेक विभिन्नताओं के होते हुये भी हमारे देश में मौलिक एकता है, इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– हमारे देश में विभिन्न जाति एवं धर्म के लोग निवास करते हैं, जिनकी भाषा एवं संस्कृति भिन्न–भिन्न है, देश की भौगोलिक रचना में भी विभिन्नता है। कहीं ऊँचे–नीचे पठार हैं तो कही समतल भूमि, कहीं हरियाली तो कहीं मरूस्थल।

इन समस्त विभिन्नताओं के होते हुये भी हमारे देश में मौलिक एकता है। हम सभी भारतीय हैं। हमारा इतिहास, भौगोलिक विभिन्नतायें एवं संस्कृति हम सभी को भारतवासी होने का गौरव प्रदान करती हैं।

प्रश्न–41. राष्ट्रीय एकीकरण से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ लोगों में जाति, धर्म, तथा भाषा के विचार को त्याग कर एकता की भावना का होना है। राष्ट्रीय एकता को ही राष्ट्रीय एकीकरण कहते हैं। भारत में यद्यपि अनेक विविधतायें हैं पर उन सभी में अन्तरनिहित एकता पायी जाती है। यही भारत की विशेषता है कि यहाँ पर विविधता में एकता है।

प्रश्न–42. हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य क्या हैं? संक्षेप में समझाइये।

उत्तर– हमारे संविधान का मुख्य उद्देश्य भारत में लोक कल्याण राज्य की स्थापना करना है, जिससे सभी नागरिकों को अपने विकास के लिये समान मौका मिल सके। इसके लिये निम्नलिखित राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं–

(1) **धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना**– भारतीय संविधान द्वारा धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की गयी है, जो कि हमारा प्रमुख राष्ट्रीय लक्ष्य है। समस्त जाति एवं धर्म के लोगों को अपने धर्म का पालन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान हैं। धर्म के नाम पर कोई भेदभाव नहीं है।

(2) **लोकतन्त्र की स्थापना**– लोकतन्त्र हमारा प्रमुख राष्ट्रीय लक्ष्य है। इसके अन्तर्गत जनता को अपनी सरकार बनाने तथा शासन में भागीदारी लेने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। देश का शासन जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधि चलाते हैं। सभी को अपने विकास के लिये स्वतन्त्रता और समानता के अधिकार प्राप्त होने चाहिये।

(3) **समाजवाद**– भारत में समाजवाद की स्थापना करना भी हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है। इसमें समाज के समस्त वर्गों, धर्मों एवं जातियों को बगैर किसी भेदभाव के आर्थिक विकास

के समान अवसर दिये जाते हैं। समाजवाद की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक समानता की स्थापना है।

(4) **आर्थिक समानता**– देश का आर्थिक विकास करके समस्त नागरिकों के जीवन–स्तर में सुधार लाना हमारा प्रमुख राष्ट्रीय लक्ष्य है। अधिक से अधिक आर्थिक साधन जुटाकर आर्थिक विषमता दूर करने के लिये राज्यों को चाहिये कि वह नागरिकों को आत्मनिर्भर बनाये। हमारे देश में पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा आर्थिक लक्ष्य हांसिल किये जाते हैं। आर्थिक समानता की स्थापना के लिये हर एक नागरिक को रोजगार के समान अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं।

(5) **सामाजिक समानता**– सामाजिक समानता लाने के लिये देश के पिछड़े एवं कमजोर वर्ग के लोगों को विशेष सुविधायें प्रदान करना हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है। राज्य का कर्तव्य है कि वह श्रमिकों एवं दलित वर्ग के लोगों को किसी भी स्तर पर शोषण से छुटकारा दिलाने का प्रयास करे। अस्पृश्यता का हमारे देश में अन्त कर दिया गया है।

(6) **राष्ट्रीय एकीकरण**– हमारे देश में विभिन्न जाति, धर्म, भाषा एवं संस्कृति के लोग निवास करते हैं तथा अनेक भाषाओं का भी प्रचलन है, फिर भी विभिन्नता में एकता हमारी संस्कृति की प्रमुख विशेषता है और यही हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है। किसी देश का विकास तभी सम्भव है जब उसके निवासी संगठित होकर कार्य करें। एकता में ही शक्ति होती है। अतः विघटनकारी तत्वों का मुकाबला करने के लिये हमारे देश में राष्ट्रीय एकीकरण की महती आवश्यकता है।

इकाई-3

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न–1. नैतिक शिक्षा का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– नैतिक शिक्षा नैतिक आचरण एवं व्यवहार के लिये दी जाने वाली वह शिक्षा है जिसके फलस्वरूप युवाजन में नैतिकता का विकास होता है। मानव चरित्र के सर्वमान्य मानवीय गुणों को अपनाना ही नैतिकता है। इसके अन्तर्गत धर्म, सदाचरण, नैतिक कर्तव्य और मानवीय गुण आदि सभी आते हैं। नैतिकता जन्मजात नहीं होती है, वरन् इसे अर्जित किया जाता है। वास्तव में नैतिक आचरण एवं व्यवहार समाज द्वारा अर्जित या सीखा हुआ व्यवहार है।

प्रश्न–2. चरित्रवान युवाजन की विशेषतायें संक्षेप में बताइये।

अथवा

चरित्रवान युवाजन की तीन विशेषतायें बताइये।

उत्तर– चरित्रवान युवाजन सौम्य, विनम्र, मृदुभाषी, आज्ञाकारी होता है। वह सद्व्यवहार, कर्त्तव्यपालन, सत्य वचन की ओर ध्यान देता है। चरित्रवान युवाजन नियमित संयमी और निष्ठावान होता है। इसमें मानवीय गुण विद्यमान रहते हैं तथा नैतिक आचरण उसका लक्ष्य होता है। वह परपीड़न की अधभाई से बचता है तथा सदैव दूसरों की सहायता करने हेतु तत्पर रहता है।

प्रश्न–3. युवाजन के मूल्यपरक (नैतिक) विकास को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– नैतिकता अर्जित होती है। समाज में नैतिकता के मूल्य युवाजन को परम्परा से मिलते हैं। जब वह दूसरों के सम्पर्क में आता है तो उसे ज्ञात होता है कि दूसरे लोग उसके व्यवहार का मूल्यांकन किस तरह करते हैं? जैसे-जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, वह समाज के नीति-नियमों का पालन करता जाता है। चारित्रिक विकास की तरह नैतिकता का भी विकास क्रमशः होता है। जन्म के समय युवाजन न तो नैतिक होता है और न अनैतिक। उसका व्यवहार बहुत कुछ मूल्य प्रवृत्यात्मक होता है। उसमें किसी तरह के कर्त्तव्य, उचित, अनुचित का कोई ज्ञान नहीं होता। बाद में परिवार व समाज से सीखता और प्रतिमानों का अनुकरण कर नैतिक विकास करता है। इस प्रकार वह अपने व्यवहार को सही व मान्य दिशा देता है।

प्रश्न–4. सुझाव चरित्र निर्माण में किस प्रकार सहायक है?

उत्तर– मनोवैज्ञानिक का मानना है कि सुझाव युवाजनों के चरित्र-निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। शिक्षक युवाजनों का अच्छे कार्य करने, अच्छी आदतें विकसित करने तथा अच्छे विचारों को धारण कर उन पर अनुकरण करने का सुझाव देता है। वह कई उदाहरण भी युवाजनों के सामने रखता है। वह सत्कर्म के प्रति रुचि जाग्रत करता है। इस प्रकार उसके सुझाव युवाजनों के नैतिक और चारित्रिक विकास में योगदान करते हैं।

प्रश्न–5. 'पुस्तकें नहीं अपितु शिक्षक का आदर्श चरित्र और उसके द्वारा शाला में संचालित पाठ्यक्रम सहभागी क्रियायें ही नैतिक शिक्षा का सशक्त माध्यम है।' इस कथन के समर्थन में कोई दो तर्क दीजिये।

उत्तर– नैतिक शिक्षा मानव जीवन का आधार है। इसका पाठ्यक्रम में समावेश अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिये। किन्तु इसलिये पुस्तकों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। शिक्षक का आदर्श चरित्र और उसके द्वारा शाला में संचालित पाठ्यक्रम सहभागी क्रियायें ही नैतिक शिक्षा का सशक्त माध्यम होती है, क्योंकि शिक्षक का आदर्श चरित्र बच्चों पर अमिट छाप छोड़ता है और वह उनके द्वारा अनुकरणीय भी होता है। शाला में संचालित पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें भी युवाजनों में नैतिक आचरण की आदतों का विकास करते हैं। इससे व्यवहार परिवर्तन में भी सहायता मिलती है। त्याग, कर्त्तव्य परायणता, परस्पर सहयोग की भावना पाठ्यक्रम सहभागी क्रियाओं से भली-भाँति सम्भव होता है।

प्रश्न–6. नैतिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य बताइये।

उत्तर– 1. नैतिक शिक्षा व्यक्ति को संवेदनशील बनाती है तथा उसमें साहस, धैर्य, अनुशासन और मानवीय गुणों का विकास करती है।
2. यह चरित्र निर्माण करती है तथा व्यक्ति को चरित्रवान और सदाचारी बनाने में सहायक होती है
3. नैतिक शिक्षा कर्त्तव्य-निष्ठा, सच्चाई, ईमानदारी, सदाचार, दूसरों की मदद और सद्-व्यवहार की प्रेरणा देती है।
4. यह नैतिक जीवन मूल्यों को उत्कृष्ट रूप में प्रतिष्ठित करती है।
5. शारीरिक-मानसिक शक्तियों का सही विकास करती है।
6. ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण एवं तर्क-शक्ति का विकास करती है।

7. नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का विकास तथा चरित्र निर्माण में महती भूमिका का निर्वहन।

प्रश्न–7. 'राष्ट्रीय चरित्र' हेतु कौन-कौनसे गुण आवश्यक हैं और क्यों?

उत्तर– राष्ट्रीय चरित्र हेतु निम्नांकित गुणों की आवश्यकता है–
1. राष्ट्र प्रेम, सदाचार एवं मानव जाति के प्रति उदार भावना।
2. धर्म निरपेक्षता, धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय एवं सहयोग की भावना।
3. कर्त्तव्य परायणता, निष्ठा, आज्ञा-पालन एवं अनुशासन प्रियता।
4. लोकतांत्रिक एवं समाजवादी आदर्शों के प्रति निष्ठा।
5. अच्छे नागरिक के सभी गुणों की गुण सम्पन्नता।
6. जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, सम्प्रदाय के हितों के ऊपर राष्ट्रीय हितों का मानना।
7. साँझी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति सम्मान एवं अभिवृद्धि एवं संरक्षण का प्रयास।
8. राष्ट्रीय विकास में परस्पर सहयोग।
9. सामाजिक व मानवीय मूल्यों का परिपालन।
10. राष्ट्रीयता की भावना के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भावना का होना।

राष्ट्रीय चरित्र देश के सामाजिक व आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है बिना इसके देश में सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं होती। आज ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका व जापान आदि अपने राष्ट्रीय चरित्र के कारण प्रगति के पथ पर है। भारत में अभी इसका अभाव है।

प्रश्न–8. छात्रों में नैतिक शिक्षा से क्या उपलब्धियाँ सम्भव है? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– नैतिकता मानव चरित्र का अमूल्य-रत्न है। छात्रों में इसका विकास नैतिक शिक्षा से हो सकता है। निःसन्देह नैतिक शिक्षा छात्रों में उच्च चरित्र का विकास करती है तथा वे उच्च आदर्शों का पालन करना सीख जाते हैं। नैतिक शिक्षा छात्रों के व्यवहार एवं आचरण में सुधार कर उनके नैतिक-स्तर को ऊंचा उठाती है। वे मानवीय और सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं के अनुरूप अपना व्यवहार इस प्रकार बनाते हैं कि उनका चरित्र आदर्श बनता है तथा उनकी मनोवृत्तियों, आदतों और दृष्टिकोणों का व्यापक तथा उज्जवल स्वरूप निखरता है। इस प्रकार नैतिक उत्थान अनुशासन स्थापना में बहुत सहायक रहता है।

प्रश्न–9. योग, नैतिक विकास और आध्यात्मिक विकास का अन्तर्सम्बन्ध समझाइये।

उत्तर– योग, नैतिक विकास और आध्यात्मिक विकास का अन्तर्सम्बन्ध– योग इस एक शब्द में पिण्ड व ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण सत्यों का समावेश है। बस आवश्यकता है योग के समग्र सत्य को समझने और उसके अनुसार जीने की। किसी भी सत्य को यदि हम समग्र रूप से नहीं समझते तो हम सत्य से आंशिक या पूर्ण रूप से वंचित रह जाते हैं। योग के वैयक्तिक एवं वैश्विक सत्यों की ओर आज विश्व के प्रामाणिक व जिम्मेदार शिखर पुरुषों को गंभीरतापूर्वक विचार करना ही चाहिए। जब हम योग के वैयक्तिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व अध्यात्मिक लाभों व सत्यों का पूरी ईमानदारी के साथ मूल्यांकन करेंगे, तो हम स्वयं व समष्टि के योगी होने में गौरव, सौभाग्य व लाभ अनुभव करेंगे। योग मानवीय चेतना

का मूल स्वभाव 'स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते' तथा अन्तिम लक्ष्य–ध्येय–गन्तव्य और जीवन की पूर्णता है।

मनुष्य प्रकृति या परमेश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है और मनुष्य के पिण्ड व ब्रह्माण्ड में बीज रूप में जो सम्पूर्ण ज्ञान, संवेदना, सामर्थ्य, पुरुषार्थ, सुख, शान्ति व आनन्द सन्निहित है, उसका पूर्ण प्रकटीकरण व जागरण केवल योगविद्या एवं योगाभ्यास से ही संभव है। आज विश्व समुदाय के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं– हिंसा, अपराध, आतंकवाद, युद्ध, नशा, भ्रष्ट आचरण व भ्रष्टाचार, विचारधाराओं का चरम समाधन है– योग विद्या, अध्यात्म विद्या का समग्रबोध, योग का नियमित अभ्यास एवं योगमय दिव्य श्रेष्ठ आचरण है।

एकत्व सहअस्तित्व एवं विश्वबन्धुत्व/शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म एवं शुद्ध उपासना। ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग। तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान। व्रत, दीक्षा एवं श्रद्धा। प्रार्थना, पुरुषार्थ एवं परमार्थ– ये योग के मूलभूत सिद्धान्त हैं। इसके विपरीत अज्ञान, अश्रद्धा एवं अकर्मण्यता– ये योग के सबसे बड़े योगविद्या, अध्यात्मविद्या, तत्वज्ञान, अपराविद्या व पराविद्या के द्वारा जब हमारा मस्तिष्क, ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल से हृदय, श्रद्धा–भक्ति–प्रेम–करुणा व वात्सल्य से तथा पूरा अस्तित्व अखण्ड–प्रचण्ड पुरुषार्थ, साधना, सेवा व निष्काम दिव्य कर्म से प्रकाशित हो जाता है, तब हम सच्चे योगी, पूर्ण निरोगी, कर्मयोगी व पूरी मानवता या समष्टि के लिए पूर्ण उपयोगी बन जाते हैं।

पूरे जीवन को एक शब्द में कहें या परिभाषित करें तो वह है– अभ्यास। जैसे हमारे सोचने, विचारने, खाने–पीने, कमाने, बोलने व जीने के अभ्यास होते हैं, वैसा ही हमारा जीवन हो जाता है। एक योग के प्रतिदिन के अभ्यास से हमारे जीवन के सभी अभ्यास श्रेष्ठ, परिष्कृत व दिव्य हो जाते हैं। अतः नियमित योगाभ्यास ही एक स्वस्थ, समृद्ध, सफल, सुखी व आदर्श जीवन का आधार है। जीवन को दो शब्दों में कहें तो वे हैं– दृष्टि व आचरण। योगी की दृष्टि भी बहुत ऊँची, शुद्ध, सात्त्विक व श्रेष्ठ होती है तथा योगी का आचरण भी शुद्ध, सात्त्विक, पवित्र व श्रेष्ठ होता है। दृष्टि व आचरण की शुद्धता, श्रेष्ठता, पवित्रता व दिव्यता ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

योग का शरीर, मन व आत्मा पर प्रभाव– योग का अर्थ है अपनी चेतना (अस्तित्व) का बोध, अपने अन्दर निहित शक्तियों को विकसित करके परम चैतन्य आत्मा का साक्षात्कार एवं पूर्ण आनन्द की प्राप्ति। इस यौगिक प्रक्रिया में विविध प्रकार की क्रियाओं का विधान भारतीय ऋषि–मुनियों ने किया है। यहाँ हम मुख्य रूप से अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि) के अन्तर्गत वर्णित आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि की व्याख्या करेंगे और उसी के सहयोगी हठयोग के षट्कर्म आदि का भी वर्णन करेंगे। इन सब क्रियाओं से हमारी सुप्त चेतना–शक्ति का विकास होता है। योग से सुप्त (डेड) तन्तुओं का पुनर्जागरण होता है एवं नये तन्तुओं, कोशिकाओं (सेल्स) का निर्माण होता है। योग की सूक्ष्म क्रियाओं द्वारा हमारे सूक्ष्म स्नायुतंत्र को चुस्त किया जाता है, जिससे उनमें ठीक प्रकार से रक्त–संचार होता है और नई शक्ति का विकास होने लगता है। योग से रक्त–संचार पूर्णरूपेण सम्यक् रीति से होने लगता है। शरीरविज्ञान का यह सिद्धान्त है कि शरीर के संकोचन एवं प्रसारण होने से उनकी शक्ति का विकास होता है तथा रोगों की निवृत्ति होती

है। योगासनों से यह प्रक्रिया सहज ही हो जाती है। आसन एवं प्राणयामों के द्वारा शरीर की ग्रंथियों एवं मांसपेशियों में कर्षण–विकर्षण, आकुंचन–प्रसारण तथा शिथिलीकरण की क्रियाओं द्वारा उनका आरोग्य बढ़ता है। रक्त को वहन करने वाली धमनियाँ एवं शिराएँ भी स्वस्थ हो जाती हैं। अतः आसन एवं अन्य यौगिक क्रियाओं से पेन्क्रियाज़ एक्टिव होकर इन्सुलिन ठीक मात्रा में बनने लगता है, जिससे डायबिटीज आदि रोग दूर होते हैं। पाचनतंत्र की स्वस्थता पर पूरे शरीर की स्वस्थता निर्भर करती है। सभी बीमारियों का मूल कारण पाचनतंत्र की अस्वस्थता है। यहाँ तक कि हृदयरोग (हार्ट–डिसीज़) जैसी भयंकर बीमारी का कारण भी पाचनतंत्र का अस्वस्थ होना पाया गया है। योग से पाचनतंत्र पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ, हल्का एवं स्फूर्तियुक्त बन जाता है। योग से हृदयरोग जैसी भयंकर बीमारी से भी छुटकारा पाया जा सकता है। फेफड़ों में पूर्ण स्वस्थ वायु का प्रवेश होता है, जिससे फेफड़े स्वस्थ होते हैं तथा दमा, श्वास, एलर्जी आदि रोगों से छुटकारा मिलता है। जब फेफड़ों में स्वस्थ वायु जाती है, तब उससे हृदय को भी बल मिलता है। यौगिक क्रियाओं से भेद का पाचन होकर शरीर का भार कम होता है तथा शरीर स्वस्थ, सुडौल एवं सुन्दर बनता है। इतना ही नहीं, इस स्थूल शरीर के साथ–साथ योग सूक्ष्म शरीर एवं मन के लिये भी अनिवार्य है। योग से इन्द्रियों एवं मन का निग्रह होता है, यम–नियमादि अष्टांग योग के अभ्यास से साधक असत्, अविद्या के तमस् से हटकर अपने दिव्य स्वरूप ज्योतिर्मय, आनन्दमय, शान्तिमय, परम चैतन्य आत्मा एवं परमात्मा तक पहुँचने में समर्थ हो जाता है– **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**। इस प्रकार हम योगपथ का अवलम्बन लेकर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करते हुए अपने लक्ष्य ईश्वर–साक्षात्कार–पूर्णानन्द की अनुभूति अधिगत कर लेते हैं।

योगी के जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा–

(1) हम दिन प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठते ही ये विचार व चिंतन करें कि मैं मूलतः ईश्वर की संतान, ऋषि–ऋषिकाओं, वीर–वीरांगनाओं की संतान या भारत माता की संतान हूँ। मेरा ज्ञान, जीवन, वाणी, व्यवहार व आचरण भगवान्, ऋषियों व भारत माता की संतान के अनुरूप ही होगा। मैं कुछ भी ऐसा नहीं सोचूंगा व करूंगा जो ईश्वर की संतान या ऋषियों की संतान को शोभा नहीं देता। मैं भारत माता, ऋषियों व भगवान् का प्रतिनिधि, प्रतिरूप या उनका मूर्त रूप हूँ।

मैं ब्रह्मरूप हूँ। मैं स्वयं एक ऋषि–ऋषिका, वीर–वीरांगना हूँ। मैं भारत हूँ, मुझसे भारत है। मैं इसी माइंड सैट, उच्च चेतना, दिव्य या भागवत चेतना के अनुरूप ही अपने जीवन में समस्त आचरण–व्यवहार करूंगा। भीतर से पूर्ण शान्त, बाहर से पूर्ण क्रियाशील, भीतर की पूर्णता में जीते हुए बाहर से भगवान् का दिव्य समर्थ, आदर्श यंत्र बनकर हमें जीवन को जीना है।

(2) योग–यज्ञ, योग–कर्मयोग, पुरुषार्थ व परमार्थ ही जीवन का सार है। एक क्षण के लिए भी अशुभ का स्वागत नहीं करना। मैत्री, करुणा, मुदिता व अशुभ के प्रति उपेक्षा भाव से सदा प्रसन्नचित्त रहना है। न तो मुझे साधनहीन दुःखी दरिद्र बनना है, न ही साधनसम्पन्न दुःखी अप्रसन्न रहना है। मैं समष्टि के प्रति पूर्ण कृतज्ञ रहता हुआ स्वयं योगी बनूँगा तथा

सबको योगी, निरोगी, उपयोगी बनाने हेतु पूर्ण पुरुषार्थ व सेवा करूँगा। जब एक-एक व्यक्ति समर्थ, चरित्रवान् महान् व आध्यात्मिक बनेगा, तभी पूरा भारत समर्थ, चरित्रवान्, महान व आध्यात्मिक बनेगा।

हमें मजहबी राष्ट्र नहीं अपितु आध्यात्मिक भारत व आध्यात्मिक विश्व का निर्माण करना है। व्यष्टि एवं समष्टि की मुक्ति ही हमारा अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए।

प्रश्न–10. आध्यात्मिकता के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– आध्यात्मिकता का यथार्थ स्वरूप– आध्यात्मिकता के नाम पर अनेकों भ्रमपूर्ण भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं, जैसे– आध्यात्मिक व्यक्ति सदा ध्यान में बैठा रहता है, सदा जप करता रहता है, कुछ काम नहीं करता, सात्त्विक समृद्धि या ऐश्वर्य वृद्धि हेतु कुछ काम नहीं करता, इत्यादि प्रचलित भ्रान्तियों के निवारण हेतु कुछ सूत्रों का वर्णन निम्नवत् है– आध्यात्मिकता का पहला सूत्र है– सात्त्विक सफलता एवं सात्त्विक संकल्प।

(1) सात्त्विक सफलता– सात्त्विक सफलता का मूल है– योग एवं कर्मयोग। सामान्य चेतना के लोग सत्ता, सम्पत्ति, सम्मान, भौतिक सुख, सफलता एवं भौतिक समृद्धि आदि के लिए प्रयत्न करते दिखते हैं और आंशिक रूप से सफल होते हुए भी दिखते हैं। यह भौतिकवादी चिंतन है। सात्त्विक आत्मायें भगवान् की प्रेरणा से, भगवान् की प्रसन्नता के लिए भगवान् को ही सब ज्ञान, शक्ति एवं ऐश्वर्य का मूल स्रोत स्वीकार कर निष्काम भाव से निमित्त मात्र बनकर कर्मयोग करते हैं और परिणामतः सत्ता, सम्पत्ति, सम्मान, समृद्धि एवं सफलता आदि उपरोक्त सभी वस्तुएँ उनको भी प्रचुर मात्रा में भगवान् की विविध विभूति या दिव्य ऐश्वर्य व सात्त्विक सामर्थ्य के रूप में उपलब्ध होती हैं। पतंजलि योगपीठ का सात्त्विक सामर्थ्य एवं सफलता इसका मूर्त उदाहरण है। योगियों का यह समस्त सामर्थ्य एवं ऐश्वर्य मानवता की सेवा के लिए प्रयुक्त होती है। यही सच्चा अध्यात्मवाद है।

(2) सात्त्विक संकल्प– सामान्य चेतना के व्यक्ति भगवान के विधान को न समझते हुए अपनी योजना बनाकर काम करते हैं और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए कर्म करते हुए दिखते हैं। मानवीय अल्पविवेक और दोषपूर्ण संकल्प होने के कारण यह मानवीय पुरुषार्थ कभी सुखदायी और कभी दुःखदायी भी हो जाता है। इसके विपरीत उच्च चेतना से युक्त संन्यासी, योगी, जो भगवान् के संकल्प से युक्त होकर भगवान् की दिव्य योजना के तहत भगवान के दिव्य संकल्पों को भी मूर्त रूप देता है और इस समष्टि को सर्वविध सात्त्विक सुख एवं समृद्धि उपलब्ध करवाता है, वह धरती पर शाश्वत सत्ता का मूर्त रूप होकर विचरण करता है।

(3) दैवी एवं आसुरी सम्पदा– गीता के 16वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण दैवी-सम्पदा के रूप में 26 गुणों का वर्णन करते हैं– निर्भयता, मन की निर्मलता, ज्ञान हेतु ध्यानयोग में दृढ़ स्थिति, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, अहंकार व स्वार्थ का त्याग, शान्ति, उदारभाव, दया, लालच न रखना, कोमलता, अचापल्य, तेजस्विता, क्षमा, धृति, शुद्धता, द्रोह न करना और घमण्ड न करना– यह दैवी-सम्पदा है। इसी प्रकार इन गुणों से विपरीत आचरण व भाव ही आसुरी सम्पदा के अन्तर्गत आ जाता है। इस आसुरी सम्पदा का फल बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।

(4) भगवान का दर्शन एवं पूजा– संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपनी समझ के अनुसार किसी न किसी रूप में भगवान का दर्शन व पूजन करना चाहता है। वेद एवं गीता में भगवान का यही स्वरूप बताया है कि हम भगवान को विश्वमय एवं विश्वातीत रूप जानें। **ईशा वास्यमिदं सर्वम्। सर्वं खलु इदं ब्रह्मः। वासुदेवः सर्वम्। यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।** इत्यादि। यहाँ भगवान के दर्शन का आशय है– हम सब सम्बन्धों एवं सब प्राणियों में भगवान के इस स्वरूप को देखने का बार-बार अभ्यास करें तथा इस जगत से अतीत रूप में भी उसी की सत्ता का अनुभव करें, यही भगवान का दर्शन है तथा अपनी अन्तरात्मा में जो भगवान प्रेरणा देता है उसी के अनुरूप कर्म और आचरण करना, यही भगवान की पूजा है।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च।

(5) संगठन का ध्येय– संसार में सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से जितने भी संगठन काम कर रहे हैं, उसके द्वारा यद्यपि संसार में बहुत कुछ शुभ भी घटित हो रहा है, लेकिन इन संगठनों में कहीं-कहीं आंशिक रूप से और कहीं व्यापक रूप से एक बहुत बड़ा दोष भी दिखाई देता है, वह है कि हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं। हमारा विचार, विचारधारा एवं हमारे सिद्धान्त से ही इस दुनिया का कल्याण हो सकता है। इस कारण से पूरी दुनियाँ में भयंकर संघर्ष, खून-खराबा एवं युद्ध जैसी स्थिति भी बन जाती है। वेद एवं ऋषियों का सिद्धान्त 'मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ' यह नहीं है अपितु उनका सिद्धान्त है कि सभी सर्वश्रेष्ठ हैं एवं सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं और यह सारा साम्राज्य भगवान् का ही है। राजनैतिक एवं साम्प्रदायिक रूप से देश व दुनिया में जितनी भी सीमा बनाई गयी हैं, विरोध खड़े कर दिये गये हैं, यह संसार के स्वार्थी व लालची लोगों का एक अविवेकपूर्ण कार्य ही है।

हम अपने संगठन को इन दोषों से मुक्त एवं दिव्य संगठन के रूप में देखना चाहते हैं। हमारा मुख्य रूप से एक ही लक्ष्य है कि मनुष्य मात्र सभी क्षेत्रों में यथार्थ ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से मुक्त हो मिथ्याज्ञान एवं तज्जन्य दोषपूर्ण प्रवृत्तियों एवं दोषपूर्ण आचरणों से मुक्त होकर दिव्य जीवन जिएँ। अन्ततः आचरण की दिव्यता व पवित्रता ही किसी भी व्यक्ति का, किसी भी संगठन का, किसी भी समाज का या राष्ट्र का सबसे बड़ा ध्येय होना चाहिए।

मुक्ति का व्यावहारिक स्वरूप, दर्शन व सिद्धान्त– मुक्ति शब्द 'मुच्लृ विमोचने' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– विशेष रूप से बंधन से मुक्त होना। मुख्य रूप से तीन प्रकार के बंधनों से व्यक्ति बंधा हुआ है। वे हैं– अज्ञान, अश्रद्धा एवं अकर्मण्यता। ईश्वर के सर्वव्यापक होते हुए भी उससे जो दूरी अनुभव होती है। वह किसी स्थान की दूरी नहीं है, अपितु अज्ञान, अश्रद्धा व अकर्मण्यता के कारण ही दूरी की अनुभूति होती है। मुक्ति के लिए महर्षि दयानन्द ने शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म व शुद्ध उपासना को साधन बताया है। गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग व भक्तियोग के नाम से इसी बात का वर्णन किया गया है।

ज्ञान योग– ज्ञान-विज्ञान, अनुसंधान, तत्वज्ञान, एवं विविध कौशल से युक्त होना ज्ञानयोग है। कुशलता आदि से युक्त होना ही ज्ञानयोग है। ज्ञान का अन्तिम परिणाम, लक्ष्य या गन्तव्य है कि हमें यह समझ में आ जाये कि सब कुछ का मूल आधार भगवान है। जब यह

ज्ञान हमारे भीतर पूर्णतः प्रतिष्ठित हो जाता है। सब ज्ञान, शक्ति, सामर्थ्य, समृद्धि, सुख, शान्ति व आनन्द का मूल आधार भगवान् ही है। यद्यपि परमात्मा, आत्मा व प्रकृति ये तीन अनादि व अनन्त सत्तायें हैं, परन्तु इन तीन के भी मूल में एक सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सृष्टि का कर्ता, नियन्ता व संहर्ता तत्व ओंकार पद का वाच्यार्थ ब्रह्म है। जब ऐसा ज्ञान हो जाता है तो हम सारे संशय, भ्रम, समस्त अज्ञान व अज्ञान जनित दोषों, दुःखों व अशुभ से पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं, यही ज्ञान योग है।

कर्म योग– जब हमें यह बोध हो गया कि समस्त ज्ञानशक्ति एवं ऐश्वर्य का मूल आधार भगवान है तो हम निमित्त मात्र होकर, भगवान के यंत्र बनकर वेदानुकूल, शास्त्रानुकूल, ऋषियों के अनुकूल व आत्मानुकूल आचरण करने लगते हैं, इसी को प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य, न्यायपूर्ण व विवेकपूर्ण व्यवहार भी कहते हैं। कर्म, पुरुषार्थ, निष्काम सेवा, दिव्य प्रवृत्ति आदि में उत्साह, पराक्रम, शौर्य व स्वाभिमान आदि से युक्त होकर स्वधर्म का दिव्यतापूर्वक निर्वहन करना या दिव्य कर्म करना, यही कर्म योग है।

भक्ति योग– जब हृदय श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, करुणा, वात्सल्य व कृतज्ञता आदि समस्त दिव्य भावों से युक्त होता है तथा अकाम, अचाह, निष्काम व पूर्णकाम होकर अनासक्त भाव से हम जो भी सेवा, कर्म, तप, पुरुषार्थ या दिव्य प्रवृत्ति करते हैं, यह सब भक्ति योग ही है। यह भक्ति भाव के स्तर पर भी तथा आचरण या व्यवहार के स्तर पर भी भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण है। नवधाभक्ति, ईश्वर–प्रणिधान या मुमुक्षत्व शब्दभेद से एक ही तात्पर्य की अभिव्यक्ति है कि भगवान के प्रति पूर्णश्रद्धा, पूर्णविश्वास एवं पूर्णप्रेम की पराकाष्ठा या ब्रह्म के साथ पूर्ण एकत्व ही भक्ति योग है।

मुक्ति के उपाय– दिव्य जीवन जीने के तीन सोपान, साधन या उपाय हैं। एक आसन व व्यायाम से शरीर की शुद्धि तथा प्राणायाम व ध्यान से अन्तःक्रण या चित्त की शुद्धि एवं अष्टांग योग के अन्तर्गत यम–नियमों से आचरण की शुद्धि। जब एक मनुष्य की ये तीन शुद्धियाँ हो जाती हैं तो वह मनुष्य देवाता, ऋषि, महामानव या महापुरुष बन जाता है। उसका जीवन दिव्य जीवन बन जाता है अर्थात् शारीरिक दुःख, मानसिक दुःख, तनाव, उदासी, परेशानी आदि तथा जीवन में आचरण स्वभाव आदि के दोष–स्वरूप दूसरों से मिलने वाले समस्त दुःखों का नितान्त अभाव हो जाता है। सभी प्रकार के अज्ञान, अभाव, दुःख शोक आदि से मुक्त जीवन ही वास्तव में जीवन्मुक्ति है, यही मुक्ति का मूल सिद्धान्त है। जो व्यक्ति इस जीवन को फूलों की तरह खिलता हुआ, हँसता हुआ, सुगंधित (अपने सुकर्मों की गंध से) मरने के बाद भी मुक्त ही होता है, किन्तु जो यहाँ दुःख से मुक्त नहीं हो पाया, वह मृत्यु के बाद मोक्ष को प्राप्त कर पायेगा, यह संभव नहीं है।

प्रश्न–11. नैतिक मूल्यों की परिभाषा देते हुये उनके महत्त्व पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– नैतिक मूल्य की परिभाषा– 'मूल्य का संबंध आन्तरिक रूचियों से होता है, जिनका अनुमोदन समाज द्वारा किया जाता है और उनकी वस्तुनिष्ठ रूप में परख की जाती है।'

नैतिक मूल्यों का महत्त्व एवं आवश्यकता– मूल्यों की आवश्यकता व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र तीनों को है। व्यक्ति का व्यक्तिगत, राजनीतिक तथा राष्ट्रीय जीवन मूल्यों पर आधारित

होता है। मूल्य उन्हें नियंत्रित तथा निर्देशित करते हैं। मूल्यों की व्यवस्था और निर्वहन परिवार से प्रारंभ होता है, जो समाज में स्थापित मानक मूल्यों पर आधारित होता है। परिवार समाज द्वारा निर्गमित एवं निर्धारित मूल्यों का पालन करते हैं। समाज ही धर्म एवं संस्कृति का निर्धारण करता है। हमें निम्नलिखित बिन्दुओं से मूल्यों के महत्त्व एवं आवश्यकता स्पष्ट हो जायेगी–

(1) मूल्यों का संबंध जीवन के विभिन्न पक्षों से होता है। सामाजिक सन्दर्भ में मूल्यों की अहम् भूमिका होती है।

(2) पर्यावरण में सन्तुलन एवं संरक्षण मूल्यों द्वारा किया जाता है। समाज तथा पर्यावरण में सहयोग भी मूल्यों द्वारा स्थापित किया जाता है।

(3) प्रजातांत्रिक मूल्यों में शक्ति, समानता, स्वतंत्रता तथा न्याय से राजनीतिक व्यवस्था निर्धारित की जाती है। शिक्षा की प्रक्रिया में इन्हें स्थान दिया जाता है।

(4) सामाजिक व्यवस्था एवं स्वरूप में सहयोग, सहानुभूति, न्याय, प्रेम, स्नेह को विशेष महत्त्व दिया जाता है जिससे व्यवस्था में सन्तुलन रखा जा सके।

(5) शिक्षा के लक्ष्यों के प्रतिपादन का आधार सामाजिक मूल्य होते हैं। शिक्षा–प्रणाली का स्वरूप मूल्य ही निर्धारित करते हैं।

(6) जीवन मूल्यों की आवश्यकता व्यक्तिगत–स्तर पर अधिक होती है क्योंकि मूल्य व्यक्ति के जीवन को व्यवस्थित करते हैं। मूल्यपरक आचरण से उसे सन्तोष मिलता है, जिससे व्यक्ति जीवन के उच्च आदर्शों एवं भूमिकाओं की ओर आकर्षित होता है। कहा जाता है कि बिना मूल्यों के व्यक्ति का जीवन पशु के समान होता है।

(7) नैतिक मूल्यों के पालन से संस्कृति का विकास होता है और उसकी पहचान बनती है। मूल्यों के आधार पर ही आदर्श संबंध स्थापित होते हैं। आदर्श व्यक्ति का विकास मूल्यों का पालन करने से होता है।

(8) राष्ट्र के विकास में राजनैतिक मूल्यों का विशेष महत्त्व होता है, जिनका प्रावधान देश के संविधान में किया जाता है।

(9) अब विश्व–स्तर पर नैतिक मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। भारत ने सदा से सम्पूर्ण विश्व को एक संयुक्त परिवार माना है जिसकी अभिव्यक्ति 'वसुवैध कुटुम्बकम्' के मूल मंत्र में हुई है। राष्ट्रों की भौगोलिक सीमायें शनैः–शनैः अर्थहीन होती जा रही हैं। आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में वैश्विक–स्तर पर भी मूल्यों की परिभाषा तैयार करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। सभी राष्ट्रों और धर्मों के लोगों के लिये समभाव, सद्भाव, आदर, स्नेह और भाईचारे के साथ शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की परिकल्पना को आत्मसात् करना वैश्विक स्तर पर स्थापित नैतिक मूल्यों का आधार है।

प्रश्न–12. नैतिक मूल्यों की विशेषतायें बताइये।

उत्तर– नैतिक मूल्यों की विशेषतायें– विभिन्न प्रकार के मूल्य, जीवन, मूल्य अथवा नैतिक मूल्यों की निम्नलिखित विशेषतायें हैं–

(1) मूल्यों की प्रकृति, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, मानवीय तथा पारिस्थितिकीय होती है।

(2) मूल्य जैविक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक होते हैं।

(3) भारतीय दर्शन में पाँच मूल्य–सत्य, धर्म शांति, प्रेम तथा अहिंसा का उल्लेख किया गया है। इन्हें मानव मूल्यों का 'पंचप्राण' माना जाता है।

(4) मूल्य के तीन तत्व–क्रिया, भाव तथा ज्ञान होते हैं।

(5) मूल्य सामाजिक आचरण के मानक तथा व्यावसायिक जीवन के मानदण्ड होते हैं।

(6) मूल्य सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार के होते हैं।

(7) मूल्य आकांक्षाओं, इच्छाओं, अभिप्रेरणाओं तथा आवश्यकताओं के रूप में मनुष्य के भीतर निहित रहता है।

(8) मूल्य शिक्षा के लक्ष्य होते हैं।

(9) मूल्यों के अन्तर्गत अनुबंधन, अभिगम तथा समाजीकरण की आन्तरिक प्रक्रिया होती है।

(10) मूल्यों में भावात्मक निर्णय तथा सामान्यीकृत भावनायें होती हैं।

(11) मूल्या का संबंध आन्तरिक इच्छाओं से होता है।

(12) अनन्तिम मूल्य 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' होते हैं, यही जीवन के अंतिम लक्ष्य भी होते हैं।

(13) मूल्यों के निर्धारक धर्म, संस्कृति तथा समाज होते हैं।

(14) मूल्यों का विकास सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक क्रियाओं तथा शैक्षिक प्रक्रिया से किया जाता है।

(15) मूल्यों का औपचारिक शिक्षण नहीं दिया जा सकता अपितु इन्हें जीवन में आत्मसात करने का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

(16) विद्यार्थी मूल्यों को सीखता नहीं है अपितु आत्मसात तथा अनुकरण करता है।

(17) मूल्यों से सामाजिक तथा धार्मिक स्वभाव को पोषित किया जाता है।

(18) मूल्य सामाजिक जीवन के शुद्ध आचरण होते हैं। शुद्ध आचरण में नैतिक एवं सामाजिक शुद्धता निहित होती है।

प्रश्न–13. नैतिक मूल्यों का वर्गीकरण कीजिये।

अथवा

नैतिक मूल्यों के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिये।

अथवा

मानव–जीवन में नैतिक मूल्यों के विकास–कार्य में परिवार, समाज, शैक्षिणिक संस्थाओं और सामाजिक परिवेश की भूमिका पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– शिक्षाविद् डॉ. शशि राय ने अपने लेख 'नैतिक–मूल्य–परिचय और वर्गीकरण' नैतिक–मूल्यों के अन्तर्गत 'नैतिक–मूल्य' को वर्गीकृत किया है, किन्तु पृथक् से उसके

प्रकारों का वर्णन नहीं किया है, लेकिन नैतिक–मूल्यों के रोपण के स्तरों पर प्रकाश डाला गया है। इन स्तरों के आधार पर हम नैतिक–मूल्यों को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं–

(1) परिवार द्वारा बच्चे में विकसित किये जाने वाले नैतिक–मूल्य– 'परिवार' बच्चे की प्रथम पाठशाला होती है और बच्चे की माँ उसकी प्रथम गुरू होती है। प्रारंभ में मूल्यों की पहचान बच्चे को माता–पिता और परिवार के अन्य सदस्यों से होती है। परिवार में रहता हुआ बच्चा सच बोलना, बड़ों का आदर करना, ईश्वर में विश्वास रखना, पारिवारिक संसाधनों का मिल बाँटकर उपयोग करना और उपभोग करना, दूसरों की सहायता करना, गलत काम करने से बचना, देश के प्रति श्रद्धा रखना आदि नैतिक–मूल्यों से परिचित होता है और परिवार के सदस्यों के सद्आचरण से बच्चों में भी इन नैतिक–मूल्यों का विकास होता है।

(2) शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा विकसित किये जाने वाले नैतिक–मूल्य– परिवार की अनौपचारिक शिक्षा के बाद विद्यार्थी औपचारिक और संरचनात्मक शिक्षा प्राप्त करता है। मनुष्य के समाजीकरण की दूसरी कड़ी के रूप में शैक्षणिक संस्थाओं का विशेष महत्व है। यहाँ विद्यार्थी के जीवन को प्रमुख रूप से प्रधानाध्यापक शिक्षक, उसके सहपाठी विद्यार्थी और शैक्षणिक संस्थाओं का वातावरण प्रभावित करता है। विद्यार्थी को नैतिक–मूल्य प्रदान करने में इनकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि शिक्षक की कही हुयी प्रत्येक बात विद्यार्थी के लिये गाह्य और अन्तिम होती है।

फलतः विद्यार्थी के सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार आचरण और जीवन–शली यदि मूल्यपरक है, तो विद्यार्थी भी उन मूल्यों को अपने साथ आत्मसात् करता जाता है। इस प्रकार एक अच्छा शिक्षक हमारा जीवन बना देता है और एक खराब सहपाठी जीवन की दिशा बदल देता है।

इस प्रकार शैक्षणिक–संस्थाओं द्वारा अपने विद्यार्थियों में अनुशासन, शान्ति एवं सहअस्तित्व की भावना आदर्श नागरिक के गुणों का विकास, राष्ट्र–प्रेम, धर्म–निरपेक्षता, नेतृत्व एवं उद्यमिता आदि नैतिक मूल्यों का विकास किया जाता है।

(3) समाज और सामाजिक परिवेश द्वारा विकसित किये जाने वाले नैतिक–मूल्य– मानव के जीवन में नैतिक–मूल्यों का रोपण करने के कार्य में समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। व्यक्ति अपने समाज और सामाजिक–परिवेश से बहुत कुछ सीखता है। आज देश की युवा–पीढ़ी को समाज तथा राष्ट्र के प्रति जबावदेह होना चाहिये। इसके लिये उनमें समाज व राष्ट्र की समस्याओं को देखने, समझने और उनसे समाज व राष्ट्र को मुक्त कराने का भाव विकसित किया जाना चाहिये। इसके लिये युवाओं को अपना स्वयं का चारित्रिक निर्माण करना होगा और सामान्य नैतिक–मूल्यों का पालन करना होगा। इसके बाद आत्म–शक्ति द्वारा समाज व राष्ट्र में परिवर्तन लाने का प्रयास करना होगा।

इस प्रकार समाज और सामाजिक परिवेश द्वारा युवा पीढ़ी में परिवार, समाज एवं राष्ट्र की समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता एवं जबावदेही की भावना, पर्यावरण को बचाने की वचनबद्धता, धार्मिक सहिष्णुता, राष्ट्र–हित सम्पादन का भाव, शान्ति एवं सह–अस्तित्व की

भावना, सभी जातियों एवं धर्मों के समभाव आदि 'नैतिक–मूल्य' शाश्वत हैं जिनका विकास समाज और सामाजिक परिवेश द्वारा युवा पीढ़ी में किया जाना चाहिये।

उक्त नैतिक–मूल्यों की रक्षा करना, उनके संवर्धन के लिये प्रयास करना और उनकी कमी को पूरा करने के लिये तथा उन्हें पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिये प्रत्येक परिवार; समाज और राष्ट्र को अपने–अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करना चाहिये। इस कर्त्तव्य के निर्वहन में शिक्षण संस्थाओं की मुख्य भूमिका रहती है क्योंकि वे ही देश को संस्कारित, सभ्य, संवेदनशील और सशक्त नागरिक प्रदान करती हैं। अतः उन्हें सर्वसुविधा–सम्पन्न एवं सशक्त बनाया जाना चाहिये।

प्रश्न–14. आध्यात्मिक–चेतना एवं मूल्यों का मानव–जीवन में महत्त्व बताइये।

अथवा

मानव–जीवन में आध्यात्मिक–चेतना एवं मूल्यों की आवश्यकता क्यों है? व्याख्या कीजिये।

उत्तर– संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य विधाता की उत्कृष्टतम रचना है क्योंकि वह अपने जैविकीय शारीरिक–विकास के साथ–साथ अपना आध्यात्मिक–विकास भी कर सकता है। इसके लिये उसमें आध्यात्मिक–चेतना का विकास होना नितान्त आवश्यक है।

आध्यात्मिक–चेतना न तो बौद्धिक–क्रिया है, न नैतिक–क्रिया है, न सौन्दर्य–बोधात्मक है और न ही इन सब क्रियाओं का योग है। यह तो आध्यात्मिक–जीवन का एक ऐसा स्वतन्त्र रूप है, जो इन सब तत्वों का समावेश करते हुये भी इन सबसे ऊपर है, क्योंकि धर्म का उद्देश्य ईश्वर है, जिसमें सत्य, अच्छाई और सौन्दर्यादि मूल्य तो निहित हैं ही, साथ ही वह इनमें ऊपर भी है ईश्वर को सच्चिदानन्द रूप कहा गया है। धर्म का उद्देश्य इस सच्चिदानन्दमय ईश्वर को प्राप्त करना मात्र नहीं है, अपितु इस नाम–रूपात्मक सृष्टि में ईश्वरीय सत्ता के दर्शन करना है, जिसे हम अन्तर्ज्ञान से प्राप्त कर सकते हैं। इन मूल्यों को हम इन्द्रियों और तर्क–बुद्धि से नहीं जान सकते हैं, बल्कि धर्मशास्त्रकारों के शब्दों में हम उन्हें अन्तर्ज्ञान और विश्वास से जानते हैं। इस अन्तर्ज्ञान के फलस्वरूप सत्य, सौन्दर्य और अच्छाई सर्वोच्च यथार्थ सत्ता नहीं रहते, बल्कि ईश्वर के अस्तित्व और तत्व के अंग बन जाते हैं।

इस प्रकार ये मूल्य एक ईश्वरीय चेतना में अवस्थित होने के कारण गतिहीन आदर्श न होकर गतिशील शक्तियाँ बन जाते हैं और धार्मिक–चेतना ईश्वरीय–प्रेम की भावना बन जाती है। फलतः धार्मिक व्यक्ति सत्य, शिव और सुन्दर तीनों की पृष्ठभूमि में ईश्वर को अपने अन्दर और बाहर भी देखता है। वह एक नयी दुनिया में रहता है, जो उसके जीवन को प्रकाश से, उसके हृदय को आनन्द से और उसकी आत्मा को प्रेम से भर देती है, जिससे उसकी धार्मिक चेतना पूर्ण रूप में और एक साथ उद्बुद्ध होती है और आत्मा पूर्णत्व को प्राप्त हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मानव–जीवन को सफल व सार्थक बनाने के लिये मनुष्य में आध्यात्मिक–चेतना एवं मूल्यों की नितान्त आवश्यकता होती है, क्योंकि आध्यात्मिक व्यक्ति समस्त या अधिकतर उच्च और गहन शक्तियों, काल्पनिक दृष्टि, बौद्धिक–शक्ति, भावनात्मक उत्साह और क्रियात्मक ऊर्जा का समिश्रण करता है। उसका

जीवन अखण्ड और पूर्ण होता है, वह किसी भी प्रकार के भ्रम, भूल या विकृति से मुक्त होता है, सर्वथा अनासक्त, निष्काम और अवैयक्तिक होता है।

प्रश्न–15. मानव में आध्यात्मिक–चेतना का विकास किस प्रकार से किया जा सकता है? विवेचना कीजिये।

उत्तर– आज के वैज्ञानिक–युग में आध्यात्मिक चेतना का विशेष महत्त्व है। आज का युग कट्टर सिद्धान्तवाद को स्वीकार नहीं करता है और स्वीकार करना भी उचित नहीं है, क्योंकि कट्टर सिद्धान्तवाद एक बौद्धिक–धर्म का खतरा है। आज इसका ह्रास दिखाई दे रहा है। इस कारण ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कहीं धर्म लुप्त न हो जाये? ऐसी प्रतीति हमें इसलिये हो रही है क्योंकि हमने धर्म–सम्बन्धी आकारों और औपचारिकताओं को अन्तिम और अपरिवर्तनीय मान लिया है। इसलिये हमारा संशयालु और आशंकित होना स्वाभाविक है। यह हमारे सौभाग्य की बात है कि धर्मों के महान् ऋषि और प्रवर्तकों ने किन्हीं निश्चित और अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों या कर्मकाण्डों का विधान नहीं किया है। वे तो आत्मा को अपनी एकाकी तीर्थ–यात्रा के पथ पर आमंत्रित करते हैं और उसे पूर्ण स्वाधीनता प्रदान कर देते हैं, क्योंकि उनका यह विश्वास है कि ईश्वर को अपनी प्रतिभा के अनुसार स्वतंत्र और निर्बाध रूपसे अपनी आत्मा में पाना ही आध्यात्मिक–जीवन के लिये अनिवार्य शर्त है।

आज इस आध्यात्मिक–जीवन की प्राप्ति के लिये मनुष्य में आध्यात्मिक–चेतना का विकास किया जाना चाहिये। यदि हमारे मंदिर, मस्जिद और गिरजाघर यह समझ लें कि हमारा मुख्य कार्य पवित्र–ज्ञान देने के स्थान पर साधकों–भक्तों की आत्मा को उद्बुद्ध और सजग करना है तो वे ईश्वर के एक ऐसे साधना–स्थल बन जायेंगे, जिनमें व्यापकता और औदार्य का साहस होगा और जो आध्यात्मिक वातावरण में सभी धर्मों के विचारों और रूचियों के लोगों का स्वागत कर सकेंगे। वे एक ऐसे अदृश्य धार्मिक सम्प्रदाय की भूमिका तैयार करेंगे, जो समस्त सद्भावनाशील मानवों को एक सूत्र में बाँध देगा। यदि हमारा ऐसा विश्वास हो कि मनुष्य को उसके मन की कोमलता के लिये किसी सहारे की आवश्यकता है तो हम उसे प्रतीक और उदाहरण प्रदान कर सकते हैं, किन्तु उसके बाद शेष सब कुछ हमें मनुष्य के अन्तर में विद्यमान ईश्वर पर ही छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार मानव में स्वयमेव आध्यात्मिक–चेतना का विकास होने लगेगा और वह भगवद्–प्रेम के द्वारा ईश्वर के साथ ऐक्य स्थापित कर सकेगा।

प्रश्न–16. निम्नलिखित का संक्षेप में वर्णन कीजिये–

(1) कर्म योग (2) भक्ति योग (3) राज योग (4) ज्ञान योग

अथवा

कर्म योग के चार प्रमुख नियम कौन–कौन से हैं?

उत्तर– (1) कर्मयोग– भगवद् गीता में कर्म योग के चार मुख्य नियम वर्णित हैं ताकि आप सभी तनावों से एकदम मुक्त होकर अपने कर्म (कार्य) का हर क्षण आनन्द ले सकें।

(क) कर्म कर्तव्य समझकर करें।

(ख) कार्य को बिना आसक्ति से करें।

(ग) परिणाम की चिंताओं को कभी आने मत दो जो आपके कार्य के दौरान आपके मन को विचलित करती हैं।

(घ) असफलता और सफलता को समबुद्धि से स्वीकार करें।

कर्म योग की इन तकनीकों के उपयोग से हम अपने कार्य में पूर्ण सजगता के साथ विश्रांति में कार्य करने की कला सीखते हैं। अपने भीतर के आनन्द को खोने मत दीजिए, कर्म का पथ हमें यह सिखाता है कि समाज के साथ किस प्रकार निष्पक्षता और प्रभावी रूप से अन्योन्य क्रिया की जाए। इस उद्देश्य को कायम रखते हुए और मन को स्थिर रखते हुए, एक न्यायाधीश की भाँति दोनों पक्षों के सशक्त तर्कों को सुनते समय मन की स्थिरता ही काम करती है और यही कर्म योग की करामात है। यदि हम अपने तनाव और दबाव से नियमित रूप से छुटकारा पाते रहें तो पूरे कर्म संबंधी चरण में हमारी अन्तर्दृष्टि का विस्तार होता है। कर्म योग की तकनीकों के उपयोग से तनाव और दबावों का जो संचय मन पर होता है उनको कम करने में सहायता मिलती है और हम तनावमुक्त जीवन जीने की संभावना को साकार कर सकते हैं।

(2) **भक्ति योग–** भक्ति से तात्पर्य है कि ईश्वर के प्रति समर्पण और प्रेमपूर्ण आसक्ति। यह शब्द भज् (सम्मिलित होने) धातु से निर्मित है और सहभागिता की ओर संकेत करता है। भक्ति मार्ग पर चलने वाला योगी दिव्य ईश्वर के प्रति स्वयं को समर्पित करता है, भक्ति भाव से सेवा करता है और उनकी पूजा अर्चना में तल्लीन रहकर अन्ततः उस दिव्य ईश्वर में आध्यात्मिक रूप से मिल जाता है।

भारत की दार्शनिक और धार्मिक परंपराओं में भक्ति की अवधारणा काफी व्यापक रूप से जुड़ी है। नारद भक्ति सूत्र भक्ति की प्रकृति से संबंधित एक मुख्य ग्रंथ है जिसमें भक्ति और प्रेम के संबंध पर जोर दिया गया है और मौलिक शैली में प्रकृति के रहस्य को बताया गया है।

भक्ति से हृदय निर्मल हो जाता है तथा ईर्ष्या, घृणा, वासना, क्रोध, अहंकार, घमंड और उग्रता जैसे विकार समाप्त हो जाते हैं। इससे आनन्द, दिव्यता, प्रसन्नता, शान्ति और ज्ञान की प्राप्ति होती है। सभी तरह की चिन्ताएँ, फिक्र, भय, मानसिक विकृतियाँ और कुठाएं पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती हैं। भक्त जीवन और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है। उसे असीम शांति, आनन्द और ज्ञान की प्राप्ति होती है।

भक्ति का मार्ग पूरे विश्व में व्याप्त है और यह सभी मनुष्यों के लिए होता है। यह हर काल में एक ही जैसा रहता है और इसका संबंध प्रत्यक्ष रूप से आत्मा से होता है और साथ ही महान् आत्मा से भी जुड़ जाता है, यह किसी जाति, धर्म, वर्ग और राष्ट्रीयता से ऊपर है। भक्ति आपके हृदय का पावन प्रेम होता है जिसमें भक्त दिव्य ईश्वर से मिलने के लिए उत्सुक होता है और इस जीवन में आपकी दिव्य बन जाती है।

(3) **राज योग–** मन के स्तर पर हम दृढ़ इच्छा शक्ति पर जोर देते हैं और इसमें स्वतंत्रता का पुट भी होता है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं होता है। आज के समय में यदि हम कई प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त हैं जैसे बीमारी, तनाव और दबाव आदि ये हमारे द्वारा निर्मित है अर्थात् हमारी कभी से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए हमें स्वयं को बदलना होगा

और यदि हम आनन्दमय स्थिति, रचनात्मकता और स्वतंत्रता में जीना चाहते हैं तो इन दुःखों पर विजय प्राप्त करनी होगी।

जब हम स्वतंत्रता को पहचान लेते हैं (जो हमारे अन्दर मौजूद हैं) और हम चेतना के उच्च स्तरों तक स्वयं को विकसित करने का संकल्प लेते हैं तो यह यात्रा शुरू हो जाती है। जैसे कि हम आगे की ओर तकनीकों की आवश्यकता है जो हमारे दृढ़ संकल्प को व्यवस्थित करें और राज योग से हम इन समस्याओं का समाधान अपनी इच्छाशक्ति या दृढ़ संकल्प से कर सकते हैं।

(4) **ज्ञान योग–** ज्ञान योग बुद्धि और विश्लेषण का मार्ग है। यह विवेक से संबंधित है और इसकी अपनी एक क्रियाविधि होती है। इस क्रियाविधि का केन्द्र श्रवण, स्मरण और विश्लेषण (मनन) और ध्यान करने की विधि (निदिध्यासन) के इर्दगिर्द घूमता है। आज वैज्ञानिक युग में मनुष्य काफी तर्कशील हो गया है। आज बौद्धिक शक्ति का बोलबाला है। विश्लेषण इस विधि का उपकरण है। दर्शन (ज्ञान योग) का मार्ग प्रखर बुद्धिजीवियों के लिए उपयुक्त है और 'प्रसन्नता' के विश्लेषण के इर्दगिर्द केन्द्रित है, प्रमुख रूप से यह योगदान उपनिषदों का है।

चिन्तन–मनन उन शक्तियों पर निर्भर करता है जिन्हें तार्किक रूप से स्वीकार किया गया है, यह साधना अथवा गहन ध्यान है। यह ज्ञान योग का गहन चिन्तन–मनन भी है। जब हम ध्यान की गहराई में जाते हैं तो उच्च से उच्चतर आयामों तक पहुँच जाते हैं। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुझमें वह आनन्दमय बोध आ गया है अथवा असीम चेतनता आ गई है। यह ज्ञान या आत्मानुभूति है।

प्रश्न–17. पंचकोष और शुद्धि चक्रों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अथवा

सहस्रार चक्र क्या है? संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

उत्तर–

षट्चक्र भेदन

(ॐ के नाद के साथ)

कृति– सर्वप्रथम पद्मासन या सुखासन में बिना किसी तनाव के बैठें। कंधे व गर्दन की मांसपेशियों को ढीला रखें व मेरुदण्ड को सीधा रखें। हमारे शरीर में मुख्य रूप से निम्न 6 चक्र हैं–

(1) मूलाधार चक्र
(2) स्वाधिष्ठान चक्र
(3) मणिपुर चक्र (नाभि के पास)
(4) अनाहत चक्र (हृदय के पास)
(5) विशुद्धि चक्र (कंठ में)
(6) आज्ञा चक्र (भौंहों के बीच)

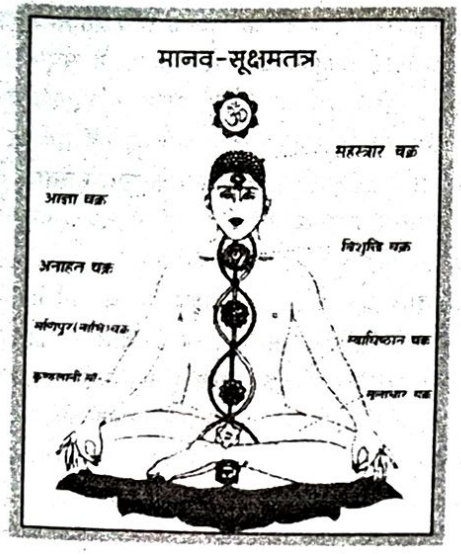

सहस्रार चक्र

(मस्तिष्क के बीच चोटी के पास)

कृति– श्वांस को भरें व ॐ के नाद के साथ मूलाधार चक्र पर नाद को केन्द्रित करें। इस चक्र पर कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था/निद्रावस्था में रहती है। धीरे–धीरे जाग्रत होकर ऊपर की ओर जाने को तैयार है। इस भाव को रखते हुए पुनः श्वांस को भरें व ॐ के नाद के साथ मूलाधर चक्र के बाद स्वाधिष्ठान चक्र पर आएँ। शक्ति मेरुदण्ड में सुषुम्ना नामक नाड़ी जाग्रत हो रही है ऐसा भाव रखें। पुनः श्वांस भरें। ॐ के नाद के साथ मूलाधार, स्वाधिष्ठान से होते हुए मणिपुर चक्र में शक्ति मेरुदण्ड में सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत हो रही है इस भाव को रखते हुए पुनः श्वांस भरें। ॐ के नाद के साथ मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर से होकर मेरुदण्ड में शक्ति सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत होकर अनाहत चक्र पर आ रही है इस प्रकार का भाव

रखते हुए पुनः श्वांस को भरें व ॐ के नाद के साथ शक्ति मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत् चक्र से होती हुई विशुद्धि चक्र पर मेरुदण्ड में सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत हो रही है इस भाव को रखते हुए पुनः श्वांस भरें व ॐ के नाद के साथ शक्ति मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा–चक्र से होती हुई सहस्रार पर जाकर शिव व शक्ति तथा आत्मा व परमात्मा से एक हो रही है, इस भाव के साथ मस्तिष्क के ठीक बीच में स्थिर होकर शांति की अनुभूति करें।

प्रश्न–18. योग के दो संप्रदाय को समझाइये।

अथवा

राज योग और हठ योग को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– योग के दो संप्रदाय, राज योग और हठ योग– पतंजलि योग अष्टांग योग भी कहलाता है– अर्थात् आठ अंगों से मुक्त योग। इसका संबंध मानसिक अनुशासन तथा इसकी शक्तियों से है। जबकि हठ योग शारीरिक नियंत्रण और श्वसन के विनियमन स्तर पर जोर देता है। हठ योग का परमोत्कर्ष राज योग होता है। हठ योग में निरन्तर साधना (आत्म प्रयास, आध्यात्मिक अभ्यास) से राज योग में पहुँचना संभव होता है। हठ योग एक ऐसी सीढ़ी है जिससे होकर राज योग तक पहुँचा जा सकता है।

शरीर का शुद्धीकरण और श्वासों का नियंत्रण हठ योग का प्रत्यक्ष उद्देश्य है। शरीर के शुद्धीकरण के लिए षट्कर्म प्रस्तुत किए गए हैं जो इस प्रकार हैं: धौति (आमाशय की सफाई), बस्ति (एनिमा का प्राकृतिक स्वरूप), नेति (नासिकाओं की स्वच्छता), त्राटक, नौलि (नाभि की सुदृढ़ता) और कपालभाति (एक विशेष प्राणायाम से अवरोधों को दूर करना), (प्राणायाम – श्वसन क्रिया का नियमन और नियंत्रण)। आसानों, प्राणायाम, बच्चों और मुद्राओं से शरीर स्वस्थ, हल्का, मजबूत और सीधा हो जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य और सांसारिक शक्ति की प्राप्ति हो जाती है किन्तु छात्रों को यह राजयोग से संबंधित अभ्यासों के लिए तैयार करने की एक पद्धति है।

प्रश्न–19. ध्यान जीवन के लिए क्यों उपयोगी है? संक्षेप में लिखिये।

अथवा

'ध्यान महान शुद्धि कारक है जो हमारे जन्म जन्मांतरों के पापों को धो डालता है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– ध्यान– वर्तमान समय में प्रबुद्ध समाज का आकर्षण ध्यान की ओर सतत् बढ़ता जा रहा है। ध्यान क्या है? यदि इस पर विचार करें तो इसका सीधा अर्थ है– प्रवृत्ति की ओर जाना। एक ही स्थान पर ध्यान को एकाग्र करना। ध्यान में सबसे बड़ी बाधा है– मन की चंचलता। मन को काम चाहिए, अतः मन की चंचलता को कम करने के लिए उसे किसी एक स्थान पर एकाग्र करने का प्रयास करना। महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में छठवीं स्थिति है– धारणा, उसके बाद ध्यान व अंत में समाधि। अतः मन को आती–जाती श्वांस के साथ जोड़ना। सांस लेते हैं तो 'सो' व छोड़ते हैं, तो 'हम' की ध्वनि होती है। कुछ विद्वान कहते हैं 'स' अर्थात् परमात्मा व 'हम' अर्थात् मैं। इस प्रकार हम ईश्वरीय भाव में चले जाते हैं। संत ज्ञानेश्वर कहते हैं अहम् ब्रह्मास्मि अर्थात् मैं और ब्रह्म एक ही हैं। जीव और शिव, आत्मा और

परमात्मा एक हैं। चेतना के स्तर तक पहुँचने के लिए सोहम् मंत्र हो या अन्य कोई मंत्र जो हमें अपने गुरू से प्राप्त हुआ हो। जैसे– 'ओम नमः शिवाय' या 'श्री राम जय राम जय जय राम' उसका अवलम्बन करें। इस मंत्र को हमें अपने श्वांस के साथ जोड़ देना है। श्वांस लेते समय ओम नमः शिवायः और छोड़ते समय भी ओम नमः शिवायः।

ध्यान करते समय मन में बहुत विचार आते हैं अतः उससे परेशान न हों। केवल जो विचार आये उसे देखते रहें, विचार में न उलझें अन्यथा ध्यान नहीं हो सकता। जैसे–जैसे अभ्यास बढ़ता जायेगा अपने आप विचार कम होते जायेंगे और हम ध्यान की गहरी अवस्था में पहुँचेंगे। धीरे–धीरे मंत्र के शब्द भी विलीन होते जायेंगे और हम अपनी चेतना के साथ एकाकार हो जायेंगे।

'संत लोग कहते हैं ध्यान ऐसा महान शुद्धिकारक है जो हमारे जन्म–जन्मांतरों के पापों को धो डालता है। ध्यान उन समस्त अशुद्धियों को दूर कर देता है, जो मन को सतत् परेशान करते हैं।'

योगासन के द्वारा शरीर एकाग्र होता है। जाप करने से वाणी एकाग्र होती है और मन ध्यान द्वारा एकाग्र होता है। यदि शरीर, वाणी और मन तीनों सध जाएँ, तीनों एकाग्र हो जाएँ तो व्यक्ति समाधि की स्थिति में पहुँच सकता है।''

ध्यान नियमित रूप से करना जरूरी है। रामकृष्ण परमहंस कहते थे मलिन मन को स्वच्छ करने के लिए प्रतिदिन ध्यान करें। ताँबे के लोटे को बदरूपता से बचाने के लिए रोज उसे मांजना पड़ता है वैसे ही अपने मन का परिमार्जन करें।

ध्यान करने के लिए स्थान, समय, ऊनी आसन व दिशा (दक्षिण को छोड़कर) का ध्यान रखें। ऐसा करने से ऊर्जा हमारे आसन में समा जाती है और कालांतर में हमें शीघ्रता से ध्यान लगने लगता है और हमें पता लगने लगता है कि मैं कैसा हूँ, कहाँ से आया हूँ? ये मेरा शरीर है। ये कहने वाला कौन है? और वह कोई और नहीं हमारी अपनी आत्मा है। आत्मा या परमात्मा के साथ एकाकार होना ही हमारे ध्यान का मुख्य लक्ष्य है। ईश्वर हमारी सहायता करे।

टिप्पणी– ध्यान हम तीन स्थानों पर लगा सकते हैं– नासिका पर, हृदय पर या भ्रकुटि पर। भ्रकुटि पर ध्यान करने से एकाग्रता बढ़ती है व मस्तिष्क शांत होता है।

प्रश्न–20. योग और अध्यात्म पर आधारित शिक्षा–प्रणाली के जनक भारतीय योगी महर्षि वशिष्ठ का परिचय एवं उनके योगदान का वर्णन कीजिये।

अथवा

महर्षि वशिष्ठ का योग के क्षेत्र में योगदान लिखिए। महर्षि वशिष्ठ की कोई चार रचनाओं के नाम एवं उनका संक्षिप्त विवरण लिखिए।

उत्तर– महर्षि वशिष्ठ– महर्षि वशिष्ठ अपनी योग साधना के लिए प्रसिद्ध थे। योग का उनका व्यवहारिक ज्ञान तत्कालीन समय में सबसे अधिक था। जनता में उनकी अथाह लोकप्रियता थी।

वशिष्ठ जी ने योग की अपनी तकनीक में गायत्री मंत्र एवं सूर्य उपासना को भी शामिल किया था। जिससे बहुत कम समय में बहुत अच्छे परिणाम लिए जा सकें। उनके द्वारा

विकसित ये गायत्री विज्ञान को अनेक लोगों के द्वारा कामधेनु भी कहा जाता था। कामधेनु का अर्थ है– सभी इच्छाओं को पूरा करने वाली गाय।

भगवान राम के गुरू जो वशिष्ठ थे वे अलग हटकर थे। उन्होंने योग और अध्यात्म पर आधारित शिक्षा–प्रणाली बनाई। ताकि शासक वर्ग जनता के दर्द से जुड़ सकें। राजाओं, राजकुमारों के मन में सांसारिक सुख सुविधाओं तथा धन–सत्ता का लोभ न रहे और वे हमेशा सत्य के मार्ग पर चलें।

वशिष्ठ के दो सबसे प्रिय शिष्य राम और भरत थे। राम शस्त्रों और शास्त्रों में सबसे बढ़कर निकले। छोटी उम्र से ही उन्होंने बहुत बड़े युद्धों को जीतना शुरू कर दिया। वशिष्ठ ने उन्हें भावी शासक के तौर पर तैयार करना शुरू किया। वशिष्ठ ने अपने सबसे प्रिय शिष्य राम को कहा– जनता के बीच जाओ। थोड़े दिन उनके बीच रहो। उनका दुखदर्द समझो। उनका उपाय खोजो। राम पूरे देश में घूमे। जन–जन के बीच गए। उनका हर दुख–दर्द जाना। लौटकर आये तो सोच–विचार में मग्न रहने लगे।

राम का झुकाव वैराग्य की ओर हो रहा था। वशिष्ठ जी चिंतित हुए। क्योंकि वह राम को संन्यासी नहीं शासक बनाना चाहते थे। गुरू वशिष्ठ और राम में सोच–विचार शुरू हुआ। गुरू और शिष्यों के बीच का ये तर्क, योग वशिष्ठ नामक ग्रंथ का आधार बना। इसमें करीब 29 हजार श्लोक हैं। स्वामी रामतीर्थ ने इसे संसार का सबसे अद्भुत ग्रंथ कहा है।

इसके पहले अध्याय में राम संसार के दुखों का वर्णन करते हैं और बताते हैं कि वो संन्यासी क्यों बनना चाहते हैं? वशिष्ठ उनके सब तर्कों को सुनते हैं। इसके बाद आगे के 5 अध्याय हैं। इसमें वे कहानियों, तथ्यों और अपने तर्कों के द्वारा ये समझाते हैं कि राज्य करना, लोगों की रक्षा करना और लोगों की समृद्धि के लिए काम करना ही उनका धर्म है और उनको इसका पालन करना ही होगा।

वशिष्ठ ने कहा– चिड़िया के उड़ने के लिए दो पंख जरूरी हैं। उसी तरह मानव के लिए धर्म और कर्म दोनों जरूरी हैं। अगर कोई केवल एक ही के पीछे ही लगे, तो उसकी हालत एक पंख वाली चिड़िया की तरह हो जाएगी।

चाणक्य ने चंद्रगुप्त को बनाया, समर्थ रामदास ने शिवाजी को। वशिष्ठ जी ने राम को। वे उन राम की श्रद्धा के पात्र बन गए जिनकी पूजा आज करोड़ों लोग करते हैं। राम का साथ देने के लिए उन्होंने भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जैसे शिष्यों को भी बनाया। उनका चरित्र, उनकी बातें पढ़कर आज भी असंख्य लोग शक्ति और साहस प्राप्त करते हैं।

महर्षि वशिष्ठ की एक सलाह बड़ी अनूठी है– आप चाहे जो कार्य करें, उनमें योग को शामिल जरूर करें। जब भी व्यस्तता से अवकाश मिले– प्राणायाम, ध्यान और चिन्तन करिये। ऐसा करने से आपकी आत्मशक्ति आपकी सहायक बन जाएगी। आपकी प्रोफेसनल लाइफ का कोई भी बुरा प्रभाव आपके मन और आत्मा पर नहीं हो पायेगा। आप शांति और उल्लास से सराबोर रहेंगे। आप अपनी पूरी शक्ति के साथ कार्य कर पाएँगे। यही कारण है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अक्सर अपने कर्मचारियों के लिए अनेक प्रकार के मोटिवेशनल प्रोग्राम चलाती रहती हैं।

प्रश्न–21. गुरू गोरखनाथ पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अथवा

गुरु गोरखनाथ का योग के क्षेत्र में योगदान लिखिए।

उत्तर– गुरू गोरखनाथ– गोरखनाथ या गोरक्षनाथ जी महाराज प्रथम शताब्दी के पूर्व नाथ योगी थे (इसका प्रमाण है राजा विक्रमादित्य के द्वारा बनाया गया पंचांग जिन्होंने विक्रम संवत की शुरूआत प्रथम शताब्दी से की थी जब कि गुरू गोरक्षनाथ जी राजा भर्तृहरि एवं इनके छोटे भाई राजा विक्रमादित्य के समय में थे) गुरू गोरखनाथ जी ने पूरे भारत का भ्रमण किया और अनेक ग्रंथों की रचना की। गोरखनाथ के नाम पर इस जिले का नाम गोरखपुर (उ.प्र. में स्थित) पड़ा है।

गुरू गोरखनाथ जी के नाम सें ही गोरखाओं ने नाम पाया। नेपाल में एक जिला है गोरखा, उस जिले का नाम गोरखा भी इन्हीं के नाम से पड़ा। माना जाता हैं कि गुरू गोरखनाथ सबसे पहले यहीं दिखे थे। गोरखा जिले मे एक गुफा है जहाँ गोरखनाथ का पग चिन्ह है और उनकी एक मूर्ति भी है। यहाँ प्रत्येक वर्ष वैशाख पूर्णिमा को एक उत्सव मनाया जाता है जिसे 'रोट महोत्सव' कहते हैं और यहाँ मेला भी लगता है।

रचनाएँ– डॉ. बड़थ्वाल की खोज में निम्नलिखित 40 पुस्तकों का पता चला था, जिन्हें गोरखनाथ–रचित बताया जाता है। डॉ. बड़थ्वाल ने बहुत खोजबीन के बाद इनमें प्रथम 14 ग्रंथों को असंदिग्ध रूप से प्राचीन माना, क्योंकि इनका उल्लेख प्रायः सभी प्रतियों में मिला। तेरहवीं पुस्तक 'ग्यान चौंतीसा' समय पर न मिल सकने के कारण उनके द्वारा संपादित संग्रह में नहीं आ सकी, परन्तु बाकी तेरह को गोरखनाथ की रचनाएँ समझकर उस संग्रह में उन्होंने प्रकाशित कर दिया है। वे निम्नलिखित हैं–

(1) सबदी, (2) पद, (3) शिष्यादर्शन, (4) प्राण–सांकली, (5) नरवै बोध, (6) आत्मबोध, (7) अभय मात्रा जोग, (8) पंद्रह तिथि, (9) सप्तवार, (10) मंछिद्र गोरख बोध, (11) रोमावली, (12) ग्यान तिलक, (13) ग्यान चौंतीसा, (14) पंचमात्रा, (15) गोरखगणेश गोष्ठी, (16) गोरखदत्त गोष्ठी (ग्यान दीपबोध), (17) महादेव गोरखगुष्टि, (18) शिष्ट पुराण, (19) दया बोध, (20) जाति भौंरावती (छंद गोरख), (21) नवग्रह, (22) नवरात्र, (23) अष्टपारछया, (24) रह रास, (25) ग्यान माला, (26) आत्मबोध(2), (27) व्रत, (28) निरंजन पुराण, (29) गोरख वचन, (30) इंद्री देवता, (31) मूलगर्भावली, (32) खाणीवाणी, (33) गोरखसत, (34) अष्टमुद्रा, (35) चौबीस सिद्ध, (36) षडक्षरी, (37) पंच अग्नि, (38) अष्ट चक्र, (39) अवलि सिलूक, (40) काफिर बोध।

गुरू गोरखनाथ का समय– मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ के समय के बारे में भारत में विद्वानों ने अनेक प्रकार की बातें कही हैं। वस्तुतः इनके और इनके समसामयिक सिद्ध जालंधरनाथ और कृष्णपाद के सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं।

गोरखनाथ और मत्स्येंद्रनाथ–विषयक समस्त कहानियों के अनुशीलन से कई बातें स्पष्ट रूप से जानी जा सकती हैं। प्रथम यह कि मत्स्येन्द्रनाथ और जालंधरनाथ सामसामयिक थे, दूसरी यह कि मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ के गुरू थे और जालंधरनाथ कानुपा या कृष्णपाद के गुरू थे, तीसरी यह की मत्स्येंद्रनाथ कभी योग–मार्ग के प्रवर्तक थे, फिर संयोगवश ऐसे एक

आचार में सम्मिलित हो गए थे जिसमें स्त्रियों के साथ अबाध संसर्ग मुख्य बात थी– संभवतः यह वामाचारी साधना थी, चौथी यह कि शुरू से ही जालंधरनाथ और कानिपा की साधना–पद्धति मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ की साधना–पद्धति से भिन्न थी।

सबसे प्रथम तो मत्स्येंद्रनाथ द्वारा लिखित 'कौल ज्ञान निर्णय' ग्रंथ (कलकत्ता संस्कृत सीरीज में डॉ. प्रबोधचंद्र वागची द्वारा 1934 ई. में संपादित) का लिपिकाल निश्चय रूप से सिद्ध कर देता है कि मत्स्येंद्रनाथ ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्ववर्ती हैं।

प्रश्न–22. वेदान्त के महान आचार्य स्वामी शिवानन्द सरस्वती की साधना का वर्णन कीजिए।

उत्तर– स्वामी शिवानन्द सरस्वती– स्वामी शिवानन्द सरस्वती (1887–1963) वेदान्त के महान आचार्य और सनातन धर्म के विख्यात नेता थे। उनका जन्म तमिलनाडु में हुआ पर संन्यास के पश्चात् उन्होंने जीवन ऋषिकेश में व्यतीत किया।

स्वामी शिवानन्द का जन्म अप्पायार दीक्षित वंश में 8 सितम्बर, 1887 को हुआ था। उन्होंने बचपन में ही वेदान्त का अध्ययन और अभ्यास किया। इसके बाद उन्होंने चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन किया। तत्पश्चात् उन्होंने मलेशिया में डॉक्टर के रूप में लोगों की सेवा की। सन् 1924 में चिकित्सा सेवा का त्याग करने के पश्चात् आप ऋषिकेश में बस गये और वहाँ कठिन आध्यात्मिक साधना की।

सन् 1932 में उन्होंने शिवानन्दाश्रम और 1936 में दिव्य जीवन संघ की स्थापना की। अध्यात्म, दर्शन और योग पर आपने लगभग 300 पुस्तकों की रचना की। 14 जुलाई, 1963 को आपने महासमाधि ले ली।

स्वामी शिवानन्द जी के ख्यातिलब्ध शिष्य–

(1) स्वामी चिन्मयानन्द – चिन्मय मिशन के संस्थापक।
(2) स्वामी सहजानन्द सरस्वती – दक्षिण अफ्रीका की लाइफ डिवाइन सोसाइटी के अध्यक्ष।
(3) स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – बिहार योग विद्यालय के संस्थापक।
(4) ओंकारानन्द सरस्वती – ओंकारानन्द आश्रम के संस्थापक।

प्रश्न–23. अद्वैत वेदान्त के महान दार्शनिक एवं धर्मप्रवर्तक आदि शंकराचार्य के जीवन–चरित्र पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– आदि शंकराचार्य– ये भारत के एक महान दार्शनिक एवं धर्मप्रवर्तक थे। आपने अद्वैत वेदान्त को ठोस आधार प्रदान किया। साथ ही सनातन धर्म की विशिष्ट विचारधाराओं का एकीकरण किया। उपनिषदों और वेदांतसूत्रों पर लिखी हुई इनकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना की थी जो अभी तक अत्यन्त प्रसिद्ध और पवित्र माने जाते हैं और जिन पर आसीन संन्यासी शंकराचार्य कहे जाते हैं। ये चारों स्थान हैं– (1) ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम, (2) श्रृंगेरी पीठ, (3) द्वारिका शारदा पीठ और (4) पूरी गोवर्धन पीठ। इन्होंने अनेक विधर्मियों को भी अपने धर्म में दीक्षित किया था। ये शंकर के अवतार माने जाते हैं। इन्होंने ब्रह्मसूत्रों की बड़ी ही विशद और रोचक व्याख्या की है।

आपके विचारोपदेश आत्मा और परमात्मा की एकरूपता पर आधारित हैं जिसके अनुसार परमात्मा एक ही समय में सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों में रहता है। स्मार्त संप्रदाय में आदि शंकराचार्य को शिव का अवतार माना जाता है। इन्होंने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, वृहदारण्यक और छान्दोग्योपनिषद् पर भाष्य लिखा। वेदों में लिखे ज्ञान को एकमात्र ईश्वर को संबोधित समझा और उसका प्रचार तथा वार्ता पूरे भारतवर्ष में की। उस समय वेदों की समझ के बारे में मतभेद होने पर उत्पन्न चार्वाक, जैन और बौद्ध मतों को शास्त्रार्थों द्वारा खण्डित किया और भारत की प्रत्येक दिशाओं में ज्योति, गोवर्धन, श्रृंगेरी तथा द्वारिका आदि चार मठों की स्थापना की।

काल– भारतीय संस्कृति के विकास एवं संरक्षण में आदि शंकराचार्य का विशेष योगदान रहा है। आचार्य शंकर का जन्म पश्चिम सुधन्वा चौहान, जो कि शंकर के समकालीन थे, उनके ताम्रपत्र अभिलेख में शंकर का जन्म युधिष्ठिराब्द 2631 शक् (507 ई.पू.) तथा शिवलोक नमन युधिष्ठिराब्द 2663 शक् (475 ई.पू.) सर्वमान्य है। इसके प्रमाण सभी शंकर मठों में मिलते हैं।

जीवन–चरित्र– शंकर आचार्य का जन्म 508 ई. पू. केल में कालपी अथवा 'काषल' नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम शिवगुरू भट्ट और माता का नाम सुभद्रा था। बहुत दिन तक सपत्नीक शिव की आराधना करने के अनंतर शिवगुरू ने पुत्र–रत्न पाया था, अतः उसका नाम शंकर रखा। जब ये तीन ही वर्ष के थे तब इनके पिता का देहांत हो गया। ये बड़े ही मेधावी तथा प्रतिभाशाली थे। छह वर्ष की अवस्था से ही ये प्रकांड पंडित हो गए थे और आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। इनके संन्यास ग्रहण करने के समय की कथा बड़ी विचित्र है। कहते हैं, माता एकमात्र पुत्र को संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं देती थी। तब एक दिन नदी किनारे एक मगरमच्छ ने शंकराचार्य जी का पैर पकड़ लिया तब इस वक्त का फायदा उठाते शंकराचार्य जी ने अपनी माँ से कहा "माँ मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दो नहीं तो ये मगरमच्छ मुझे खा जायेगा", इससे भयभीत होकर माता ने तुरंत इन्हें संन्यासी होने की आज्ञा प्रदान की, और आश्चर्य की बात है की, जैसे ही माता ने आज्ञा दी वैसे ही तुरन्त मगरमच्छ ने शंकराचार्यजी का पैर छोड़ दिया। आपने गोविन्दनाथ से संन्यास ग्रहण किया।

पहले ये कुछ दिनों तक काशी में रहे, और तब इन्होंने विजिलबिन्दु के तालवन में मण्डन मिश्र को सपत्नीक शास्त्रार्य से परास्त किया। इन्होंने समस्त भारतवर्ष में भ्रमण करके बौद्ध धर्म को मिथ्या प्रमाणित किया तथा वैदिक धर्म को पुनर्जीवित किया। कुछ बौद्ध इन्हें अपना शत्रु भी समझते हैं, क्योंकि इन्होंने बौद्धों को कई बार शास्त्रार्थ में पराजित करके वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की।

आप 32 वर्ष की अल्प आयु में ही (सन् 475 ईसा पूर्व में) केदारनाथ के समीप स्वर्गवासी हो गये थे।

प्रश्न–24. योग के जनक महर्षि पतंजलि का वर्णन कीजिये।

अथवा

योग के क्षेत्र में महर्षि पतंजलि के योगदान का वर्णन कीजिये।

उत्तर– महर्षि पतंजलि– ये गोनार्थ (संभवतः गोंडा जिला) के निवासी थे, बाद में वे काशी में बस गए। इनकी माता का नाम गोणिका था। पतंजलि योगसूत्र के रचनाकार हैं जो हिन्दुओं के छः दर्शनों (न्यास, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त) में से एक हैं। भारतीय साहित्य में पतंजलि के लिखे हुए 3 मुख्य ग्रंथ मिलते हैं– योगसूत्र, अष्टाध्यायी पर भाष्य और आयुर्वेद पर ग्रंथ। कुछ विद्वानों का मत है कि ये तीन ग्रंथ एक ही व्यक्ति ने लिखे। अन्य की धारणा है कि ये विभिन्न व्यक्तियों की कृतियाँ हैं। पतंजलि ने पाणिनि के अष्टाध्यायी पर अपनी टीका लिखी जिसे महाभाष्य का नाम दिया (महा+भाष्य (समीक्षा, टिप्पणी, विवेचना, आलोचना))। इनका काल कोई 200 ई.पू. माना जाता है।

जीवन–परिचय– पतंजलि शुंग वंश के शासनकाल में थे। ये व्याकरणाचार्य पाणिनी के शिष्य थे। पाणिनी के पश्चात् पतंजलि सर्वश्रेष्ठ स्थान के अधिकारी पुरूष हैं। उन्होंने पाणिनी व्याकरण के महाभाष्य की रचना कर उसे स्थिरता प्रदान की। वे अलौकिक प्रतिभा के धनी थे। व्याकरण के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों पर भी इनका समान रूप से अधिकार था। व्याकरणशास्त्र में उनकी बात को अंतिम प्रमाण समझा जाता है। उन्होंने अपने समय के जनजीवन का पर्याप्त निरीक्षण किया था। अतः महाभाष्य व्याकरण का ग्रंथ होने के साथ–साथ तत्कालीन समाज का विश्वकोश भी है। यह तो सभी जानते हैं कि पतंजलि शेषनाग के अवतार थे।

योगदान– पतंजलि महान चिकित्सक थे और इन्हें ही 'चरक संहिता' का प्रणेता माना जाता है। 'योगसूत्र' पतंजलि का महान योगदान है। पतंजलि रसायन विद्या के विशिष्ट आचार्य थे– अभ्रक विंदास, अनेक धातुयोग और लौहशास्त्र इनकी देन है। राजा भोज ने इन्हें तन के साथ मन का भी चिकित्सक कहा है।

पतंजलि की एकमात्र रचना महाभाष्य है जो उनकी कीर्ति को अमर बनाने के लिए पर्याप्त है। दर्शन शास्त्र में शंकराचार्य को जो स्थान 'शारीरिक भाष्य' के कारण प्राप्त है, वही स्थान पतंजलि को महाभाष्य के कारण व्याकरण शास्त्र में प्राप्त है। पतंजलि ने इस ग्रंथ की रचना कर पाणिनी के व्याकरण की प्रामाणिकता पर अंतिम मुहर लगा दी है।

प्रश्न–25. योग पर वैज्ञानिक अनुसंधान के अग्रदूत स्वामी कुवलयानन्द पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– स्वामी कुवलयानन्द– स्वामी कुवलयानन्द (30 अगस्त, 1883–18 अप्रैल, 1966) योग पर वैज्ञानिक अनुसंधान के अग्रदूत थे। उन्होंने 1920 के दशक में योग पर वैज्ञानिक अनुसंधान प्रारंभ किया और योग के अध्ययन के लिए 1924 में 'योग मीमांसा' नामक प्रथम वैज्ञानिक जर्नल प्रकाशित किया। सन् 1924 में ही इन्होंने कैवल्यधाम स्वास्थ्य एवं योग अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की जहाँ योग पर उनका अधिकांश अनुसंधान सम्पन्न हुआ। आधुनिक योग पर इनका अत्यधिक प्रभाव है।

प्रश्न–26. विक्रमसंवत् के प्रवर्तक के अग्रज भर्तृहरि का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

उत्तर– भर्तृहरि– भर्तृहरि एक महान संस्कृत के कवि थे। संस्कृत साहित्य के इतिहास में भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके शतकत्रय (नीतिशतक, शृंगारशतक, वैराग्यशतक) की उपदेशात्मक कहानियाँ भारतीय जनमानस को विशेष रूप से प्रभावित

करती हैं। प्रत्येक शतक में सौ–सौ श्लोक हैं। बाद में इन्होंने गुरू गोरखनाथ के शिष्य बनकर वैराग्य धारण कर लिया था इसलिये इनका एक लोकप्रचलित नाम बाबा भरथरी भी है।

जीवन–चरित्र– इनके आविर्भाव काल के सम्बन्ध में मतभेद हैं। इनकी जीवनी विविधताओं से भरी है। राजा भर्तृहरि ने भी अपने काव्य में अपने समय का निर्देश नहीं किया है। अतएव दन्तकथाओं, लोकगाथाओं तथा अन्य सामग्रियों के आधार पर इनका जो जीवन–परिचय उपलब्ध है, वह इस प्रकार है–

परंपरानुसार भर्तृहरि विक्रमसंवत् के प्रवर्तक के अग्रज माने जाते हैं। आपकी रचना पंचतंत्र में अनेक ग्रंथों के पद्यों का संकलन है। संभवतः पंचतंत्र में इसे नीतिशतक से ग्रहण किया गया होगा। फारसी ग्रंथ 579 ई. से 581 ई. के एक फारसी शासक के निमित्त निर्मित हुआ था। इसलिए राजा भर्तृहरि अनुमानतः 550 ई. से पूर्व हम लोगों के बीच आये थे। भर्तृहरि उज्जयिनी के राजा थे। ये 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करने वाले चन्द्रगुप्त द्वितीय के बड़े भाई थे। इनके पिता का नाम चन्द्रसेन था। पत्नी का नाम पिंगला था जिसे वे अत्यन्त प्रेम करते थे।

इन्होंने सुन्दर और रसपूर्ण भाषा में नीति, वैराग्य तथा श्रृंगार जैसे गूढ़ विषयों पर शतक–काव्य लिखे हैं। इस शतकत्रय के अतिरिक्त, वाक्यपदीय नामक एक उच्च श्रेणी का व्याकरण ग्रंथ भी इनके नाम पर प्रसिद्ध है। कुछ लोग भट्टिकाव्य के रचयिता भट्टि से भी उनका ऐक्य मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि नाथपंथ के वैराग्य नामक उपपंथ के ये ही प्रवर्तक थे। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार इन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था परन्तु अन्य सूत्रों के अनुसार ये अद्वैत वेदान्ताचार्य थे।

प्रश्न–27. वेदान्त के विख्यात और प्रभावशाली आध्यात्मिक गुरू स्वामी विवेकानन्द के जीवन–परिचय एवं योगदान पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

स्वामी विवेकानन्द के जीवन दर्शन पर टिप्पणी लिखिए। स्वामी विवेकानन्द का योग के क्षेत्र में योगदान लिखिए।

उत्तर– स्वामी विवेकानन्द का जीवन–परिचय– स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 को बंगाल में हुआ था। आप वेदान्त के विख्यात और प्रभावशाली आध्यात्मिक गुरू थे। इनका वास्तविक नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उन्होंने अमेरिका स्थित शहर शिकागो में सन् 1893 में आयोजित विश्व धर्म महासभा में भारत की ओर से सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व किया था। भारत का आध्यात्मिकता से परिपूर्ण वेदान्त दर्शन अमेरिका और यूरोप के प्रत्येक देश में स्वामी विवेकानन्द की पक्तृत्व शैली के कारण ही पहुँचा। आपने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी जो कि आज भी अपना काम कर रहा है। ये रामकृष्ण परमहंस के सुयोग्य शिष्य थे। शिकागो में उन्हें 2 मिनट के भाषण का समय दिया गया था लेकिन उन्हें प्रमुख रूप से उनके भाषण की शुरूआत 'मेरे अमरीकी भाइयो एवं बहनों' के साथ करने के लिये जाना जाता है। उनके संबोधन के इस प्रथम वाक्य ने सभी अमेरिकी श्रोताओं का दिल जीत लिया था।

कलकत्ता के एक कुलीन बंगाली कायस्थ परिवार में जन्मे विवेकानन्द आध्यात्मिकता की ओर झुके हुए थे। वे अपने गुरू रामकृष्ण देव से काफी प्रभावित थे जिनसे उन्होंने सीखा कि सारे जीवों में स्वयं परमात्मा का ही अस्तित्व है, इसलिए मानव जाति के उत्थान हेतु जरूरतमंदों की मदद करके व उनकी सेवा करके परमात्मा की भी सेवा की जा सकती है। स्वामी विवेकानन्द ने संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड और यूरोप में हिन्दू दर्शन के सिद्धान्तों का प्रसार किया और वहाँ विशाल सार्वजनिक और निजी व्याख्यानों का आयोजन किया। भारत में विवेकानन्द को एक देशभक्त संन्यासी के रूप में माना जाता है और आपके जन्मदिन को राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाया जाता है।

विवेकानन्द जी के बारे में प्रचलित कतिपय कहानियाँ

लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करना– एक बार स्वामी विवेकानन्द जो अपने आश्रम में सो रहे थे। कि तभी एक व्यक्ति उनके पास एक आया जो कि बहुत दुखी था और आते ही स्वामी विवेकानन्द जी के चरणों में गिर पड़ा और बोला महाराज! मैं अपने जीवन में खूब मेहनत करता हूँ, हर काम खूब मन लगाकर भी करता हूँ, फिर भी आज तक मैं कभी सफल व्यक्ति नहीं बन पाया।

उस व्यक्ति की बातें सुनकर स्वामी विवेकानन्द ने कहा ठीक है! आप मेरे इस पालतू कुत्ते को थोड़ी देर तक घुमाकर लायें तब तक मैं आपकी समस्या का समाधान ढूँढता हूँ। इतना कहने के बाद वह व्यक्ति कुत्ते को घुमाने के लिए चला गया और फिर कुछ समय बीतने के बाद वह व्यक्ति वापस आया तो स्वामी विवेकानन्द जी ने उस व्यक्ति से पूछा कि यह कुत्ता हाँफ क्यों रहा है? जबकि तुम थोड़े से भी थके हुए नहीं लग रहे हो आखिर ऐसा क्या हुआ?

इस पर उस व्यक्ति ने कहा कि मैं सीधा अपने रास्ते पर चल रहा था जबकि यह कुत्ता इधर–उधर रास्ते भर भागता रहा और कुछ भी देखता तो उधर ही दौड़ जाता था, जिसके कारण यह इतना थक गया है।

इस पर स्वामी विवेकानन्द जी मुस्कुराते हुए कहा बस यही तुम्हारे प्रश्नों का जवाब है। तुम्हारी सफलता की मंजिल तो तुम्हारे सामने ही होती है लेकिन तुम अपने मंजिल के बजाय इधर–उधर भागते हो जिससे तुम अपने जीवन में कभी सफल नहीं हो पाए। यह बात सुनकर उस व्यक्ति को समझ में आ गया था कि यदि सफल होना है तो हमें अपने मंजिल पर ध्यान देना चाहिए।

कहानी से शिक्षा– स्वामी विवेकानन्द जी के इस कहानी से हमें यही शिक्षा मिलती है कि हमें जो करना है, जो कुछ भी बनना है, हम उस पर ध्यान नहीं देते हैं, और दूसरों को देखकर वैसा ही हम करने लगते हैं जिसके कारण हम अपने सफलता की मंजिल के पास होते हुए भी दूर भटक जाते हैं। इसीलिए अगर जीवन में सफल होना है तो हमेशा हमें अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

नारी का सम्मान– स्वामी विवेकानन्द जी की ख्याति देश–विदेश में फैली हुई थी। एक बार की बात है। विवेकानन्द जी समारोह के लिए विदेश गए थे और उनके समारोह में बहुत से विदेशी लोग आये हुए थे। उनके द्वारा दिए गए स्पीच से एक विदेशी महिला बहुत ही प्रभावित हुई और वह विवेकानन्द जी के पास आयी और स्वामी विवेकानन्द से बोली कि मैं

आपसे शादी करना चाहती हूँ ताकि आपके जैसा ही मुझे गौरवशाली पुत्र की प्राप्ति हो। इस पर स्वामी विवेकानन्द जी बोले कि क्या आप जानती हैं कि "मैं सन्यासी हूँ" भला मैं कैसे शादी कर सकता हूँ? अगर आप चाहो तो मुझे आप अपना पुत्र बना लो। इससे मेरा संन्यास भी नहीं टूटेगा और आपको मेरे जैसा पुत्र भी मिल जाएगा। यह बात सुनते ही वह विदेशी महिला स्वामी विवेकानन्द जी के चरणों में गिर पड़ी और बोली कि आप धन्य हैं। आप ईश्वर के समान हैं जो किसी भी परिस्थिति में अपने धर्म के मार्ग से विचलित नहीं होते हैं।

विवेकानन्द बड़े स्वप्नदृष्टा थे। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें धर्म या जाति के आधार पर मनुष्य–मनुष्य में कोई भेद न रहे। उन्होंने वेदान्त के सिद्धान्तों को इसी रूप में रखा। अध्यात्मवाद बनाम भौतिकवाद के विवाद में पड़े बिना भी यह कहा जा सकता है कि समता के सिद्धान्त का जो आधार विवेकानन्द ने दिया उससे सकल बौद्धिक आधार शायद ही ढूँढ़ा जा सके। विवेकानन्द को युवकों से बड़ी आशाएँ थीं। आज के युवकों के लिए इस ओजस्वी संन्यासी का जीवन एक आदर्श है।

विवेकानन्द का योगदान तथा महत्व– स्वामी विवेकानन्द का जीवन–परिचय बताता है कि उन्तालिस वर्ष के संक्षिप्त जीवनकाल में स्वामी विवेकानन्द जो काम कर गये। ये कार्य आने वाली अनेक शताब्दियों तक पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

तीस वर्ष की आयु में स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो, अमेरिका के विश्व धर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व किया और उससे उन्हें सार्वजनिक पहचान मिली। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक बार कहा था– 'यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानन्द को पढ़िये। उनमें आप सब कुछ सकारात्मक ही पायेंगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं।'

ये केवल सन्त ही नहीं, एक महान देशभक्त, वक्ता, विचारक, लेखक और मानव–प्रेमी भी थे। गांधीजी को आजादी की लड़ाई में जो जन–समर्थन मिला, वह विवेकानन्द के आह्वान का ही फल था। इस प्रकार वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के भी एक प्रमुख प्रेरणा के स्रोत बने। उनका विश्वास था कि पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्यभूमि है। बड़े–बड़े महात्माओं व ऋषियों का जन्म हुआ, यहीं संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं केवल यहीं आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला हुआ है। उनके कथन– 'उठो, जागो, स्वयं जागकर औरों को जगाओ। अपने नर–जन्म को सफल करो और तब तक नहीं रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाये।'

उन्होंने पुरोहितवाद, ब्राह्मणवाद, धार्मिक कर्मकाण्ड और रूढ़ियों की खिल्ली भी उड़ायी और लगभग आक्रणकारी भाषा में ऐसी विसंगतियों के खिलाफ युद्ध भी किया। उनकी दृष्टि में हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ चिन्तकों के विचारों का निचोड़ पूरी दुनिया के लिए अब भी ईर्ष्या का विषय है। विवेकानन्द जी ने संकेत दिया था कि विदेशों में भौतिक समृद्धि तो है और उसकी भारत की जरूरत भी है लेकिन इसे याचक नहीं बनना चाहिये। हमारे पास उससे ज्यादा बहुत कुछ है जो हम पश्चिम को दे सकते हैं और पश्चिम को उसकी अतिआवश्यकता है।

यह स्वामी विवेकानन्द का अपने देश की धरोहर के लिए दम्भ या बड़बोलापन नहीं था। यह एक वेदान्ती साधु की भारतीय सभ्यता और संस्कृति की तटस्थ, वस्तुपरक और मूल्यगत आलोचना थी। बीसवीं सदी में इतिहास ने बाद में उसी पर मुहर लगायी।

मृत्यु– विवेकानन्द ओजस्वी और सारगर्भित व्याख्यानों की प्रसिद्धि विश्व भर में है। उनके शिष्यों के अनुसार जीवन के अन्तिम दिन 4 जुलाई 1902 को भी उन्होंने अपनी ध्यान करने की दिनचर्या को नहीं बदला और प्रातः दो–तीन घण्टे ध्यान किया और ध्यानावस्था में ही अपने ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर महासमाधि ले ली।

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त–

(1) शिक्षा ऐसी ही जिससे बालक का शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास हो सके।
(2) शिक्षा ऐसी हो जिससे बालक के चरित्र का निर्माण हो, मन का विकास हो, बुद्धि विकसित हो तथा बालक आत्मनिर्भर बने।
(3) बालक एवं बालिकाओं दोनों को समान शिक्षा देनी चाहिए।
(4) धार्मिक शिक्षा, पुस्तकों द्वारा न देकर आचरण एवं संस्कारों द्वारा देनी चाहिए।
(5) पाठ्यक्रम में लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के विषयों को स्थान देना चाहिए।
(6) शिक्षा, गुरू गृह में प्राप्त की जा सकती है।
(7) शिक्षक एवं छात्र का सम्बन्ध अधिक से अधिक निकट का होना चाहिए।
(8) सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया जाना चाहिये।
(9) देश की आर्थिक प्रगति के लिए तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की जाये।
(10) मानवीय एवं राष्ट्रीय शिक्षा परिवार से ही शुरू करनी चाहिए।
(11) शिक्षा ऐसी हो जो सीखने वाले को जीवन संघर्ष से लड़ने की शक्ति दे।
(12) व्यक्ति को अपनी रूचि को महत्व देना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा पर विचार– मनुष्य–निर्माण की प्रक्रिया पर केन्द्रित है, न कि महज किताबी ज्ञान पर। एक पत्र में वे लिखते हैं– "शिक्षा क्या है? क्या वह पुस्तक–विद्या है? नहीं। क्या वह नाना प्रकार का ज्ञान है? नहीं, यह भी नहीं। जिस संयम के द्वारा इच्छाशक्ति का प्रवाह और विकास वश में लाया जाता है और वह फलदायक होता है, वह शिक्षा कहलाती है।" शिक्षा का उपयोग किस प्रकार चरित्र–गठन के लिए किया जाना चाहिए, इस विश्व में स्वामी जी कहते हैं, "शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत–सी बातें इस तरह ठूँस दी जाएँ, जो आपस में, लड़ने लगें और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर में हजम न कर सके। जिन शिक्षा से हम अपना जीवन–निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र–गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को हजम कर तद्नुसार जीवन और चरित्र गठित कर सकते हो तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरी की पूरी लाइब्रेरी ही कण्ठस्थ कर ली है।"

देश की उन्नति–फिर चाहे वह आर्थिक हो या आध्यात्मिक–में स्वामी जी शिक्षा की भूमिका केन्द्रित मानते थे। भारत तथा पश्चिम के बीच के अन्तर को वे इसी दृष्टि से वर्णित करते हुए कहते हैं, "केवल शिक्षा यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूमकर और वहाँ के गरीबों के भी अमन–चैन और विद्या को देखकर हमारे गरीबों की बात याद आती थी और मैं आँसू

बहाता था। यह अन्तर क्यों हुआ? जवाब पाया– शिक्षा'' स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि उपयुक्त शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व विकसित होना चाहिए और चरित्र की उन्नति होनी चाहिए। सन् 1900 में लॉस एंजिल्स व कैलिफोर्निया में दिए गए एक व्याख्यान में स्वामी जी यही बात सामने रखते हैं, ''हमारी सभी प्रकार की शिक्षाओं का उद्देश्य तो मनुष्य के इसी व्यक्तित्व का निर्माण होना चाहिये। परन्तु इसके विपरीत हम केवल बाहर से पॉलिश करने का ही प्रयास करते हैं। यदि भीतर कुछ सार न हो तो बाहरी रंग चढ़ाने से क्या लाभ? शिक्षा का लक्ष्य अथवा उद्देश्य तो मनुष्य का विकास ही है।''

स्वामी विवेकानन्द के अनमोल वचन–

(1) उठो, जागो! और तब तक नहीं रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता।

(2) हर आत्मा ईश्वर से जुड़ी है, करना ये है कि हम इसकी दिव्यता को पहचानें, अपने आपको अंदर या बाहर से सुधारकर। कर्म, पूजा, अन्तर्मन या जीवन–दर्शन इनमें से किसी एक या सब से ऐसा किया जा सकता है और फिर अपने आपको खोल दें। यही सभी धर्म का सारांश है। मंदिर, परंपराएँ, किताबें या पढ़ाई ये सब इससे कम महत्वपूर्ण हैं।

(3) एक विचार लें और इसे ही अपनी जिंदगी का एकमात्र विचार बना लें। इसी विचार के बारे में सोचे, सपना देखें और इसी विचार पर जिएँ। आपके मस्तिष्क, दिमाग और रगों में यही एक विचार भर जाए। यही सफलता का रास्ता है। इसी तरह से बड़े–बड़े आध्यात्मिक धर्म, पुरूष बनते हैं।

(4) एक समय में एक काम करो और करते समय अच्छी पूरी आत्मा उसमें डाल दो और बाकि सब कुछ भूल जाओ।

(5) पहले हर अच्छी बात का मजाक बनता है, फिर विरोध होता है और फिर उसे स्वीकार किया जाता है।

(6) एक अच्छे चरित्र का निर्माण हजारों बार ठोकर खाने के बाद ही होता है।

(7) जीवन में ज्यादा रिश्ते होना जरूरी नहीं, लेकिन रिश्तों में जीवन होना बहुत जरूरी है।

प्रश्न–28. भारतीय कालगणना क्या है? समझाइये।

अथवा

भारतीय ऋतुचर्या पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– भारतीय कालगणना– भारतीय कालगणना पूर्ण वैज्ञानिक है। वर्ष–प्रतिपदा (6 अप्रैल) से युगाब्द 5121 विक्रमी 2076 तथा शालिवाहन शक संवत् 1941 का शुभारम्भ हो रहा है। अंग्रेजों के भारत में आने के पहले तक भारत का जन–समुदाय इन्हीं संवतों को मानता था। समाज की व्यवस्था ऐसी थी कि बिना किसी प्रचार के हर व्यक्ति को तिथि, मास व वर्ष का ज्ञान हो जाता था। अमावस्या को स्वतः ही बाजार व अन्य कामकाज बन्द रखे जाते थे। एकादशी, प्रदोष आदि पर व्रत–उपवास भी लोग रखते थे। तात्पर्य यह है कि समाज की सम्पूर्ण गतिविधियाँ भारतीय कालगणना के अनुसार बिना किसी कठिनाई से सहज रूप से संचालित होती थीं। आज भी समाज का एक बड़ा हिस्सा भारतीय तिथि–क्रम के

अनुसार ही अपने कार्य–कलाप चलाता है, पश्चिमी कालगणना अर्थात् ग्रेगेरियन–कैलेण्डर की व्यापकता और प्रत्येक क्षेत्र में इसकी घुसपैठ के बाद भी भारतीय कैलेण्डर का महत्व कम नहीं हुआ है।

यह सही है कि ईस्वी सन् की कालगणना सहज एवं ग्राह्य है तथा तिथियों–मासों के घटने–बढ़ने का क्रम भी इसमें नहीं है, फिर भी यह सटीक नहीं है। पूरे विश्व में ''मानक'' के रूप में प्रयुक्त होने के बाद भी न तो यह वैज्ञानिक है, न ही प्रकृति से इसका कोई सम्बन्ध है। इसका वैज्ञानिक आधार केवल एक ही है कि जितने समय में पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर लगाती है, ईस्वी सन् का वर्ष भी लगभग उतने ही समय का है। वास्तव में ईस्वी सन् का इतिहास भी पश्चिम की अन्य संस्थाओं की तरह प्रयोग तथा असफलता वाला रहा है।

दस महीनों का वर्ष– पश्चिमी कालगणना का प्रारम्भ रोम में हुआ। शुरू में रोम के विद्वानों ने 304 दिनों का वर्ष माना तथा एक साल में दस महीने तय किये। महीनों के नाम भी यूं ही रख दिये गये। दिसम्बर, अक्तूबर, नवम्बर तथा दिसम्बर नाम सातवें, आठवें नवें तथा दसवें महीने होने के कारण ही पड़े। बाद में सीजर जूलियस तथा सीजर ऑगस्टस के नाम से दो महीने जुलाई और अगस्त और जुड़ गये तो सितम्बर से दिसम्बर नौवें से बारहवें महीने हो गये। बारह महीनों के साथ एक वर्ष के दिन भी 360 हो गए। जूलियस सीजर ने ईसा से 45 वर्ष पहले 365.25 दिनों का वर्ष तय किया। इसलिए वर्षों तक इसे ''जूलियन–कैलेण्डर'' कहा जाता रहा।

जूलियन कैलेण्डर की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें साल की शुरूआत 25 मार्च से होती ती। पूरे यूरोप में ग्रेगेरियन कैलेण्डर लागू होने तक नया वर्ष 25 मार्च से ही प्रारंभ होता रहा।

जूलियन–कैलेण्डर के एक वर्ष तथा पृथ्वी द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा के समय में काफी फर्क था। पन्द्रह सौ सालों में यह अन्तर 11 दिन का हो गया। अतः ईस्वी सन् 1532 में पोप ग्रेगरी (तेरहवें) ने जूलियन–कैलेण्डर में संशोधन किया, यही संशोधित रूप ग्रेगरी के नाम पर ''ग्रेगेरियन कैलेण्डर'' कहलाता है। इसके मुख्य संशोधन इस प्रकार हैं–

(1) वर्ष का प्रारंभ 25 मार्च के स्थान पर 1 जनवरी से।

(2) सन् 1532 के 4 अक्तूबर को 15 अक्तूबर माना जाये ताकि 11 दिन का फर्क दूर हो जाये।

(3) हर चार साल बाद जनवरी का महीना 29 दिन का हो, सरलता के लिए 4 से विभाजित होने वाले वर्ष की फरवरी के दिन 29 किए गये।

कई देशों ने फिर भी कैलेण्डर को मान्यता नहीं दी। इंग्लैण्ड ने सन् 1739 में इसे स्वीकार किया, लेकिन यह संशोधन भी इस कैलेण्डर को सटीक नहीं बना पाया। अब भी पृथ्वी के परिभ्रमण–समय तथा ''ग्रेगरी–वर्ष'' में अन्तर आता रहता है। इसलिए अक्सर घड़ियों को कुछ सैकण्ड आगे या पीछे करना पड़ता है। दूसरी ओर भारतीय कालगणना में सृष्टि के प्रारंभ से लेकर अब तक सैकण्ड के सौवें भाग का भी अन्तर नहीं आया है।

पूर्ण शुद्ध काल–गणना– भारत में प्राचीनकाल से मुख्य रूप से ''सौर'' तथा ''चन्द्र'' कालगणना व्यवहार में लाई जाती है। इसका सम्बन्ध सूर्य और चन्द्रमा से है। ज्योतिष के

प्राचीन ग्रंथ "सूर्य सिद्धान्त" के अनुसार पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाने में 365 दिन, 15 घटी, 31 पल, 31 विपल तथा 24 प्रतिविपल (365.258756484 दिन) का समय लेती है, यही वर्ष का कालमान है। यहाँ यह याद रखा जाना चाहिए कि "सूर्य-सिद्धान्त" ग्रंथ उस समय का है, जब यूरोप में साल के 360 दिन ही माने जाते थे।

भारतीय ऋतुचर्या– आकाश में 27 नक्षत्र हैं तथा इनके 108 पाद होते हैं। विभिन्न अवसरों पर नौ-नौ पाद मिलकर बारह राशियों की आकृति बनाते हैं। इन राशियों के नाम मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन हैं। सूर्य जिस समय जिस राशि में स्थित होता है वही कालखण्ड "सौर-मास" कहलाता है। वर्ष भर में सूर्य प्रत्येक राशि में एक माह तक रहता है, अतः सौर-वर्ष के बारह महीनों के नाम उपरोक्त राशियों के अनुसार होते हैं, जिस दिन सूर्य जिस राशि में प्रवेश करता है, वह दिन उस राशि का संक्रान्ति दिन माना जाता है, पिछले कुछ वर्षों से सूर्य 14 जनवरी को मकर राशि में प्रवेश करता है, इसीलिए मकर-संक्रान्ति 14 जनवरी को पड़ती है।

चन्द्रमा पृथ्वी का चक्कर जितने समय में लगा लेता है, वह समय साधारणतः एक "चन्द्र-मास" होता है। चन्द्रमा की गति के अनुसार तय किए गये महीनों की अवधि नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार कम या अधिक भी होती है, जिस नक्षत्र में चन्द्रमा बढ़ते-बढ़ते पूर्णता को प्राप्त होता है, उस नक्षत्र के नाम पर चन्द्र वर्ष के महीने का नामकरण किया गया है। एक वर्ष में चन्द्रमा चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, आषाढ़ा, श्रवण, भाद्रपदा अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा और फाल्गुनी नक्षत्रों में पूर्णता को प्राप्त होता है। इसीलिये चन्द्र-वर्ष के महीनों के नाम चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन रखे हैं। मास के जिस हिस्से में चन्द्रमा घटता है, वह कृष्ण-पक्ष तथा बढ़ने वाले हिस्से को शुक्ल-पक्ष कहा जाता है।

चन्द्रमा के बारह महीनों का वर्ष सौर-वर्ष से 11 दिन, 3 घटी तथा 48 पल छोटा होता है। सामंजस्य बनाये रखने के लिए 32 महीने, 16 दिन, 4 घटी के बाद एक चन्द्र-मास की वृद्धि मानी जाती है। यही "अधिक मास" कहलाता है। 140 या 190 वर्षों के बाद एक चन्द्रमास कम भी होता है, किन्तु "वृद्धि" या "क्षय" भी नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार ही होते हैं। तीन साल में एक बार ऐसा अवश्य होता है कि दो अमावस्या (चन्द्र-मास) के बीच में सूर्य की कोई संक्रान्ति नहीं पड़ती। वही मास बढ़ा हुआ माना जाता है। इसी प्रकार 140 से 190 वर्षों में एक ही चन्द्र मास में दो संक्रान्ति आती हैं, जिस चन्द्र-मास में सूर्य की दो "संक्रान्ति" (एक राशि से दूसरी राशि मे जाना) आती है, वही महीना कम हुआ माना जाता है, सौर वर्ष और चन्द्र वर्ष में इस प्रकार सामंजस्य बनता है।

सबसे छोटी व बड़ी इकाई– वर्ष, महीने, दिन आदि की गणना के साथ-साथ प्राचीन भारत के वैज्ञानिकों ने समय की सबसे छोटी इकाई "त्रुटि" का भी आविष्कार किया। महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य ने आज से चौदह सौ वर्ष पहले लिखे अपने ग्रंथ में समय की भारतीय इकाइयों का विशद् विवेचन किया है, ये इकाइयाँ इस प्रकार हैं–

225 त्रुटि = 1 प्रतिविपल
६0 प्रतिविपल = 1 विपल (0.4 सैकण्ड)

60 विपल = 1 पल (24 सैकण्ड)
60 पल = 1 घटी (24 मिनिट)
2.5 घटी = 1 होरा (एक घंटा)
5 घटी या 2 होरा = 1 लग्न (2 घंटे)
60 घटी या 24 होरा या 12 लग्न = 1 दिन (24 घंटे)

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि एक विपल आज के (विभिन्न ऋतुओं में आचरण योग्य आहार-विहार) हमारे शरीर पर खान-पान के अलावा ऋतुओं और जलवायु का भी प्रभाव पड़ता है। एक ऋतु में कोई एक दोष बढ़ता है, तो कोई शान्त होता है और दूसरी ऋतु में कोई दूसरा दोष बढ़ता तथा अन्य शान्त होता है। इस प्रकार मनुष्य के स्वास्थ्य के साथ ऋतुओं का गहरा सम्बन्ध है। अतः आयुर्वेद में प्रत्येक ऋतु में दोषों में होने वाली वृद्धि, प्रकोप या शान्ति के अनुसार सब ऋतुओं के लिए अलग-अलग प्रकार के खान-पान और रहन-सहन (आहार-विहार) का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार आहार-विहार अपनाने से स्वास्थ्य की रक्षा होती है तथा मनुष्य रोगों से बचा रहता है। भौगोलिक स्थिति के अनुसार एक वर्ष में मुख्य रूप से तीन ऋतुएँ (मौसम)आती हैं- गर्मी, शीतकाल और वर्षा। इन तीनों में शरीर के अन्दर अनेक प्रकार के परिवर्तन आते हैं। ये तीन मौसम छः ऋतुओं में बाँटे गये हैं। ये ऋतुएँ हैं- वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर। प्रत्येक ऋतु दो-दो मास की होती है। चैत्र-वैशाख में वसन्त, ज्येष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद में वर्षा, आश्विन-कार्तिक में शरद, मार्गशीर्ष-पौष में हेमन्त तथा माघ-फाल्गुन में शिशिर ऋतु होती है। इन ऋतुओं का आधार सूर्य की गति है, जिसे आयन कहा जाता है। आयन दो प्रकार के होते हैं- उत्तरायण व दक्षिणायन।

विभिन्न ऋतुओं में दोषों की प्राकृत/स्वाभाविक अवस्था- दोष संचय, प्रकोप।
वात – ग्रीष्म वर्षा शरद
पित्त – वर्षा शरद हेमन्त
कफ – शिशिर शिशिर ग्रीष्म

'उत्तरायण' शब्द उत्तर एवं आयन, इन दो पदों से बना है। इसका भाव है- सूर्य की उत्तर की ओर गति। चैत्र से भाद्रपद उत्तरायण में आते हैं। यह आदान काल भी कहलाता है, क्योंकि इस समय प्रचण्ड सूर्य रस (जलीय तत्व) का आदान (ग्रहण) करता है। सूर्य की किरणें प्रखर और हवाएँ तीव्र, गर्म और रूक्ष होती हैं। इसका प्रभाव सभी औषधियों के साथ-साथ मनुष्य के शरीर पर भी पड़ता है। इससे शारीरिक शक्ति में कमी होने लगती है और व्यक्ति की शक्ति में कमी होने लगती है और व्यक्ति दुर्बलता का अनुभव करता है। इस अवधि में शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुएँ आती हैं।

दक्षिणायन शब्द दक्षिण+अयन, इन दो पदों से बना है। अयन का अर्थ गति है। इसमें सूर्य की गति दक्षिण की ओर होती है। इस समय सूर्य की किरणों के मन्द व सौम्य होने से वातावरण में रस (जलीय तत्व) की वृद्धि होती है, इसे विसर्ग काल कहते हैं। क्योंकि इसमें सौम्य अवस्था वाले सूर्य व चन्द्र द्वारा वातावरण में रस का विसर्जन किया जाता है। इसमें हवाएँ आदान काल की तरह शुष्क, गर्म और रूक्ष नहीं होतीं। वातावरण में चन्द्रमा के सौम्य

गुणों की प्रधानता होती है तथा ताप कम हो जाता है। हवाओं, बादलों और वर्षा में ठण्डक आ जाती है। सब जगह चन्द्रमा की शीतलता रहती है। वातावरण की शीतलता के कारण औषधियों और खाद्य पदार्थों में स्निग्धता आ जाती है। इससे मनुष्यों एवं अन्य प्राणियों की शारीरिक शक्ति में वृद्धि होती है।

आदान काल एवं विसर्ग काल में भेद प्राकृतिक भाव आदान काल विसर्ग काल सूर्य उत्तरायण–दक्षिणायन वायु तीव्र रूक्ष अरूक्ष स्नेहांशशोषण एवं ह्रास वृद्धि एवं पोषण स्वभाव आग्नेयसौम्य ऋतुएँ शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म वर्षा, शरद, हेमन्त रस रक्त, कषाय, कटु रस की वृद्धि अम्ल, लवण, मधुर रस की वृद्धि।

दक्षिण भारत में वर्षा अधिक होती है। अतः वर्षा–ऋतु के दो भाग किये गये हैं– पहले भाग को प्रावृद् (आषाढ़–श्रावण) और दूसरे भाग को वर्षा–ऋतु (भाद्रपद–आश्विन) कहा गया है। जबकि उत्तर भारत में वर्षा कम होती है तथा ठण्ड अधिक पड़ती है। अतः यहाँ प्रावृद् ऋतु न मानकर शीतकाल की दो ऋतुएँ– हेमन्त और शिशिर मानी जाती हैं।

भारतीय जलवायु के अनुसार आयुर्वेद में वर्णित ऋतुएँ

वसंत, ग्रीष्म, माघ–फाल्गुन, चैत्र–वैशाख, ज्येष्ठ–आषाढ़, मध्य जनवरी–मध्य मई, मध्य मई–मध्य जुलाई, विसर्ग काल (दक्षिणायन), वर्षा, शरद, हेमन्त, स्रावण–भाद्रपद, अश्विनी–कार्तिक, मार्गशिर–पौष, मध्य जुलाई–मध्य सितम्बर, मध्य सितम्बर–मध्य नवम्बर, मध्य नवम्बर– मध्य जनवरी।

विसर्ग और आदान काल के प्रभावों के कारण आदान काल के अन्त और विसर्ग काल के प्रारम्भ में दुर्बलता अधिक रहती है। इन दोनों कालों के बीच के समय में मनुष्यों में बल भी मध्य प्रकार का अर्थात् न बहुत अधिक और न बहुत न्यून, अर्थात् मध्यम स्थिति में रहता है। विसर्ग काल के अन्त एवं आदान काल के आरम्भ में शरीर में बल की प्राप्ति अधिक होती है। समय की इन सभी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही आयुर्वेद ने सभी ऋतुओं में अलग–अलग आहार–विहार का वर्णन किया है।

ऋतु माह– जलवायु की अवस्था वसंत मार्च–अप्रैल–मई बड़े दिन, उष्ण जलवायु, कदाचित् वर्षा और तेज हवा का बहाव। ग्रीष्म जून–जुलाई–अगस्त दिन बड़े, उष्ण जलवायु।

शरद– सितम्बर–अक्टूबर–नवम्बर दिन छोटे, शीत जलवायु एवं पतझड़।

शिशिर– दिसम्बर–जनवरी–फरवरी दिन छोटे, शीत जलवायु एवं पतझड़।

शिशिर– दिसम्बर–जनवरी–फरवरी दिन छोटे, शीत, तुषार (ओस) एवं कोहरा युक्त जलवायु।

प्रश्न–29. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–

(1) सेवा (2) सहिष्णुता (3) परोपकार (4) समर्पण (5) आत्मपरीक्षण

उत्तर– (1) सेवा– सेवा एक आदर्श और उच्चतम मानवीय गुण है,जो हमें समाज में सम्मान और समर्थन प्राप्त कराती है। सेवा का आशय अपने समाज, देश और मानवता के लिए समर्पित तथा उपकारी होना है। सेवा एक आदर्श गुण है जो व्यक्ति को दूसरों के साथ संवेदनशीलता, समर्थन और मदद के लिए तैयार तथा प्रोत्साहित करती है। सेवा समाज में समर्थ और आत्मनिर्भर नागरिकों का निर्माण करने में सहायता करती है और एक समृद्ध, समरस और सजीव समाज का निर्माण करती है। सेवा अनेक प्रकार की होती है, जैसे कि सामुदायिक या समाज सेवा, गरीबों की सेवा, स्वच्छता सेवा, राष्ट्रीय सेवा इत्यादि।

सामुदायिक सेवा में भंडारा करना, पुण्य करना, गरीबों एवं लाचारों को भोजन, वस्त्र आदि देना जैसे कार्य आते हैं। इसे समाज सेवा भी कहते हैं।

हिन्दुओं में यह कहावत प्रचलित है– करोगे सेवा, तो मिलेगी मेवा।

रोगी, बीमार, अपंग, अपाहिज, वृद्ध आदि सेवा के पात्र हैं क्योंकि वे अपनी सेवा स्वयं नहीं कर सकते। मानव जीवन में ऐसी सेवा महत्व रखती है जो पारमार्थिक हो, सर्वथा निःस्वार्थ हो, जो बिना किसी लोभ–लालच से की जाती हो।

(2) सहिष्णुता– सहिष्णुता का अर्थ है– सहनशीलता तथा मानसिक शांति। विरोधी विचार व परिस्थितियाँ व्यक्ति को अशांत करती हैं। विपरीत विचारों, स्थितियों और व्यवस्थाओं को सहन करना सहिष्णुता है। इस प्रकार वैचारिक अशांति का महत्वपूर्ण उपचार सहिष्णुता है।

'सहिष्णुता' वह आदर्श तथा मानवीय गुण है जो हमें दूसरों के विचारों, धार्मिक अथवा सामाजिक प्रतिष्ठान, अनुभवों और विचारधाराओं का सम्मान करने की क्षमता प्रदान करती है। सहिष्णुता से तात्पर्य अपने स्वयं के धार्मिक अथवा सामाजिक विचारों के साथ होने के बावजूद दूसरों के विचारों और अनुभवों का भी सम्मान करने की क्षमता से है। सहिष्णुता का अर्थ अलग–अलग प्रतिष्ठान, समाज या संस्कृति के लोगों के बारे में बिना समझौते के उन्हें समर्थन और सम्मान देने से है। यह यात्रा, रहन–सहन, खाने–पीने और धार्मिक अभ्यास जैसे विभिन्न जीवन के अवसरों पर भी प्रकट हो सकती है। सहिष्णुता एक उच्चतम मानवीय गुण है जो व्यक्ति को आत्मनिर्भरता और विविधता को समझने में सहायता करती है। सहिष्णुता समाज में सद्भाव, एकता और समरसता का निर्माण करती है। यह विश्वास, भावना और समर्थन के अभाव को पूर्ण करती है और हमें व्यक्ति की सभी मानवीय भावनाओं को समझने और उनका सम्मान करने की क्षमता प्रदान करती है।

(3) परोपकार– 'परोपकार' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'परस्परोपकार' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ दूसरों की मदद करना और उन्हें अपना समर्थन प्रदान करना है। यह एक अति महत्वपूर्ण और उच्चतम मानवीय गुण है जो समाज के भिन्न–भिन्न वर्ग के लोगों को एक–दूसरे की जरूरतों को समझने और उन्हें समर्थन प्रदान करने की भावना विकसित करता है। परोपकार हमें परस्पर भावनात्मक सम्बन्ध बनाने में सहायता करता है और एक समरस समाज का निर्माण करता है जहाँ सभी लोग परस्पर सहानुभूति और समर्थन के साथ रहते हैं। हम परोपकार के माध्यम से दूसरों के दुख–दर्द को समझते हैं और उन्हें समर्थन देने का प्रयास करते हैं। यह समाज में सद्भाव, समरसता व एकता को प्रोत्साहित करता है और व्यक्ति को समझदार, संवेदनशील तथा उदार बनाता है।

भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि शुभ कर्म करने वालों का न यहाँ और न ही परलोक में विनाश होता है। सच्चा परोपकारी वही व्यक्ति होता है जो प्रतिफल की कामना न रखते हुए परोपकार करता है।

तुलसीदास जी ने कहा है– "परिहित सरिस धर्म नहीं भाई"

(4) समर्पण– 'समर्पण' एक उच्चतम साधना है, जो व्यक्ति को अपने कार्य, समय, ज्ञान, विचार, भावनाएँ एवं अन्य संसाधनों को समर्पित करने की क्षमता प्रदान करता है। समर्पण व्यक्ति को अपने उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को पूरा करने हेतु प्रतिबद्ध बनाता है, जिससे वह उन्हें पूरा करने में सक्षम होता है। समर्पण में छल, या कपट का कोई स्थान नहीं है। समर्पण में श्रद्धा का महत्व अधिक होता है। हमें जिस पर श्रद्धा होती है उसी पर हमारा समर्पण होता है। जब किसी व्यक्ति की श्रद्धा ईश्वर के जिस अवतार (जैसे राम या कृष्ण, शंकर या हनुमान आदि) के प्रति होती है तो वह व्यक्ति ईश्वर के उस अवतार के प्रति अपना पूर्ण समर्पण भाव रखता है। समर्पण में अपनी आशाओं तथा आकांक्षाओं के लिए कोई जगह नहीं है। सच्चा समर्पण भाव ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता की सीढ़ी बन जाता है।

समर्पण भाव से व्यक्ति अपने काम को निष्ठापूर्वक, संवेदनशीलता तथा उत्साहपूर्वक करता है। यह उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सामर्थ्यवान बनाता है तथा अधिक सक्रिय जीवन जीने हेतु प्रेरित करता है। एक समर्पित व्यक्ति में अपने प्रति अन्याय का सामना करने की क्षमता विकसित होती है जो उसे आत्मनिर्भर बनाती है। समर्पित व्यक्ति जीवन में सफलता की ऊँचाईयों को छूता है।

(5) आत्मपरीक्षण– आत्म–परीक्षण का अर्थ स्वयं को अन्दर से टटोलने अथवा अपने स्वयं का परीक्षण करने से है। 'आत्मपरीक्षण' करना वह कार्य है जो व्यक्ति को अपनी आत्मा की अवस्था, गुण, दोष और क्षमताओं का विचार करने और मूल्यांकन करने की क्षमता प्रदान करता है। यह आत्मविश्लेषण की एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति स्वयं को समझने का प्रयास करता है और अपने स्वयं के बारे में जानकारी जुटाता है, जिससे वह स्वयं के लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद प्राप्त कर सकता है। आत्मपरीक्षण के द्वारा व्यक्ति अपने सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को पहचानता है और स्वयं को समझने के लिए नये और बेहतर मार्ग खोजने में समर्थ होता है। आत्म–परीक्षण से व्यक्ति अपनी क्षमताओं को और अधिक विकसित कर अपने दोषों व कमियों को दूर करके स्वयं को सफल बना सकता है।

इस प्रकार आत्म–परीक्षण वह शक्तिशाली साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति का सफलता का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। जीवन में आत्म–परीक्षण करना जरूरी है। कुछ लोग परिश्रम तो करते हैं परन्तु यह परिश्रम दिशाहीन होता है क्योंकि उनके परिश्रम में आत्म–परीक्षण शामिल नहीं होता। अतः प्रत्येक व्यक्ति को आत्म–परीक्षण बाल्यकाल से लेकर जीवनपर्यन्त करते रहना चाहिए।

प्रश्न–30. वैदिक मंत्रों एवं प्रार्थना का वर्णन कीजिये।

अथवा

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–

(A) मंत्रों का पाठ (B) मंगलाचरण (C) योगी की प्रार्थना

उत्तर– (A) मंत्रों का पाठ

॥ ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

भावार्थ– उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तःकरण में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

ॐ
असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मामृतं गमय॥

हे ईश्वर (हमको) असत्य से सत्य की ओर ले चलो।
अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो।
मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

॥ ॐ त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात॥

हम त्रिनेत्र भगवान् शिव का चिन्तन करते हैं जो हमारे पोषणकर्ता हैं। जैसे ककड़ी अपने तने से बड़ी सरलता से अलग हो जाती है उसी प्रकार वे हमें मृत्यु से मुक्त करें।

॥ शान्ति पाठ॥

ॐ द्यौ शान्तरन्तरिक्षः शान्तिः पृथ्वी
शान्तिरापः शान्तिः रोषधयः शान्ति।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः
शान्तिब्रह्मा शान्तिः सर्वः शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति ॐ

।शान्ति पाठ का अर्थ– शान्ति कीजिए प्रभु त्रिभुवन में ।। शान्ति कीजिए। जल में थल में और गगन में, अन्तरिक्ष में, अग्नि में पवन में,

औषधि वनस्पति वन उपवन में, सकल विश्व में जड़ चेतन में।।
शान्ति कीजिए।
शान्ति राष्ट्रनिर्माण सृजन से, नगर नाम में और भवन में
जीवमात्र के तन में मन में, और जगत के कण–कण में।।
शान्ति कीजिए।
ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॐ

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः।
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।
मा कश्चियद् दुःख भाग्यभवेत्।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

(B) मंगलाचरण–

(1) हे प्रभो! आपने यह सुन्दर जीवन और जगत् बनाकर हम सब दिव्य संतानों पर बहुत बड़ा उपकार किया है। अतः हमारे जीवन और सम्पूर्ण सामर्थ्य पर भी सबसे पहला अधिकार आपका ही है। यह सत्य हर पल हम स्वीकार करते हैं।

(2) हे ज्ञानमय, पुरुषार्थमय, प्रेममय, करुणामय एवं वात्सल्यमय प्रभो! हमारे जीवन को भी ज्ञानमय, पुरुषार्थमय, प्रेम, करुणा एवं वात्सल्यमय बना दो।

(3) हे सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, सर्वनियन्ता, न्यायकारी, दयालु, परमेश्वर! हम आपको मूर्त्त–अमूर्त्त, दृश्य–अदृश्य, व्यक्त–अव्यक्त, प्रत्यक्ष–परोक्ष, सगुण–साकार, निर्गुण–निराकार, विश्वमय व विश्वातीत रूप में हर समय अनुभव करें, ऐसे ज्ञान, भक्ति व श्रद्धा का वरदान हमें प्रदान करो।

(4) हे प्रभो! सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य एवं दिव्य संवेदनाओं का मूल स्रोत आपको ही अनुभव करते हुए कर्त्तव्य के अहंकार से मुक्त होकर, प्रत्येक कर्म को आपकी पूजा मानकर करते हुए, आपका यंत्र बनकर जिएँ अर्थात् आपका प्रतिरूप होकर, उत्साह व प्रसन्नतापूर्वक हम सब दिव्य जीवन जिएँ।

(5) हे परम प्रभो! हम अज्ञान एवं अज्ञानजनित अभावों, अपूर्णताओं, अन्यायों, अविवेकपूर्ण कामनाओं तथा समस्त अशुभ आचरणों से मुक्त होकर अकाम, आप्तकाम, आत्मकाम, ब्रह्मकाम होकर सदा आपके विधान के अनुरूप जीवन्मुक्त होकर जीवन जिएँ, यही निवेदन है।

(6) हे देवाधिदेव! हम सदैव आत्मप्रतिष्ठ होकर, आपके शरणागत होकर जिएँ।

(7) हे प्रभो! हमारा शरीर पुरुषार्थी, प्राण बलशाली, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी अर्थात् श्रद्धा, भक्ति, प्रेम व करुणा से भरा हुआ हो और हमारा सम्पूर्ण सामर्थ्य सेवा के लिए हो।

(8) हे करुणानिधान! सब कुछ आप से ही है, आपका ही है, आप में ही है, आपके लिए ही है। मैं भी प्रभो! आपका ही हूँ और आप सदा मेरे हो। हे नारायण! मैं आपको भूलूँ नहीं, सदा आपकी शरण में रहूँ।

(C) योगी की प्रार्थना–

(1) **ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।**
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। (बृहदारण्यकोपनिषद्)

(2) **यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।**
स्युष्टे सत्या इहाशिषः।। (ऋग्वेद)

अर्थात् हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! ऐसी कृपा करो कि हम तुझमें एकात्म हो जाएँ तथा तुम्हारी समस्त दिव्यताएँ हममें प्रकट हो जाएँ, जिससे कि हमारे लिए प्रदत्त तुम्हारे समस्त दिव्य आशीर्वाद इस धरती पर सत्य हो जाएँ, फलित हो जाएँ, चरितार्थ हो जाएँ।

❑❑❑

कृपया ध्यान दें

विश्वविद्यालय प्रकाशन, ग्वालियर द्वारा प्रकाशित **बी.ए., बी.कॉम. तथा बी.एस-सी.** की **'20 प्रश्न'** पुस्तकें खरीदते समय **प्रत्येक पेज पर 2024 छपा देखकर सही तथा असली पुस्तक** ही खरीदें। ये बी.ए., बी.कॉम. तथा बी.एस-सी. कक्षाओं के अंग्रेजी माध्यम में भी प्रकाशित हैं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

इकाई-1

(1) **Personality** शब्द किस मूल भाषा से लिया गया है?
(अ) लैटिन भाषा से (ब) हिन्दी भाषा से
(स) अंग्रेजी भाषा से (द) उर्दू भाषा से।
उत्तर– (स) अंग्रेजी भाषा से।

(2) **Persona** शब्द किस भाषा से लिया गया है?
(अ) लैटिन भाषा से (ब) हिन्दी भाषा से
(स) अंग्रेजी भाषा से (द) उर्दू भाषा से।
उत्तर– (अ) लैटिन भाषा से।

(3) 'व्यक्तित्व **(Personality)** व्यक्ति की सम्पूर्ण गुणात्मकता है', व्यक्तित्व की यह परिभाषा किसने दी?
(अ) शेल्डन ने (ब) वुडवर्थ ने
(स) वाटसन ने (द) आलपोर्ट ने।
उत्तर– (ब) वुडवर्थ ने।

(4) **Persona** शब्द का सही अर्थ है–
(अ) खिलौना (ब) मुखौटा
(स) लकड़ी (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (ब) मुखौटा।

(5) निम्न में से किसने शारीरिक संरचना के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकार बताये?
(अ) जुंग (ब) फ्रायड
(स) शेल्डन (द) स्प्रेनगर।
उत्तर– (स) शेल्डन।

(6) निम्न में से किसने व्यक्तित्व को अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी प्रकारों में बांटा?
(अ) टर्मन (ब) क्रेशमर
(स) शेल्डन (द) कार्ल जुंग।
उत्तर– (द) कार्ल जुंग।

(7) दार्शनिक, वैज्ञानिक, गणितज्ञ आदि में किस प्रकार का व्यक्तित्व पाया जाता है?
(अ) अन्तर्मुखी (ब) बहिर्मुखी
(स) उभयमुखी (द) उपरोक्त सभी।
उत्तर– (अ) अन्तर्मुखी।

(8) निम्न में से अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की कौनसी विशेषता है?
(अ) संदेही, एकान्तप्रिय रहने वाले (ब) हंसी मजाक वाले

(स) नेतृत्व क्षमता वाले (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) संदेही, एकान्तप्रिय रहने वाले।

(9) निम्न में से कौनसी गोलाकार व्यक्तित्व की विशेषता नहीं है?
(अ) कद, छोटा, शरीर भारी, मोटा (ब) हंसी मजाक करने वाले
(स) खाने के शौकीन (द) सामाजिक प्रवृति के व्यक्ति।
उत्तर– (द) सामाजिक प्रवृति के व्यक्ति।

(10) क्रेशमर के एथलेटिक प्रकार के व्यक्तित्व से मिलता–जुलता व्यक्तित्व का प्रकार है–
(अ) आयताकार (ब) गोलाकार
(स) लम्बाकार (द) उपरोक्त सभी।
उत्तर– (अ) आयताकार।

(11) बाल सम्प्रत्यय परीक्षण किसने दिया?
(अ) ल्योपोल्ड बेलोक ने (ब) मोर्गन ने
(स) टेण्डलर ने (द) आइजोक ने।
उत्तर– (अ) ल्योपोल्ड बेलोक ने।

(12) रक्षा तंत्र का उपयोग दो व्यक्तित्व संरचनाओं में से किस मानसिक संघर्ष को संभालने के लिए किया जाता है?
(अ) इद और परा अहम (ब) अहम और इदम
(स) अहम और अवचेतन (द) अहम और परा अहम।
उत्तर– (अ) इद और परा अहम।

(13) फ्रायड ने कौनसी मूल प्रवृति पर अधिक जोर दिया?
(अ) संचय प्रवृति (ब) रचना प्रवृति
(स) काम प्रवृति (द) एकान्त प्रवृति।
उत्तर– (स) काम प्रवृति।

(14) व्यक्तित्व का कार्यपालक कहलाता है–
(अ) इदम (ब) अहम
(स) परा अहम (द) उपरोक्त सभी।
उत्तर– (ब) अहम।

(15) नैतिकता के सिद्धान्त पर काम करता है–
(अ) इदम (ब) अहम
(स) परा अहम (द) लिबिडो।
उत्तर– (स) परा अहम।

(16) बच्चे का विकासशील व्यक्तित्व किसके द्वारा प्रभावित होता है?
(अ) व्यक्ति के शरीर में ग्रंथियों द्वारा
(ब) विद्यालय में प्राप्त अनुभवों द्वारा
(स) परिवार द्वारा
(द) ग्रंथियों, परिवार और विद्यालय में प्राप्त अनुभवों द्वारा।

उत्तर– (द) ग्रंथियों, परिवार और विद्यालय में प्राप्त अनुभवों द्वारा।

(17) छात्रों को मानसिक रूप से स्वस्थ बने रहने के लिए विद्यालय प्रशासन को कौनसा तरीका अपनाना चाहिए?
(अ) घर के लिए होमवर्क देना
(ब) बच्चों के मित्रों पर निगरानी रखना
(स) शिक्षण की उपयुक्त विधियाँ
(द) नियमित स्वास्थ्य परीक्षण।

उत्तर– (द) नियमित स्वास्थ्य परीक्षण।

(18) व्यक्तित्व के प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण में कार्ड की संख्या होती है–
(अ) 20 (ब) 30
(स) 40 (द) 50

उत्तर– (ब) 30

(19) व्यक्तित्व मापन की कौनसी विधि से समाज के व्यक्तियों से जानकारी लेकर निष्कर्ष निकाला जाता है?
(अ) निरीक्षण विधि (ब) साक्षात्कार विधि
(स) समाजमिति विधि (द) कागज–पेंसिल विधि।

उत्तर– (स) समाजमिति विधि।

(20) सिगमंड फ्रायड ने व्यक्तित्व के कितने अंग बताये हैं?
(अ) 2 (ब) 3
(स) 4 (द) 5

उत्तर– (ब) 3

(21) व्यक्तित्व पर किसका प्रभाव पड़ता है?
(अ) वंशानुक्रम का (ब) वातावरण का
(स) दोनों का (द) किसी का नहीं।

उत्तर– (स) दोनों का।

(22) स्प्रेनगर ने व्यक्तित्व को किस आधार पर बांटा है?
(अ) समाजशास्त्रीय आधार पर
(ब) शारीरिक संरचना के आधार पर
(स) आधुनिक दृष्टिकोण के आधार पर
(द) भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर।

उत्तर– (अ) समाजशास्त्रीय आधार पर।

(23) अमानवीय व्यवहार से युक्त व्यक्तित्व होता है–
(अ) सतोगुणी (ब) राजसी
(स) तामसी (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (स) तामसी।

(24) सृजनशील बालक का व्यक्तित्व होता है–

(अ) अन्तर्मुखी (ब) बहिर्मुखी
(स) उभयमुखी (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (ब) बहिर्मुखी।

(25) वाक्य पूर्ति परीक्षण का निर्माण किसने किया?
(अ) वाटसन ने (ब) जे.एल. मोरेनो ने
(स) ल्योपोल्ड बेलोक ने (द) पाइन टेण्डलर ने।

उत्तर– (द) पाइन टेण्डलर ने।

(26) रोर्शा–स्याही धब्बा परीक्षण में कुल कार्डों की संख्या होती है–
(अ) 10 (ब) 20
(स) 30 (द) 40

उत्तर– (अ) 10

(27) निम्न में से व्यक्तिनिष्ठ विधि कौनसी है?
(अ) व्यक्ति इतिहास विधि (ब) समाजमिति विधि
(स) क्रम निर्धारण विधि (द) निरीक्षण विधि।

उत्तर– (अ) व्यक्ति इतिहास विधि।

(28) कैटल ने कितने शील गुणों की चर्चा की है?
(अ) 14 (ब) 15
(स) 16 (द) 17

उत्तर– (स) 16

(29) व्यक्तित्व का अन्तर्मुखता–बहिर्मुखता के रूप में वर्गीकरण किसने प्रस्तुत किया?
(अ) क्रेशमर ने (ब) शेल्डन ने
(स) स्प्रेनगर ने (द) आइजेक ने।

उत्तर– (द) आइजेक ने।

(30) निम्न में से कौनसा व्यक्तित्व का जैविक निर्धारक है?
(अ) आनुवंशिक प्रभाव (ब) जन्म क्रम
(स) आकांक्षा स्तर (द) सामाजिक–आर्थिक–स्तर।

उत्तर– (अ) आनुवंशिक प्रभाव।

(31) 'व्यक्तित्व समाज द्वारा मान्य तथा अमान्य गुणों का संगठन है'। यह परिभाषा किसकी है?
(अ) महात्मा गाँधी (ब) अरस्तू
(स) रूसो (द) चाणक्य।

उत्तर– (ब) अरस्तू।

(32) 'सद्विचारों और सत्कर्मों की एकरूपता ही चरित्र है'– चरित्र की यह परिभाषा दी है–
(अ) विवेकानन्द (ब) डॉ. कन्हैयालाल पांडेय
(स) महात्मा गाँधी (द) महर्षि दयानन्द।

उत्तर– (ब) डॉ. कन्हैयालाल पांडेय।

(33) चरित्र निर्माण के लिए आवश्यक तत्वों में निम्न में कौनसा बिन्दु शामिल नहीं है?
(अ) मृदुभाषी (ब) विनम्रता
(स) स्वार्थ (द) परोपकार।

उत्तर– (स) स्वार्थ।

(34) चरित्र निर्माण के प्रमुख साधनों में निम्न में कौनसा बिन्दु शामिल नहीं है?
(अ) शिक्षा (ब) प्रतिष्ठा
(स) धर्म (द) अनुशासन।

उत्तर– (ब) प्रतिष्ठा।

(35) पंचकोष में कौनसा बिन्दु शामिल नहीं है?
(अ) आनंदमय कोष (ब) अन्नमय कोश
(स) प्राणमय कोष (द) शब्द कोष।

उत्तर– (द) शब्द कोष।

(36) शारीरिक विकास किस अवस्था में नहीं होता?
(अ) बाल्यावस्था (ब) शैशवावस्था
(स) प्रौढ़ावस्था (द) किशोरावस्था।

उत्तर– (स) प्रौढ़ावस्था।

(37) 'व्यक्ति के जन्म से परिपक्वता तक की मानसिक क्षमताओं एवं मानसिक कार्यों के उत्तरोत्तर प्रकटन एवं संगठन की प्रक्रिया को मानसिक विकास कहा जाता है।' यह परिभाषा किसकी है?
(अ) जेम्स ड्रेवर (ब) रूसो
(स) मैक्डूगल (द) थॉमसन।

उत्तर– (अ) जेम्स ड्रेवर।

(38) मानसिक विकास में कौनसी योग्यता शामिल नहीं है?
(अ) स्मरण (ब) संवेदन
(स) कल्पना (द) शारीरिक शक्ति।

उत्तर– (द) शारीरिक शक्ति।

(39) आदर्श दिनचर्या में शामिल नहीं है–
(अ) स्वच्छ वस्त्र धारण करना (ब) स्नान करना
(स) व्यायाम करना
(द) रात में देर तक अध्ययन करना।

उत्तर– (द) रात में देर तक अध्ययन करना।

(40) परिवार में कौन–कौन शामिल होता है?
(अ) माता–पिता व संतान
(ब) माता–पिता व दादा–दादी और बच्चे
(स) दादा, नाना, मामा, चाचा आदि

(द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (ब) माता–पिता व दादा–दादी और बच्चे।

(41) 'चरित्र आदतों का पुंज है'– चरित्र की यह परिभाषा दी है–
(अ) रूसो ने (ब) सेमुअल ने
(स) विवेकानन्द ने (द) महात्मा गांधी ने।

उत्तर– (ब) सेमुअल ने।

(42) 'चरित्र आत्मनियंत्रण की शक्ति है'– यह किसने कहा?
(अ) महर्षि दयानन्द ने (ब) बाउले ने
(स) महात्मा गांधी ने (द) रूसो ने।

उत्तर– (ब) बाउले ने।

(43) कौनसा गुण चरित्र निर्माण का गुण नहीं है?
(अ) परोपकार की भावना (ब) विनम्रता
(स) दयालुता (द) प्रतिस्पर्धा की भावना।

उत्तर– (द) प्रतिस्पर्धा की भावना।

(44) चरित्र निर्माण के साधनों में सम्मिलित नहीं है–
(अ) धर्म (ब) शिक्षा
(स) कर्तव्य ज्ञान (द) कुटैव बुरी आदतें।

उत्तर– (द) कुटैव बुरी आदतें।

(45) कौनसा गुण राष्ट्रीय चरित्र में सम्मिलित नहीं है?
(अ) मातृभूमि के प्रति प्रेम (ब) देशभक्त होना
(स) राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करना (द) धार्मिक कट्टरता का होना।

उत्तर– (द) धार्मिक कट्टरता का होना।

(46) व्यक्तिगत सच्चरित्रता में कौनसा बिन्दु शामिल नहीं है?
(अ) अनुशासित जीवन जीना (ब) परोपकारी होना
(स) सज्जनता होना (द) दुर्भावना रखना।

उत्तर– (द) दुर्भावना रखना।

(47) मानसिक विकास के अन्तर्गत क्या शामिल नहीं होता?
(अ) बुद्धि और भाषा का विकास (ब) तर्क शक्ति का विकास
(स) वजन व ऊँचाई का विकास (द) निर्णय लेने की शक्ति।

उत्तर– (स) वजन व ऊँचाई का विकास।

(48) चरित्र विकास निर्माण में कौनसा तत्व शामिल नहीं होता?
(अ) नैतिकता (ब) आचरण व व्यवहार
(स) पर्यावरण (द) संकल्प शक्ति।

उत्तर– (स) पर्यावरण।

(49) चरित्र निर्माण के साधनों में शामिल नहीं है–
(अ) धर्म (ब) शिक्षा

(स) मानवीयता (द) अनुशासनहीनता।

उत्तर– (द) अनुशासनहीनता।

(50) सदाचार में ..... नहीं आता–

(अ) गुरु की सेवा करना (ब) अच्छा आचरण करना

(स) सभी से विनम्रता से पेश आना

(द) दुराचारी के प्रति बैर भावना रखना।

उत्तर– (द) दुराचारी के प्रति बैर भावना रखना।

(51) सृजनशील बालक का व्यक्तित्व कैसा होता है?

(अ) बहिर्मुखी (ब) अन्तर्मुखी

(स) उभयमुखी (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (अ) बहिर्मुखी।

(52) कैटल के अनुसार शील गुण कितने हैं?

(अ) 12 (ब) 14

(स) 16 (द) 18

उत्तर– (स) 16

(53) व्यक्तित्व का जैविक निर्धारक क्या है?

(अ) जीन्स क्रम (ब) आनुवंशिक प्रभाव

(स) सामाजिक–आर्थिक स्तर (द) आकांक्षा स्तर।

उत्तर– (ब) आनुवंशिक प्रभाव।

(54) शेल्डन ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण किस आधार पर किया?

(अ) शीलगुण (ब) शारीरिक रचना

(स) सामाजिकता (द) त्वचा का रंग।

उत्तर– (ब) शारीरिक रचना।

(55) अन्तर्मुखी व्यक्तित्व ..... है।

(अ) मनोवैज्ञानिक प्रकार (ब) शरीर रचना प्रकार

(स) रचनात्मक प्रकार (द) मूल सम्बन्धी प्रकार।

उत्तर– (अ) मनोवैज्ञानिक प्रकार।

(56) 'व्यक्तित्व के द्वारा हम भविष्यवाणी कर सकते हैं' यह कथन किया–

(अ) रूसो ने (ब) कैटल ने

(स) युंग ने (द) थॉमसन ने।

उत्तर– (ब) कैटल ने।

(57) किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व रचना हेतु 'जीवन जीने का ढंग' का प्रतिपादन किया है?

(अ) फ्रायड ने (ब) एडलर ने

(स) वैटल ने (द) रूसो ने।

उत्तर– (ब) एडलर ने।

(58) चरित्र निर्माण में कौनसे तत्व का ध्यान रखना आवश्यक है?

(अ) शारीरिक क्षमता (ब) नैतिकता

(स) बौद्धिक क्षमता (द) व्यावसायिक योग्यता।

उत्तर– (ब) नैतिकता।

(59) चरित्र निर्माण के लिए कौन–सा विशेषज्ञ सहायक हो सकता है?

(अ) शिक्षक (ब) वैज्ञानिक

(स) चिकित्सक (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(60) चरित्र निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण अंग क्या है?

(अ) नैतिकता (ब) विद्या

(स) सुन्दरता (द) धन।

उत्तर– (अ) नैतिकता।

(61) पंचकोश का क्या अर्थ है?

(अ) पाँच प्रकार के प्राणायाम (ब) पाँच प्रकार के आसन

(स) पाँच प्रकार के खाद्य पदार्थ (द) पाँच प्रकार के योगाभ्यास।

उत्तर– (ब) पाँच प्रकार के आसन।

(62) पंचकोश सिद्धान्त किस धर्म से सम्बन्धित है?

(अ) यहूदी (ब) हिन्दू धर्म

(स) जैन धर्म (द) बौद्ध धर्म।

उत्तर– (ब) हिन्दू धर्म।

(63) पंचकोश को किस दर्शन और योग से सम्बन्धित माना जाता है?

(अ) ग्रीक दर्शन (ब) भारतीय दर्शन

(स) पश्चिमी दर्शन (द) चायनीज दर्शन।

उत्तर– (ब) भारतीय दर्शन।

(64) पंचकोश क्या है?

(अ) पाँच महाभूतों का समूह (ब) पाँच तत्वों का समूह

(स) पाँच प्राणों का समूह (द) पाँच मनोवृत्तियों का समूह।

उत्तर– (ब) पाँच तत्वों का समूह।

(65) पंचकोश का विचार किस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है?

(अ) पतंजलि योगसूत्र (ब) श्रीमद्भगवद् गीता

(स) उपनिषद् (द) योगवासिष्ठ।

उत्तर– (स) उपनिषद्।

(66) पंचकोशों का नामकरण किसके द्वारा किया गया था?

(अ) महर्षि व्यास (ब) महर्षि वाल्मीकि

(स) महर्षि याज्ञवल्क्य (द) महर्षि पतंजलि।

उत्तर– (स) महर्षि याज्ञवल्क्य।

(67) किस कोश को भौतिक शरीर का आवरण माना जाता है?
(अ) करण कोश (ब) स्थूल कोश
(स) अन्नमय कोश (द) सूक्ष्म कोश।
उत्तर– (स) अन्नमय कोश।

(68) कुल कितने कोश होते हैं?
(अ) तीन (ब) छह
(स) चार (द) पाँच।
उत्तर– (द) पाँच।

इकाई-2

(1) भारतीय दार्शनिक परम्परा के कितने भाग हैं?
(अ) दो (ब) चार
(स) तीन (द) पाँच।
उत्तर– (अ) दो।

(2) नास्तिक दर्शन कौनसे हैं?
(अ) चार्वाक दर्शन (ब) जैन दर्शन
(स) बौद्ध दर्शन (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(3) योग दर्शन को प्रतिष्ठित करने का श्रेय किसे जाता है?
(अ) महर्षि गौतम (ब) महर्षि पतंजलि
(स) महर्षि कपिल (द) महर्षि कणाद।
उत्तर– (ब) महर्षि पतंजलि।

(4) वेदान्त दर्शन का अन्तिम सार क्या है?
(अ) ब्राह्मणों का चिन्तन (ब) अरण्यकों का चिन्तन
(स) उपनिषदों का चिन्तन (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(5) न्याय का तात्पर्य है–
(अ) उचित वांछनीय सत्य (ब) कैवल्य प्राप्ति
(स) उपर्युक्त दोनों (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (द) इनमें से कोई नहीं।

(6) मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य क्या है?
(अ) निर्विकल्प समाधि (ब) कैवल्य की प्राप्ति
(स) उपर्युक्त दोनों (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) उपर्युक्त दोनों।

(7) जैन दर्शन में पृथ्वी को कितने तत्वों से बना कहा गया है?
(अ) चार (ब) तीन

(स) दो (द) पाँच।
उत्तर– (अ) चार।

(8) बौद्ध दर्शन का सार क्या है?
(अ) दुःख है (ब) दुःख का कारण है वह दुःख शांत है
(स) दुःख दूर करने के उपाय हैं (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(9) तत्व मीमांसा में कितने तत्वों का विवेचन प्राप्त है?
(अ) संचार के मूल तत्व (ब) मानव के मूल तत्व
(स) उपर्युक्त दोनों (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) उपर्युक्त दोनों।

(10) मन के अंगों को कितने वर्गों में बांटा गया है?
(अ) तीन (ब) चार
(स) पाँच (द) सात।
उत्तर– (अ) तीन।

(11) गीता में भक्ति का मार्ग किसे बताया गया?
(अ) ज्ञान को (ब) भक्ति को
(स) कर्म को (द) उपर्युक्त सभी को।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी को।

(12) 'योग जीवन आत्मा का मिलन है।' यह बताया गया है–
(अ) वेदान्त में (ब) उपनिषद में
(स) न्याय में (द) मोक्ष कर्म में।
उत्तर– (अ) वेदान्त में।

(13) योग ने किन शक्तियों का विकास किया?
(अ) शारीरिक (ब) मानसिक
(स) गुप्त (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(14) 'योग वह प्राचीन पथ है जो व्यक्ति को अंधेरे से प्रकाश में लाता है।' यह परिभाषा किस विद्वान की है?
(अ) सर्वपल्ली राधाकृष्णन (ब) शिवानंद सरस्वती
(स) पतंजलि (द) रूसो।
उत्तर– (अ) सर्वपल्ली राधाकृष्णन।

(15) भक्ति योग में किन बातों पर बल दिया जाता है?
(अ) श्रद्धा पर (ब) समर्पण पर
(स) आस्था पर (द) सभी पर।
उत्तर– (द) सभी पर।

(16) सांख्य योग का शाब्दिक अर्थ है–

(अ) ज्ञान (ब) अर्थ
(स) काम (द) मोक्ष।
उत्तर– (अ) ज्ञान।

(17) सांख्य में कितने तत्वों का समावेश है?
(अ) 20 (ब) 25
(स) 30 (द) 21
उत्तर– (ब) 25

(18) यम योग साधना का कौन–सा सौपान है?
(अ) चतुर्थ (ब) द्वितीय
(स) प्रथम (द) तृतीय।
उत्तर– (स) प्रथम।

(19) यम का अर्थ किन के संगम से लगाया है?
(अ) मन के (ब) वचन के
(स) कर्म के (द) उपर्युक्त सभी के।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी के।

(20) पुरुष और पुरुष विशेष के बीच का माध्यम क्या है?
(अ) प्रकृति (ब) आत्मा
(स) शरीर (द) सुन्दरता।
उत्तर– (अ) प्रकृति।

(21) संत व योगी मोक्ष प्राप्ति हेतु कौन–कौन से साधक बताते हैं?
(अ) ध्यान (ब) तप
(स) साधना (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(22) 'जिन साधनों को अपनाकर आत्मा की सिद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है उसे लोग ..... कहते हैं।' यह परिभाषा किस धर्म में दी गई है?
(अ) जैन धर्म (ब) बौद्ध धर्म
(स) ईसाई धर्म (द) सिख धर्म।
उत्तर– (अ) जैन धर्म।

(23) मुख्य उपनिषदों की संख्या कितनी होती है?
(अ) 12 (ब) 13
(स) 15 (द) 15
उत्तर– (ब) 13

(24) मन को एकाग्रता के साथ एक विषय पर लगाना क्या कहलाता है?
(अ) ध्यान (ब) अवधान
(स) प्रत्याहार (द) आसन।
उत्तर– (अ) ध्यान।

(25) प्रकृति किस प्रकार के गुणों से परिपूर्ण है?
(अ) व्यक्त (ब) अव्यक्त
(स) उपर्युक्त दोनों (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) उपर्युक्त दोनों।

(26) योग के कौन से आधार महत्वपूर्ण माने जाते हैं?
(अ) सामाजिक (ब) नैतिक
(स) उपर्युक्त दोनों (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) उपर्युक्त दोनों।

(27) अष्टांग योग का प्रथम अंग कौन–सा है?
(अ) यम (ब) नियम
(स) आसन (द) ध्यान।
उत्तर– (अ) यम।

(28) यम द्वारा योगी के मन के कौन–कौन से भाव हैं?
(अ) शुभ भाव (ब) आन्तरिक भाव
(स) उपर्युक्त दोनों (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) उपर्युक्त दोनों।

(29) पाणिनी के अनुसार योग शब्द की उत्पत्ति हुई है–
(अ) यूजिर योगे (ब) यूज् समाधो
(स) युज संयमने (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(30) योग शब्द की उत्पत्ति किस धातु से हुई है?
(अ) संयोग (ब) समाधि
(स) युंज (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) युंज।

(31) योग का आदिवक्ता किसे माना जाता है?
(अ) भगवान शिव (ब) विष्णु
(स) हिरण्यागर्भ (द) पतंजलि।
उत्तर– (स) हिरण्यागर्भ।

(32) योग के प्रारंभ करने का जिक्र किस ग्रंथ में किया गया है?
(अ) हेरण्य संहिता (ब) योगसूत्र
(स) श्रीरामभागवत गीता (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) श्रीरामभागवत गीता।

(33) सृष्टि के प्रारंभ में भगवान ने योग का उपदेश किसे दिया?
(अ) मनु को (ब) अर्जुन को
(स) महर्षि पतंजलि को (द) सूर्य को।
उत्तर– (द) सूर्य को।

(34) योग सूत्र की रचना किसने की?
(अ) महर्षि पतंजलि (ब) वेदव्यास
(स) स्वात्माराम (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) महर्षि पतंजलि।

(35) आयुर्वेद के अनुसार निम्न में से कौन–सा स्वास्थ्य का लक्षण है?
(अ) पित्त, वात, कफ रूपी त्रिदोषों में समानता
(ब) अग्नियों में समानता
(स) धातु की साम्यावस्था तथा शरीर से मल एवं मन इंद्रियों और आत्मा की प्रसन्नता।
(द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) धातु की साम्यावस्था तथा शरीर से मल एवं मन इंद्रियों और आत्मा की प्रसन्नता।

(36) मनोमय कोश में क्लेशों के जमाव के कारण सूक्ष्म स्वरूप जन्म लेता है, जिसे ..... कहा जाता है–
(अ) आधि (ब) व्याधि
(स) उपद्रव (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) आधि।

(37) निम्न में से कौन–सी सामाजिक स्वास्थ्य की विशेषता है?
(अ) अपनी भूमिकाओं का सही निष्पादन (ब) परिस्थितियों से उचित समायोजन
(स) उत्तरदायित्व की पूर्ति (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(38) आधि की उत्पत्ति होती है–
(अ) प्राणिक स्तर पर (ब) शारीरिक स्तर पर
(स) मानसिक स्तर पर (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) मानसिक स्तर पर।

(39) आधि का अन्नमयकोश या स्थूल शारीरिक बीमारी के रूप में प्रकट होने को कहा जाता है–
(अ) व्याधि (ब) समाधि
(स) समाधान (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) व्याधि।

(40) 'योग जीवन आत्मा का मिलन है।' यह परिभाषा दी गई है–
(अ) वेदान्त में (ब) उपनिषद में
(स) न्याय में (द) मोक्ष कर्म में।
उत्तर– (अ) वेदान्त में।

(41) यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं है–
(अ) वैज्ञानिक विधि का अनुसरण (ब) विज्ञान सम्मत नजरिया

(स) बौद्धिक ईमानदारी (द) अंधविश्वास व संकीर्ण विचारधारा।
उत्तर– (द) अंधविश्वास व संकीर्ण विचारधारा।

(42) राष्ट्रीयता का कौनसा अर्थ गलत है?
(अ) देशभक्ति एवं देशप्रेम (ब) राष्ट्र के प्रति लगाव की भावना
(स) एकता की भावना (द) अन्य राष्ट्रों के प्रति दुर्भावना।
उत्तर– (द) अन्य राष्ट्रों के प्रति दुर्भावना।

(43) स्वाधीनता का अर्थ यह नहीं है–
(अ) सब कुछ कर सकने की आजादी
(ब) अपने देश में अपनी सरकार होना
(स) विहित कर्तव्यों व अधिकारों का पालन करना
(द) विदेशी नियंत्रण का न होना
उत्तर– (अ) सब कुछ कर सकने की आजादी।

(44) वसुधैव कुटुम्बकम्' का अर्थ है– 'पूरी पृथ्वी एक कुटुम्ब है।' यह वाक्य कहाँ से लिया गया है?
(अ) महाउपनिषद् से (ब) वेदों से
(स) भारतीय संविधान से (द) पुराणों से।
उत्तर– (अ) महाउपनिषद् से।

(45) सूक्ष्म व्यायाम से कौनसा लाभ नहीं होता?
(अ) रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है
(ब) शरीर स्वस्थ व सुडौल बनता है
(स) दुर्बल व रोगी व्यक्ति स्वस्थ बनता है
(द) पाचन शक्ति अच्छी होती है।
उत्तर– (द) पाचन शक्ति अच्छी होती है।

(46) पतंजलि के अष्टांग योग में कौनसा अंग शामिल नहीं है?
(अ) नियम (ब) यम
(स) समाधि (द) संयम।
उत्तर– (द) संयम।

(47) श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार योग शब्द का क्या अर्थ है?
(अ) कर्मसु कौशलम् (ब) समाधि
(स) सौहाद्र का भाव (द) जीव–परमात्मा योग।
उत्तर– (अ) कर्मसु कौशलम।

(48) योग की भ्रामक धारणा कौनसी है?
(अ) योग अस्वस्थ व्यक्ति के लिए है (ब) योग हिन्दू धर्म से ही सम्बन्धित है
(स) योग वृद्धों के लिए है (द) उपरोक्त सभी।
उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(49) योग के किस रूप में ईश्वर की अनिवार्यता होती है?

(अ) कर्म योग (ब) भक्ति योग
(स) राज योग (द) ज्ञान योग।

उत्तर– (अ) कर्म योग।

(50) योग का उद्देश्य है–
(अ) दुःखों का उन्मूलन (ब) शारीरिक विकास करना
(स) मानसिक विकास करना (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(51) अष्टांग योग में आठवाँ तथा अन्तिम अंग है–
(अ) धारणा (ब) प्रत्याहार
(स) समाधि (द) ध्यान।

उत्तर– (स) समाधि।

(52) वेदों की रचना कौनसी नदी के तट पर हुई थी?
(अ) नर्मदा (ब) गंगा
(स) यमुना (द) सरस्वती।

उत्तर– (द) सरस्वती।

(53) निम्नलिखित में से कौनसा अष्टांग योग नहीं है?
(अ) प्राणायाम (ब) धौति
(स) यम (द) नियम।

उत्तर– (ब) धौति।

(54) योग का अन्तिम लक्ष्य क्या है?
(अ) स्वास्थ्य प्राप्ति (ब) धन प्राप्ति
(स) मोक्ष की प्राप्ति (द) धार्मिक शिक्षा प्राप्ति।

उत्तर– (स) मोक्ष की प्राप्ति।

(55) ऋग्वेद के अनुसार योग क्या है?
(अ) जुड़ना (ब) स्वाध्याय
(स) मोक्ष मार्ग (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (स) मोक्ष मार्ग।

(56) महर्षि पतंजलि ने कौनसे ग्रंथ की रचना की?
(अ) योगदर्शन (ब) श्रीमद्भगवद्गीता
(स) उपनिषद् (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (अ) योगदर्शन।

(57) वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत निम्न में से कौनसा गुण नहीं आता?
(अ) अंध विश्वास (ब) सत्य के प्रति निष्ठा
(स) बौद्धिक ईमानदारी (द) उदार मनोवृत्ति।

उत्तर– (अ) अंध विश्वास।

(58) वैदिक मंत्रों में किस मंत्र को सर्वाधिक प्रभावशाली माना गया है?

(अ) सर्वेषाम मंत्र (ब) दुर्गा मंत्र
(स) सिद्धलक्ष्मी मंत्र (द) गायत्री मंत्र।

उत्तर– (द) गायत्री मंत्र।

(59) सबसे छोटा और सरल कौनसा मंत्र है?
(अ) दुर्गा मंत्र (ब) गणेश मंत्र
(स) गायत्री मंत्र (द) ओम मंत्र।

उत्तर– (द) ओम मंत्र।

(60) प्रमुख वैदिक ऋषियों में किसका नाम नहीं आता?
(अ) याज्ञवल्क्य का (ब) महर्षि वेदव्यास का
(स) ऋषि भारद्वाज का (द) बाबा रामदेव का।

उत्तर– (द) बाबा रामदेव का।

(61) ईश्वर के अवतारों में किसकी गणना नहीं होती?
(अ) भगवान श्रीकृष्ण (ब) भगवान राम
(स) भक्त हनुमान (द) साईंबाबा।

उत्तर– (द) साईंबाबा।

(62) प्राणायाम के तीन भेदों में कौनसा शामिल नहीं है?
(अ) रेचक (ब) पूरक
(स) अनुलोम-विलोम (द) कुंभक।

उत्तर– (स) अनुलोम-विलोम।

(63) मातृभाषा का कौनसा अर्थ गलत है?
(अ) माँ से ग्रहण की हुई भाषा
(ब) मातृभूमि की भाषा (स) हिन्दी भाषा
(द) व्यक्ति के संस्कारों से सम्बन्धित भाषा।

उत्तर– (स) हिन्दी भाषा।

(64) प्राणायाम में यह शामिल नहीं है–
(अ) भस्त्रिका प्राणायाम (ब) सूर्यभेदन प्राणायाम
(स) शीतली प्राणायाम (द) शीर्षासन।

उत्तर– (द) शीर्षासन।

(65) स्वस्थ व्यक्ति मानसिक रूप से रहता है–
(अ) समाज के बाहर (ब) वास्तविकताओं में
(स) अन्तर्मुखी (द) कल्पनालोक में।

उत्तर– (ब) वास्तविकताओं में।

(66) रक्तहीनता रोग वाले व्यक्ति को क्या खाने/पीने की सलाह दी जाएगी?
(अ) अनार का रस तथा दूध से बने पदार्थ
(ब) चुकंदर का रस तथा पालक
(स) खीरा तथा टमाटर का सूप (द) नींबू पानी तथा जेली।

उत्तर– (ब) चुकंदर का रस तथा पालक।

(67) कौन–सा रोग हीमोग्लोबिन की कमी से होता है?
(अ) रक्ताल्पता (ब) मलेरिया
(स) वायरल (द) खाँसी।

उत्तर– (अ) रक्ताल्पता।

(68) हमारे भोजन में किसकी मात्रा सबसे अधिक होनी चाहिए?
(अ) दूध, मांस (ब) फल एवं सब्जियाँ
(स) अनाज एवं उनके उत्पाद (द) दाल।

उत्तर– (स) अनाज एवं उनके उत्पाद।

(69) हमारे जीवन में किसकी मात्रा सबसे कम होनी चाहिए?
(अ) दाल (ब) दूध एवं मांस
(स) फल एवं सब्जियाँ (द) वसा।

उत्तर– (द) वसा।

(70) अधिक शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति के भोजन में किस पोषक तत्व की मात्रा अधिक होनी चाहिए?
(अ) कार्बोहाइड्रेट (ब) वसा
(स) विटामिन (द) प्रोटीन।

उत्तर– (अ) कार्बोहाइड्रेट।

(71) बच्चों की शारीरिक वृद्धि के लिए किस पोषक तत्व की आवश्यकता होती है?
(अ) वसा (ब) विटामिन
(स) प्रोटीन (द) कार्बोहाइड्रेट।

उत्तर– (स) प्रोटीन।

(72) फाइबरयुक्त आहार ..... सहायक होता है।
(अ) श्वसन में (ब) पाचन में
(स) रोगों से प्रतिरक्षा में (द) रक्त निर्माण में।

उत्तर– (ब) पाचन में।

(73) अति भोजन से होने वाला रोग नहीं है–
(अ) उच्च रक्त चाप (ब) मोटापा
(स) स्कर्वी (द) हृदय रोग।

उत्तर– (स) स्कर्वी।

(74) श्रीमद्भगवद् गीता में भक्ति का मार्ग बताया गया है–
(अ) भक्ति को (ब) ज्ञान को
(स) कर्म को (द) उपर्युक्त सभी को।

उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी को।

(75) 'योग जीवन आत्मा का मिलन है।' यह किसमें कहा गया है?
(अ) उपनिषद् में (ब) वेदान्त में

(स) मोक्ष कर्म में (द) न्याय दर्शन में।

उत्तर– (ब) वेदान्त में।

(76) योग द्वारा किन शक्तियों का विकास होता है?
(अ) मानसिक (ब) शारीरिक
(स) गुप्त (द) उपर्युक्त सभी।

उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(77) मोक्ष प्राप्ति हेतु संत व योगी कौन–कौन सी क्रियाएँ करते हैं?
(अ) तप (ब) ध्यान
(स) साधना (द) उपर्युक्त सभी।

उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(78) मन को एकाग्रता के साथ एक विषय पर लगाना क्या कहलाता है?
(अ) अवधान (ब) ध्यान
(स) आसन (द) प्रत्याहार।

उत्तर– (ब) ध्यान।

(79) योग का आदिवक्ता किसे माना जाता है?
(अ) भगवान विष्णु को (ब) भगवान शिव को
(स) महर्षि पतंजलि को (द) हिरण्यागर्भ को।

उत्तर– (द) हिरण्यागर्भ को।

(80) सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान ने योग का उपदेश किसे दिया?
(अ) अर्जुन को (ब) मनु को
(स) सूर्य को (द) महर्षि पतंजलि को।

उत्तर– (स) सूर्य को।

(81) शरीर को मजबूत व सुडौल बनाने तथा लम्बाई बढ़ाने के लिए कौन–सा आसन श्रेष्ठ माना जाता है?
(अ) ताड़ासन (ब) पश्चिमोत्तानासन
(स) नौकासन (द) पद्मासन।

उत्तर– (अ) ताड़ासन।

(82) चिन्ता व अवसाद से बचाव के लिए कौन–सा आसन उपयोगी होता है?
(अ) सुखासन (ब) अर्धमत्स्येंद्रासन
(स) नौकासन (द) ताड़ासन।

उत्तर– (अ) सुखासन।

(83) ईश्वर प्राणिधान का अर्थ है–
(अ) ईश्वर के सामने समर्पण करना (ब) ध्यान करना
(स) भयभीत होना (द) स्वार्थपरक होना।

उत्तर– (अ) ईश्वर के सामने समर्पण करना।

(84) ईश्वर प्राणिधान के माध्यम से हम क्या प्राप्त कर सकते हैं?

(अ) मोक्ष और मुक्ति (ब) शक्ति और समृद्धि
(स) शान्ति और आनन्द (द) स्वास्थ्य और धन।

उत्तर– (स) शान्ति और आनन्द।

(85) ईश्वर प्राणिधान के द्वारा हम किसे समझते/जानते हैं?
(अ) परिवार को (ब) स्वयं को
(स) समाज को (द) परमात्मा को।

उत्तर– (द) परमात्मा को।

(86) ईश्वर प्राणिधान का मुख्य उद्देश्य क्या है?
(अ) धन और यश कमाना (ब) संतुष्टि और सुखी जीवन जीना
(स) ईश्वर के साथ एकता और समरसता
(द) समृद्धि और सफलता।

उत्तर– (ब) संतुष्टि और सुखी जीवन जीना।

(87) स्वाध्याय का क्या अर्थ है?
(अ) स्वयं को शिक्षित और ज्ञानार्जन करना
(ब) अपनी इच्छाओं को पूरा करना
(स) परिवार के सभी सदस्यों को समर्थन देना
(द) रोगियों की देखभाल करना।

उत्तर– (अ) स्वयं को शिक्षित और ज्ञानार्जन करना।

(88) स्वाध्याय के माध्यम से हम क्या अर्जित कर सकते हैं?
(अ) शारीरिक शक्ति (ब) भगवान का आशीर्वाद
(स) रोजगार (द) ज्ञान और समृद्धि।

उत्तर– (द) ज्ञान और समृद्धि।

(89) स्वाध्याय के द्वारा हम किसे समझते हैं?
(अ) अपने परिवारजनों को (ब) अपने जीवनसाथी को
(स) अपनी आत्मा को (द) अपने मित्रों को।

उत्तर– (स) अपनी आत्मा को।

(90) 'संतोष' का क्या अर्थ है?
(अ) विश्वास रखना (ब) सफलता का पाना
(स) धैर्य रखना (द) तृप्ति अनुभव करना।

उत्तर– (द) तृप्ति अनुभव करना।

(91) 'धैर्य' का क्या अर्थ है?
(अ) सच्चाई और ईमानदारी (ब) सहनशक्ति और सख्ती
(स) सहजता और शान्ति (द) परिश्रम और समर्पण।

उत्तर– (स) सहजता और शान्ति।

(92) निम्न में कौन से शब्द सामाजिक बन्धुत्व की भावना को दर्शाते हैं?
(अ) समरसता और आत्मीयता (ब) संघर्ष और अलगाव

(स) भेदभाव और नफरत (द) असमानता और अलगाव।

उत्तर– (अ) समरसता और आत्मीयता।

(93) 'समरसता' शब्द का क्या अर्थ है?
(अ) आत्मकेन्द्रित होना
(ब) दूसरों की भावनाओं को नजरअंदाज करना
(स) दूसरों को उनके कार्यों के आधार पर आंकना
(द) सबको अपने समान समझना।

उत्तर– (द) सबको अपने समान समझना।

(94) 'अनुशासन' का अर्थ क्या है?
(अ) अपने विचारों को प्रकट करना (ब) स्वतंत्रता का समर्थन करना
(स) दूसरों को समझना और समर्थन करना
(द) नियमों का कड़ाई से पालन करना।

उत्तर– (द) नियमों का कड़ाई से पालन करना।

(95) 'सामाजिक एवं नागरिकता बोध' का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
(अ) स्वंतत्रता की भावना रखना (ब) समाज को नियंत्रण में रखना
(स) अपने माता–पिता के साथ समय बिताना
(द) समाज में सहयोग और समरसता बढ़ाना।

उत्तर– (द) समाज में सहयोग और समरसता बढ़ाना।

(96) 'सर्वपंथ समादर' का क्या आशय है?
(अ) सभी लोगों को एक धर्म मानने हेतु प्रोत्साहित करना
(ब) सभी धर्मों का समान आदर करना
(स) सभी धर्मों को मानना (द) सभी धर्मों को एकता में जोड़ना।

उत्तर– (ब) सभी धर्मों का समान आदर करना।

(97) 'राष्ट्रीयता' का क्या आशय है?
(अ) अन्य राष्ट्रों के प्रति सम्मान (ब) संगठन और सहयोग भावना
(स) अपने राष्ट्र के प्रति अभिमान (द) एक राष्ट्र की अधीनता।

उत्तर– (स) अपने राष्ट्र के प्रति अभिमान।

(98) 'सुराज' का क्या आशय है?
(अ) सम्राट या राजा के नेतृत्व में रहना (ब) संगटन को मजबूत करना
(स) स्वयं को अन्य लोगों को अधीन करना
(द) आध्यात्मिक अधिकार या ज्ञान का प्रकाश।

उत्तर– (द) आध्यात्मिक अधिकार या ज्ञान का प्रकाश।

(99) अच्छा साहित्य किसी व्यक्ति के चरित्र पर क्या प्रभाव डालता है?
(अ) नेता बनना (ब) चतुर बनना
(स) मानवीय गुणों का उत्थान (द) निडर होना।

उत्तर– (स) मानवीय गुणों का उत्थान।

(100) जीवन में महानता किससे प्राप्त होती है?
(अ) सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति से (ब) भौतिक सम्पत्ति की प्राप्ति से
(स) धन–सम्पत्ति प्राप्त करने से (द) नैतिक गुणों को अपनाने से।
उत्तर– (द) नैतिक गुणों को अपनाने से।

(101) अध्यात्म का सम्बन्ध किससे है?
(अ) शारीरिक सुख से (ब) बाहरी दुनिया से
(स) हमारे आन्तरिक जीवन से (द) समृद्धि से।
उत्तर– (स) हमारे आन्तरिक जीवन से।

(102) योग के आठ घटक हैं, जिन्हें जीवन के आठ गुना पथ के रूप में भी जाना जाता है– नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, समाधि उनमें से पाँच हैं। अन्य तीन कौन से हैं?
(अ) सविचार, संतोषा, तप (ब) अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य
(स) आनंद, अस्मिता, आचार (द) यम, धारणा, प्रत्याहार।
उत्तर– (द) यम, धारणा, प्रत्याहार।

(103) 'योग' शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?
(अ) दर्शन और ध्यान की हिन्दू प्रणाली
(ब) आन्तरिक शांति और शांति
(स) एक साथ जुड़ना (द) नियंत्रित श्वास।
उत्तर– (स) एक साथ जुड़ना।

(104) प्रारंभिक ग्रंथों में कितने क्लासिक आसन सूचीबद्ध थे?
(अ) 84 (ब) 108
(स) 33 (द) 195
उत्तर– (अ) 84

(105) सूर्य नमस्कार में कितने अलग–अलग आसन शामिल हैं?
(अ) 12 (ब) 7
(स) 10 (द) 8
उत्तर– (ब) 7

(106) इंद्रा देवी को पश्चिम में योग की शुरूआत करने का श्रेय दिया जाता है। वह किस देश की थीं?
(अ) नेपाल (ब) रूस
(स) भारत (द) यूएसए
उत्तर– (ब) रूस।

(107) भारत ठाकुर योग ने योग के किस नये क्षेत्र की नींव रखी?
(अ) अष्टांग योग (ब) हठ योग
(स) सहज योग (द) कलात्मक योग।
उत्तर– (द) कलात्मक योग।

(108) विक्रम योग किस प्रकार का योग है?

(अ) पारण योग (ब) वन योग
(स) हॉट योगा (द) हठ योग।
उत्तर– (स) हॉट योगा

(109) योग में पाँच तत्व कौन से हैं?
(अ) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश
(ब) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, लकड़ी
(स) पृथ्वी अन्तरिक्ष, अग्नि, वायु, आकाश
(द) पृथ्वी, अन्तरिक्ष, अग्नि, वायु, आकाश।
उत्तर– (अ) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश

(110) योग शिक्षक को अभ्यास सत्र ..... से शुरू करना चाहिए–
(अ) आसन (ब) प्राणायाम
(स) क्रियायोग (द) प्रार्थना
उत्तर– (द) प्रार्थना

(111) हमारी चेतना की कौन सी अवस्था गहरी नींद से मेल खाती है?
(अ) सुषुप्ति (ब) तुरिया
(स) जगराता (द) स्वप्ता।
उत्तर– (अ) सुषुप्ति

(112) मुक्ति प्राप्ति की तीव्र लालसा को क्या कहते हैं?
(अ) वैराग्य (ब) मुमुक्षुत्व
(स) मोक्ष (द) विवेक।
उत्तर– (ब) मुमुक्षुत्व

(113) योग प्रणाली के अनुसार मनुष्य के पास कितने कोष होते हैं?
(अ) 3 (ब) 5
(स) 4 (द) 2
उत्तर– (ब) 5

(114) योग के दौरान सांस लेते रहना चाहिए–
(अ) गहरी (ब) सामान्य
(स) धीमी (द) तेज।
उत्तर– (ब) सामान्य

(115) कौन सा पंचभूत नहीं है?
(अ) वायु (ब) पानी
(स) धरती (द) सूरज की रोशनी।
उत्तर– (द) सूरज की रोशनी।

(116) उस आसन का नाम बताएँ जिसमें कमर और भुजाएँ कोबरा की तरह दिखती हैं?
(अ) अर्धचक्रासन (ब) भुजंगासन
(स) वक्रासन (द) इनमें से कोई भी नहीं।

उत्तर– (ब) भुजंगासन।

(117) कौन सी मुद्रा मलाशय के सभी रोगों को नष्ट करती हैं और अकाल मृत्यु को रोकती है?

(अ) ब्राह्मी मुद्रा (ब) अश्विनी मुद्रा
(स) आकाशचारी मुद्रा (द) शांभवी मुद्रा।

उत्तर– (ब) अश्विनी मुद्रा

(118) छब्बीस आसन हैं जो विक्रम योग बनाते हैं। इनमें से कौन सा आसन उन आसनों में से एक नहीं है?

(अ) वृक्ष मुद्रा (ब) कोबरा मुद्रा
(स) ताड़ के पेड़ की मुद्रा (द) सूर्य नमस्कार मुद्रा।

उत्तर– (द) सूर्य नमस्कार मुद्रा।

(119) योग का सम्बन्ध सांख्य से नहीं है।

(अ) सत्य (ब) असत्य
(स) अनपेक्षित (द) इनमें से कोई भी नहीं।

उत्तर– (ब) असत्य

(120) सांस लेने में ..... की क्रिया शामिल है–

(अ) दौड़ना (ब) श्वास
(स) बैठक (द) सोना।

उत्तर– (ब) श्वास

(121) तीन गुणों में से क्या एक नहीं है?

(अ) राजाओं (ब) एकाग्र
(स) सत्व (द) तमस्।

उत्तर– (ब) एकाग्र

(122) 'नमस्ते' का क्या अर्थ है?

(अ) स्वागत (ब) आपका दिन शुभ हो
(स) धन्यवाद (द) आपको प्रणाम।

उत्तर– (द) आपको प्रणाम।

(123) हठ योग साधना में विफलता का निम्नलिखित में से कौन सा कारण है?

(अ) अधिक खाना (ब) पूर्ण विश्वास
(स) साहस (द) दृढ़ता।

उत्तर– (अ) अधिक खाना।

(124) हठ योग के अनुसार कुंडलिनी जाग्रत करने का एक तरीका कौनसा नहीं है?

(अ) प्राणायाम (ब) कुंभक
(स) मूल बंध (द) सामवेद।

उत्तर– (द) सामवेद।

(125) कौन सी अन्तःस्रावी ग्रंथि हमारे शरीर की मास्टर ग्रंथि है?

(अ) अग्नाशय (ब) चीटीदार
(स) पिट्यूटरी (द) अधिवृक्क।

उत्तर– (स) पिट्यूटरी।

(126) भोजन के बाद कौन सा आसन पाचन शक्ति बढ़ाता है?

(अ) अर्धमत्स्येन्द्रासन (ब) त्रिकोणासन
(स) वज्रासन (द) हस्तासन।

उत्तर– (स) वज्रासन।

(127) संतोष का क्या अर्थ है?

(अ) स्वच्छता (ब) तपस्या
(स) संतोष (द) सच।

उत्तर– (स) संतोष।

(128) हठ योग के किस अभ्यास में मुँह से हवा खींचना शामिल है?

(अ) उज्जयी (ब) ब्राह्मी
(स) भस्त्रिका (द) सीतकारी।

उत्तर– (द) सीतकारी।

(129) सूर्य नमस्कार में ..... सम्मिलित है।

(अ) ऊपर के सभी (ब) श्वास सम्बन्धी जागरूकता
(स) खरीर की स्थिति का क्रम (द) 12 मंत्र।

उत्तर– (द) 12 मंत्र।

(130) निम्नलिखित में से कौन सा गुण सात्विक भोजन के मानदंडों को पूरा करता है?

(अ) इनमें से कोई भी नहीं
(ब) शुद्ध, आवश्यक, प्राकृतिक, महत्वपूर्ण, ऊर्जा युक्त
(स) मसालेदार, गर्म, कड़वा, खट्टा और तीखा
(द) अप्राकृतिक, अधिक पका हुआ, बासी, बचा हुआ और प्रसंस्कृत भोजन।

उत्तर– (ब) शुद्ध, आवश्यक, प्राकृतिक, महत्वपूर्ण, ऊर्जा युक्त।

(131) तन्मात्र 'गंध' निम्नलिखित में से किससे मेल खाती है?

(अ) पृथ्वी (ब) आकाश
(स) जल (द) वायु।

उत्तर– (अ) पृथ्वी

(132) किस आसन की मुद्रा में शरीर का सम्पूर्ण भार हाथों एवं पैरों पर रहता है?

(अ) हलासन (ब) मयूरासन
(स) चक्रासन (द) पद्मासन।

उत्तर– (स) चक्रासन

(133) सूर्य नमस्कार से होने वाला लाभ है–

(अ) स्मृति शक्ति का विकास (ब) मांसपेशियों की सुदृढ़ता
(स) (अ) एवं (ब) दोनों (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (स) (अ) एवं (ब) दोनों

(134) मूल्य किसके द्वारा अनुमोदित होते हैं?
(अ) समाज द्वारा (ब) विदेशों द्वारा
(स) राजनेताओं द्वारा (द) अभिनेताओं द्वारा।

उत्तर– (अ) समाज द्वारा।

(135) मूल्यों का रोपण होता है–
(अ) किताबें पढ़कर (ब) अनुकरण द्वारा
(स) प्रातः भ्रमण द्वारा (द) गीत गाकर।

उत्तर– (ब) अनुकरण द्वारा।

(136) भारतीय जीवन मूल्यों में किसकी प्रधानता रही है?
(अ) निष्काम कर्म (ब) लाभयुक्त कर्म
(स) व्यावसायिक कर्म (द) धार्मिक कर्म।

उत्तर– (अ) निष्काम कर्म।

(137) 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव किस देश की सांस्कृतिक पहचान है?
(अ) अरब देश (ब) चीन
(स) अमेरिका (द) भारत।

उत्तर– (द) भारत।

(138) प्राणायाम में अन्दर ली गई श्वास को रोकने की क्रिया कहलाती है–
(अ) पूरक क्रिया (ब) कुंभक क्रिया
(स) रेचक क्रिया (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (ब) कुंभक क्रिया

(139) किस शुद्धि क्रिया में पानी द्वारा आंतों की सफाई की जाती है?
(अ) त्राटक क्रिया (ब) नौलि क्रिया
(स) नेति क्रिया (द) बस्ति क्रिया।

उत्तर– (ब) नौलि क्रिया

(140) स्वामी शिवानंद द्वारा किस योग संस्थान की स्थापना की गई है?
(अ) कैवल्यधाम (ब) दिव्य जीवन संघ
(स) योग अनुसंधान संस्थान (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (ब) दिव्य जीवन संघ

(141) भारत एक .....
(अ) मुस्लिम राष्ट्र है (ब) धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है
(स) हिन्दू राष्ट्र है (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (ब) धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है।

(142) भारत में मताधिकार की आयु है–
(अ) 16 वर्ष (ब) 18 वर्ष

(स) 21 वर्ष (द) 25 वर्ष।

उत्तर– (ब) 18 वर्ष है।

(143) हमारी संसद ने दल–बदल पर रोक लगाने हेतु कानून बनाया–
(अ) सन् 1947 में (ब) सन् 1950 में
(स) सन् 1985 में (द) सन् 1988 में।

उत्तर– (स) सन् 1985 में।

(144) जनता के प्रति उत्तरदायी शासन–व्यवस्था का नाम है–
(अ) तानाशाही (ब) राजतन्त्र
(स) लोकतन्त्र (द) कुलीन तन्त्र।

उत्तर– (स) लोकतन्त्र।

(145) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये–
(1) हमारे देश का प्रथम राष्ट्रीय लक्ष्य ..... है।
(2) लोकतन्त्रीय सरकार का उद्देश्य जन ..... होता है।
(3) लोकतन्त्र में जनता स्वयं ..... का निर्वाचन करती है।

उत्तर– (1) लोकतन्त्र, (2) कल्याण, (3) संरकार।

इकाई 3

(1) भारत में राष्ट्रीय एकता व भावनात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से निम्नांकित एक कमी सर्वाधिक बाधक है–
(अ) निर्धनता (ब) कृषि का पिछड़ापन
(स) राष्ट्रीय चरित्र (द) राजनीतिक दल।

उत्तर– (स) राष्ट्रीय चरित्र।

(2) अच्छे आदर्शों की शिक्षा में सबसे अधिक योगदान निम्नांकित में से किसका रहता है?
(अ) सुझाव का (ब) सहानुभूति का
(स) अनुकरण का (द) अन्य का।

उत्तर– (स) अनुकरण का।

(3) शिक्षा युवाजन में विश्व बन्धुत्व की भावना किस प्रकार विकसित करती है?
(अ) अन्तर्राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाकर (ब) अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना सुदृढ़ कर
(स) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बनाकर (द) उपर्युक्त में से कोई भी नहीं।

उत्तर– (ब) अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना सुदृढ़ कर।

(4) आधुनिक युग में भारत में भावनात्मक एकता का कब उदय हुआ?
(अ) स्वाधीनता प्राप्ति के बाद (ब) संविधान लागू होने के बाद
(स) भारत–पाक युद्धों के बाद (द) राष्ट्रीय आन्दोलन काल में।

उत्तर– (द) राष्ट्रीय आन्दोलन काल में।

(5) नैतिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है–
(अ) ज्ञानार्जन कराना (ब) चरित्र निर्माण

(स) आर्थिक विकास (द) शारीरिक विकास।

उत्तर– (ब) चरित्र निर्माण।

(6) भारत में नैतिक पतन के लिये सबसे अधिक कौन उत्तरदायी है?

(अ) नागरिकों की अशिक्षा (ब) जनता का चरित्रहीन होना

(स) राजनीतिक दलों में खींचतान (द) आर्थिक पिछड़ापन।

उत्तर– (ब) जनता का चरित्रहीन होना।

(7) लोकतंत्र में शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है–

(अ) सभी को शिक्षित करना। (ब) उत्पादन में वृद्धि करना।

(स) सभी को नौकरी प्राप्त करने योग्य बनाना।

(द) सभी की आध्यात्मिक उन्नति करना।

उत्तर– (अ) सभी को शिक्षित करना।

(8) आचरण की.....भाषा ही.....है।

(अ) मौन, ईश्वरीय (ब) मुखर, ईश्वरीय

(स) मौन, सार्थक (द) सार्थक, मुखर।

उत्तर– (अ) मौन, ईश्वरीय।

(9) समाधि अवस्था कौनसी है?

(अ) जब साधक की मृत्यु पर उसकी समाधि बनाते हैं

(ब) जब साधक ध्यानस्थ रहता है

(स) वह स्थिति जब आत्मा परमात्मा से मिलती है

(द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (स) वह स्थिति जब आत्मा परमात्मा से मिलती है।

(10) षट्चक्रों में कौनसा चक्र शामिल नहीं है?

(अ) अनाहत चक्र (ब) मूलाधार चक्र

(स) मणिपुर चक्र (द) सुदर्शन चक्र।

उत्तर– (द) सुदर्शन चक्र।

(11) योग के अष्टांग में से प्रथम पाँच अंग क्या माने गए हैं?

(अ) आरम्भिक (ब) प्राणायाम

(स) बाह्य साधन (द) आन्तरिक साधन।

उत्तर– (स) बाह्य साधन।

(12) योग के आठ अंगों में से अन्तिम तीन अंग क्या कहे जाते हैं?

(अ) प्राणायाम (ब) बाह्य साधन

(स) आन्तरिक साधन (द) षट्कर्म।

उत्तर– (स) आन्तरिक साधन।

(13) निम्न में से कौनसा क्षेत्र योग शिक्षा के अन्तर्गत शामिल नहीं है?

(अ) एकाग्रता एवं स्मृति का विकास (ब) व्यक्तित्व का विकास

(स) आसक्ति का विकास (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (ब) व्यक्तित्व का विकास।

(14) योगाभ्यास के माध्यम से निम्न में से कौनसे मूल्यों का विकास होता है?

(अ) आध्यात्मिक (ब) नैतिक

(स) सामाजिक (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(15) महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में क्या शामिल नहीं है?

(अ) प्राणायाम (ब) आसन

(स) प्रत्याहार (द) मोक्ष।

उत्तर– (द) मोक्ष।

(16) इनमें कौनसा भक्ति का प्रकार नहीं है?

(अ) अर्चन, वंदन (ब) ईश स्मरण, कीर्तन

(स) माला जपना (द) कथा श्रवण।

उत्तर– (स) माला जपना।

(17) प्रमुख वैदिक ऋषियों में कौन शामिल नहीं है?

(अ) याज्ञवल्क्य (ब) ऋषि सुनक

(स) ऋषि भारद्वाज (द) महर्षि वेदव्यास।

उत्तर– (ब) ऋषि सुनक।

(18) योग और अध्यात्म पर आधारित शिक्षा–प्रणाली के जनक भारतीय योगी ..... थे।

(अ) स्वामी विवेकानन्द (ब) महर्षि पतंजलि

(स) महर्षि वशिष्ठ (द) योगी भर्तृहरि

उत्तर– (स) महर्षि वशिष्ठ।

(19) स्वामी विवेकानन्द का वास्तविक नाम था–

(अ) रामेन्द्र (ब) वीरेन्द्र

(स) नरेन्द्र (द) राघवेन्द्र।

उत्तर– (स) नरेन्द्र।

(20) स्वामी विवेकानन्द किसके शिष्य थे–

(अ) स्वामी दयानन्द सरस्वती (ब) स्वामी रामकृष्ण परमहंस

(स) स्वामी नित्यानन्द (द) रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

उत्तर– (ब) स्वामी रामकृष्ण परमहंस।

(21) स्वामी विवेकानन्द के जीवन दर्शन पर सर्वाधिक प्रभाव है–

(अ) वेदान्त का (ब) विज्ञान का

(स) पाश्चात्य शिक्षा का (द) स्वामी रामकृष्ण परमहंस का।

उत्तर– (अ) वेदान्त का।

(22) स्वामी विवेकानन्द शिक्षा द्वारा मनुष्य को बनाना चाहते थे–

(अ) आत्मनिर्भर (ब) आत्मविश्वासी

(स) सशक्त

(द) आत्मविश्वासी, आत्मनिर्भर और सशक्त।

उत्तर– (द) आत्मविश्वासी, आत्मनिर्भर और सशक्त।

(23) ..... की 12 स्थितियों को एक बार पूरा करना एक आवृत्ति (चक्र) कहलाती है।

(अ) सूर्य–नमस्कार (ब) शिथिलासन

(स) शवासन (द) हास्यासन

उत्तर– (अ) सूर्य–नमस्कार

(24) मोटापा कम करने के लिए किये जाने वाले आसन हैं–

(अ) त्रिकोणासन (ब) चक्की आसन

(स) स्थिर कोणासन (द) उपरोक्त सभी

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी

(25) मधुमेह के लिए किये जाने वाले आसन–

(अ) मण्डूकासन, (ब) शशंकासन

(स) योगमुद्रासन, (द) उपरोक्त सभी

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी

(26) पूरक का अर्थ है–

(अ) श्वास को भीतर लेना (ब) श्वास को बाहर निकालना

(स) श्वास को रोकना (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर– (अ) श्वास को भीतर लेना

(27) रेचक का अर्थ है–

(अ) श्वास को भीतर लेना (ब) श्वास को बाहर निकालना

(स) श्वास को रोकना (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर– (ब) श्वास को बाहर निकालना

(28) कुम्भक का अर्थ है–

(अ) श्वास को भीतर लेना (ब) श्वास को बाहर निकालना

(स) श्वास को रोकना (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर– (स) श्वास को रोकना

(29) ..... में व्यक्ति कम से कम एक लीटर दूरी पर बैठकर जलती हुई लौ को अनवरत देखता है।

(अ) पूरक (ब) रेचक

(स) कुम्भक (द) त्राटक

उत्तर– (द) त्राटक

(30) मनोवृत्ति के विरोध का नाम ही योग है यह परिभाषा दी थी?

(अ) महर्षि पतंजलि ने (ब) अरस्तू

(स) सम्पूर्णान्द (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (अ) महर्षि पतंजलि ने।

31) प्रसिद्ध योगी पतंजलि ने योग की कितनी अवस्थाओं का वर्णन किया है?

(अ) 13 (ब) 8

(स) 5 (द) 9

उत्तर– (ब) 8

(32) योग का जन्मदाता देश है?

(अ) अमेरिका (ब) चाइना

(स) भारत (द) इंग्लैण्ड।

उत्तर– (स) भारत।

(33) भारत में योग का इतिहास कितना पुराना है?

(अ) लगभग 200 ईसा पूर्व (ब) लगभग 100 ईसा पूर्व

(स) लगभग 300 ईसा पूर्व (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (स) लगभग 300 ईसा पूर्व।

(34) प्राण के कितने प्रकार हैं?

(अ) 2 (ब) 3

(स) 5 (द) 6

उत्तर– (स) 5

(35) श्वास पर नियंत्रण रखने की प्रक्रिया को क्या कहते हैं?

(अ) ध्यान (ब) श्वास

(स) आसन (द) प्राणायाम।

उत्तर– (द) प्राणायाम।

(36) शरीर में ठीक ढंग से रक्त प्रवाह कौन सी प्रणाली से होता है?

(अ) ध्यान (ब) श्वास

(स) प्राणार्याम (द) आसन।

उत्तर– (स) प्राणायाम।

(37) योग आत्मा कहा जाता है?

(अ) प्राणायाम को (ब) भस्त्रिका प्राणायम को

(स) सूर्यभेदी प्राणायाम (द) इनमें से सभी।

उत्तर– (अ) प्राणायाम को।

(38) प्राणायाम के भाग या चरण है?

(अ) पूरक, कुंभक, रेचक (ब) शलभासन, शीर्षासन, शंसाकासन

(स) धौती, ध्यान, धारणा (द) नेति, धौती, उज्जैयी।

उत्तर– (अ) पूरक, कुंभक, रेचक।

(39) श्वास को अंदर खींचने के कुछ समय पश्चात सांस को अंदर ही रोकने की क्रिया को क्या कहते हैं?

(अ) पूरक (ब) कुंभक

(स) रेचक (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (ब) कुंभक।

(40) श्वास को बाहर निकालने की क्रिया को क्या कहते हैं?
(अ) कुंभक (ब) पूरक
(स) रेचक (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) रेचक।

(41) नाभि से निचले भाग में प्राण को क्या कहते हैं?
(अ) अप्राण (ब) प्राण
(स) समाण (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) अप्राण।

(42) कौन सा प्राण पाचन क्रिया को एड्रिनल ग्रंथि के कार्य करने की शक्ति को बढ़ाता है?
(अ) प्राण (ब) समाण
(स) अप्राण (स) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (ब) समाण।

(43) गले से दिल तक क्या कहते हैं?
(अ) प्राण (ब) समाण
(स) अप्राण (स) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) प्राण।

(44) भगवत गीता के अनुसार योग की परिभाषा है–
(अ) योगः कर्मसु कौशलम् (ब) योगी युञ्जीत सततमात्मानं
(स) युक्त आसीत मत्परः (द) प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्म
उत्तर– (अ) योगः कर्मसु कौशलम्।

(45) किस प्राणायाम से मोटापा कम होता है?
(अ) सूर्यभेदी प्राणायाम से (ब) भस्त्रिका प्राणायाम से
(स) चन्द्रभेदी प्राणायाम से (द) भ्रामरी प्राणायाम से।
उत्तर– (ब) भस्त्रिका प्राणायाम से।

(46) सूर्यभेदी प्राणायाम लाभदायक है?
(अ) शरीर के सैलों को शुद्ध करना में (ब) शरीर में गर्मी बढ़ाने में
(स) अंतड़ियों के रोग दूर करने में (द) उपरोक्त सभी में।
उत्तर– (द) उपरोक्त सभी में।

(47) छोटी और बड़ी अंतड़ियों में कौन–सा प्राण होता है?
(अ) अप्राण (ब) समाण
(स) भस्त्रिका प्राणायाम (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) अप्राण।

(48) शरीर के सभी भागों में पाया जाने वाला प्राण है?
(अ) भस्त्रिका प्राणायाम (ब) अप्राण
(स) ध्यान (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) ध्यान।

(49) आँख, कान, नाक, मस्तिष्क आदि अंगों के कार्य किस प्रकार के कारण होते हैं?
(अ) उदाण (ब) प्राण
(स) प्राणायाम (द) सुदान।
उत्तर– (अ) उदाण।

(50) कौनसा प्राणायाम रक्त को शुद्ध करने में सहायक होता है?
(अ) शीतली प्राणायाम (ब) ध्यान
(स) अप्राण (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) शीतली प्राणायाम।

(51) योग समाधि है यह कथन है?
(अ) पतंजलि (ब) बाबा रामदेव
(स) महर्षि वेदव्यास (द) अरस्तु।
उत्तर– (स) महर्षि वेदव्यास।

(52) आसन का अर्थ है?
(अ) शरीर की स्थिति (ब) वायु की स्थिति
(स) प्राण की स्थिति (द) जल की स्थिति।
उत्तर– (अ) शरीर की स्थिति।

(53) मस्तिष्क की पूर्ण एकायता क्या कहलाती है?
(अ) प्राण (ब) अपाद
(स) ध्यान (द) दान।
उत्तर– (स) ध्यान।

(54) योग आध्यात्मिक कामधेनु है योग की यह परिभाषा किसने दी थी?
(अ) डॉ. सम्पूर्णानंद ने (ब) रामदेव
(स) महर्षि पतंजलि ने (द) सभी ने।
उत्तर– (अ) डॉ. सम्पूर्णानंद ने।

(55) योग से कब्ज दूर होती है इसका संबंध किस प्रणाली से है?
(अ) पाचन प्रणाली से (ब) श्वसन प्रणाली से
(स) जनन तंत्र प्रणाली से (द) रक्त संचार प्रणाली से।
उत्तर– (अ) पाचन प्रणाली से।

(56) किस आसन से बुढ़ापा दूर होता है?
(अ) धनुरासन (ब) शीर्षासन
(स) भुजगांसन (द) चक्रासन।
उत्तर– (द) चक्रासन।

(57) यम किसने प्रकार के होते हैं?
(अ) 10 (ब) 5
(स) 25 (द) 55
उत्तर– (ब) 5

(58) अष्टांग योग का प्रथम अंग है?
(अ) यम (ब) नियम
(स) प्रत्याहार (द) धारणा।
उत्तर– (अ) यम।

(59) पहला अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस विश्व के कितने देशों में मनाया था?
(अ) 120 (ब) 192
(स) 75 (द) 199
उत्तर– (ब) 192

(60) संयुक्त राष्ट्र महासभा में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का कितने देशों ने समर्थन किया था?
(अ) 175 (ब) 185
(स) 99 (द) 105
उत्तर– (अ) 175

(61) योग मस्तिष्क को शांत करने का अभ्यास है यह किसने कहा?
(अ) महर्षि पतंजलि ने (ब) अरस्तू ने
(स) डॉ. सम्पूर्णानंद ने (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) महर्षि पतंजलि ने।

(62) संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने की घोषणा कब की थी?
(अ) 14 जनवरी, 2019 को (ब) 25 अगस्त, 2001 को
(स) 11 दिसम्बर, 2014 को (द) 30 जुलाई, 1977 को।
उत्तर– (स) 11 दिसम्बर, 2014 को।

(63) परम चेतन या दिव्य मन में पूरी तरह से लीन होना कहलाती है?
(अ) समाधि (ब) ध्यान
(स) धारणा (द) प्राणायाम।
उत्तर– (अ) समाधि।

(64) किसके सतत् अभ्यास से तन एवं मन दोनों को रूपान्तरित किया जा सकता है?
(अ) शिक्षा के (ब) योग के
(स) व्यवसाय के (द) नौकरी के
उत्तर– (ब) योग के।

(65) अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस प्रतिवर्ष मनाया जाएगा?
(अ) 21 जून को (ब) 3 अगस्त को
(स) 15 फरवरी को (द) 23 दिसम्बर को।
उत्तर– (अ) 21 जून को।

(66) प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया था?
(अ) 27 फरवरी, 2008 को (ब) 21 जून, 2015 को
(स) 13 जनवरी, 1996 को (द) 5 जुलाई, 2010 को।
उत्तर– (ब) 21 जून, 2015 को।

(67) संयुक्त राष्ट्र महासभा में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का समर्थन करने वाले मुस्लिम देशों की संख्या थी?
(अ) 46 (ब) 55
(स) 106 (द) 40
उत्तर– (अ) 46

(68) निम्नलिखित में से कौन सी विधि प्राणायाम की नहीं है?
(अ) धौती (ब) पूरक
(स) रेचक (द) कुंभक।
उत्तर– (अ) धौती।

(69) उच्च रक्तचाप को सामान्य करने के लिए कौन सा प्राणायाम उपयोगी है?
(अ) कपालभाति (ब) अनुलोम विलोम
(स) उज्जैयी (द) भ्रामरी
उत्तर– (ब) अनुलोम विलोम।

(70) मधुमेह दूर भगाने के लिए कौन सा आसन सर्वोपयोगी है?
(अ) हलासन (ब) सर्वांगासन
(स) मंडूकासन (द) श्वासन।
उत्तर– (स) मंडूकासन।

(71) कौनसा प्राणायाम नहीं है?
(अ) कुंभक (ब) अहिंसा
(स) षटकर्म (द) उज्जैयी।
उत्तर– (ब) अहिंसा।

(72) निम्नलिखित में से कौन सा आसन नहीं है?
(अ) उज्जैयी (ब) शीर्षासन
(स) भुजगांसन (द) धनुरासन।
उत्तर– (अ) उज्जैयी।

(73) सामान्य–रक्तचाप को बनाए रखने में कौन सा आसन सहायक है?
(अ) शवासाना (ब) पद्मासन
(स) शीलसाना (द) शालभासाना।
उत्तर– (ब) पद्मासन।

(74) पहला कौन था, जिसने शास्त्रीय तरीके से योग का परिचय दिया?
(अ) कपिल मनु (ब) पतंजलि
(स) सम्पूर्णान्द (द) अरस्तु।
उत्तर– (ब) पतंजलि।

(75) योग सूत्र के लेखक कौन हैं?

(अ) पतंजलि (ब) वात्सायन
(स) कपिल मुनि (द) सम्पूर्णान्द।

उत्तर– (अ) पतंजलि।

(76) निम्नलिखित में से कौन सा आष्टांग योग नहीं है?
(अ) यम (ब) नियम
(स) धौती (द) प्राणायाम।

उत्तर– (स) धौती।

(77) पद्मासन, पवनमुक्तासन, भुजगासन, शलभासन किन रोगों के लिए उपयोगी है–
(अ) पेट के रोग (ब) मधुमेह
(स) हरनिया (द) दमा।

उत्तर– (अ) पेट के रोग।

(78) योग की तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है–
(1) ध्यानआसन (2) सांस्कृतिक आसन
(3) .....
(अ) प्राणायाम (ब) सुकून देने वाला आसन
(स) तीव्र–गती आसन (द) पूरक।

उत्तर– (अ) प्राणायाम।

(79) धनुरासन, मत्सेन्द्रासन, शलभासन, सूर्य नमस्कार किसमें सहायक हैं?
(अ) पेट दर्द (ब) दमा
(स) मधुमेह (द) उपयुक्त सभी में।

उत्तर– (द) उपयुक्त सभी में।

(80) प्राणायाम में कितनी गतिविधियाँ होती हैं?
(अ) 2 (ब) 3
(स) 4 (द) 5

उत्तर– (ब) 3

(81) प्राणायाम आष्टांग योग का कौन सा अंग है?
(अ) प्रथम (ब) तीसरा
(स) छठा (द) कोई भी नहीं।

उत्तर– (ब) तीसरा।

(82) योग शब्द की उत्पत्ति किस भाषा से हुई?
(अ) संस्कृत (ब) हिन्दी
(स) अंग्रेजी (द) ग्रीक।

उत्तर– (अ) संस्कृत।

(83) युज का क्या अर्थ है?
(अ) हटना (ब) मिलाना
(स) घटाना।

(द) जुड़ना, एक होना, मिलन अथवा संयोग।

उत्तर– (द) जुड़ना, एक होना, मिलन अथवा संयोग।

(84) प्राणायाम की अवस्थाएँ हैं–
(अ) सांस को अंदर खींचना (ब) सांस को बाहर निकालना
(स) सांस को रोके रखना (द) उपयुक्त सभी।

उत्तर– (द) उपयुक्त सभी।

(85) सूर्य नमस्कार की कितनी स्थितियाँ हैं?
(अ) सात (ब) नौ
(स) ग्यारह (द) बारह

उत्तर– (द) बारह

(86) बैठकर किए जाने वाला आसन नहीं है–
(अ) पद्मासन (ब) सिंहासन
(स) सर्वांगासन (द) सुखासन

उत्तर– (स) सर्वांगासन

(87) महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम को किस स्थान पर रखा है?
(अ) चौथे स्थान (ब) दूसरे स्थान
(स) तीसरे स्थान (द) पहले स्थान

उत्तर– (अ) चौथे स्थान

(88) बन्ध का अर्थ है–
(अ) बाँधना (ब) जकड़ना
(स) कसना (द) उपर्युक्त सभी

उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी

(89) स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम है–
(अ) विश्वनाथ (ब) नरेन्द्रनाथ दत्त
(स) गोरखनाथ (द) नरेन्द्रनाथ राय

उत्तर– (ब) नरेन्द्रनाथ दत्त

(90) लॉरेंस कोहलबर्ग का सिद्धान्त कौनसा है?
(अ) नैतिक विकास का सिद्धान्त (ब) सुदृढ़ीकरण सिद्धान्त
(स) अनुलग्नक सिद्धान्त (द) संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त।

उत्तर– (अ) नैतिक विकास का सिद्धान्त।

(91) कोहलबर्ग के अनुसार नैतिक विकास की कितनी अवस्थाएँ होती हैं?
(अ) 5 (ब) 5
(स) 6 (द) 7

उत्तर– (द) 6

(92) कोहलबर्ग के नैतिक विकास के विचार के कितने स्तर हैं?
(अ) 2 (ब) 3

(स) 4 (द) 5

उत्तर– (ब) 3

(93) लॉरेंस कोहलबर्ग के सिद्धान्त के अनुसार, 'किसी कार्य को इसीलिए करना, क्योंकि दूसरे इसे स्वीकृति देते हैं', नैतिक विकास के कौनसे चरण को दर्शाता है?

(अ) उत्तर–प्रथागत (ब) प्रथागत

(स) पूर्व–प्रथागत (द) अमूर्त संक्रियात्मक।

उत्तर– (ब) प्रथागत।

(94) कोहलबर्ग के नैतिक विकास के छह चरणों में पहला चरण कौनसा है?

(अ) अच्छे पारस्परिक सम्बन्ध बनाना

(ब) सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना

(स) आज्ञाकारिता और दंड

(द) सामाजिक अनुबंध और व्यक्तिगत अधिकार।

उत्तर– (स) आज्ञाकारिता और दंड।

(95) कोहलबर्ग के सिद्धान्त के अनुसार नैतिक तार्किकता किस पर निर्भर करती है?

(अ) संदर्भ पर (ब) बाह्य उद्दीपक पर

(स) प्रशिक्षण पर (द) विकास के चरण पर।

उत्तर– (द) विकास के चरण पर।

(96) किस मनोवैज्ञानिक ने नैतिक दुविधा व नैतिक तर्कना को प्रतिपादित किया है?

(अ) लॉरेंस कोहलबर्ग (ब) जीन पियाजे

(स) एरिक एरिकसन (द) वाइगोत्सकी।

उत्तर– (अ) लॉरेंस कोहलबर्ग।

(97) लॉरेंस कोहलबर्ग के अनुसार सही और गलत प्रश्न के बारे में निर्णय लेने में शामिल चिंतन प्रक्रिया को क्या कहा जाता है?

(अ) नैतिक तर्कना (ब) नैतिक पदार्थवाद

(स) दुविधा नैतिकता (द) सहयोग की नैतिकता।

उत्तर– (अ) नैतिक तर्कना।

(98) मौजूदा योजनाओं में नई जानकारी फिट करना क्या कहलाता है?

(अ) संतुलन (ब) आवास

(स) संगठन (द) आत्मसात्करण।

उत्तर– (द) आत्मसात्करण।

(99) पियाजे के सिद्धान्त के अनुसार प्री–ऑपरेशनल अवस्था की अवधि ..... होती है।

(अ) जन्म से दो वर्ष (ब) चार से आठ वर्ष

(स) पाँच से आठ वर्ष (द) दो से सात वर्ष।

उत्तर– (द) दो से सात वर्ष।

(100) 'संज्ञानात्मक विकास खोज पर आधारित है, नकल पर नहीं'? ये किसने कहा है?

(अ) कोहलबर्ग ने (ब) जीन पियागेट ने

(स) वायगोत्स्की ने (द) स्किनर ने।

उत्तर– (ब) जीन पियागेट ने।

(101) जीन पियाजे के मतानुसार बच्चों में कितने वर्ष की आयु तक संज्ञानात्मक परिपक्वता की कमी पाई जाती है?

(अ) 6 वर्ष (ब) 8 वर्ष

(स) 10 वर्ष (द) 12 वर्ष।

उत्तर– (अ) 6 वर्ष।

(102) बच्चों के विकास से सम्बन्धित सृजन एवं खोज का सिद्धान्त किसने दिया?

(अ) जीन पियागेट ने (ब) स्किनर ने

(स) कोहलबर्ग ने (द) वायगोत्स्की ने।

उत्तर– (अ) जीन पियागेट ने।

(103) वातावरण के अनुसार स्वयं को ढालने को क्या कहा जाता है?

(अ) समायोजन (ब) संतुलन

(स) सहयोगी (द) अनुकूलन।

उत्तर– (द) अनुकूलन।

(104) आत्मिक विकास क्या है?

(अ) मानवता और समझदारी का विकास

(ब) विज्ञान के विकास का अध्ययन

(स) आत्मा और दिव्यता का विकास

(द) व्यक्ति के भौतिक विकास का अध्ययन।

उत्तर– (स) आत्मा और दिव्यता का विकास।

(105) आत्मिक विकास के लिए कौन–से तंत्र उपयोगी होते हैं?

(अ) समझदारी, ताकत और प्रेरणा (ब) योग, ध्यान और प्रार्थना

(स) पर्व, त्यौहार और समारोह (द) व्यायाम, नृत्य और खेल।

उत्तर– (ब) योग, ध्यान और प्रार्थना।

(106) आत्मिक विकास का क्या लाभ है?

(अ) चिंता और तनाव कम होता है

(ब) शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार होता है

(स) अध्ययन और ध्यान में समृद्धि होती है

(द) उपर्युक्त सभी।

उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी।

(107) आत्मिक विकास हेतु सही समय कैसे निर्धारित किया जा सकता है?

(अ) व्यक्ति के उद्देश्यों और लक्ष्यों के अनुसार

(ब) व्यक्ति की प्राथमिकताओं के आधार पर

(स) व्यक्ति के परिवार के निर्धारित समय सारिणी के अनुसार

(द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (अ) व्यक्ति के उद्देश्यों और लक्ष्यों के अनुसार।

(108) भारतीय कालगणना में चन्द्रमा की गति को ..... के आधार पर मापा जाता था।
(अ) मंगल के समय (ब) सूर्य के समय
(स) बुध के समय (द) गुरु के समय।

उत्तर– (स) बुध के समय।

(109) भारतीय कालगणना में दिन को कितने पहरों में बांटा जाता था?
(अ) 4 पहरों में (ब) 5 पहरों में
(स) 6 पहरों में (द) 8 पहरों में।

उत्तर– (ब) 5 पहरों में।

(110) भारतीय कालगणना में शिलांगु को कौन से माप से मापा जाता था?
(अ) तापमान (ब) ऊँचाई
(स) समय (द) दूरी।

उत्तर– (ब) ऊँचाई।

(111) भारतीय ज्ञान परम्परा का प्रारम्भिक स्रोत ..... है।
(अ) संस्कृति (ब) वेद
(स) इतिहास (द) धर्म।

उत्तर– (ब) वेद।

(112) वेदों को ..... भागों में बांटा गया है।
(अ) 2 (ब) 4
(स) 6 (द) 8

उत्तर– (ब) 4

(112) वेदों में सबसे पुराना वेद ..... है।
(अ) अथर्ववेद (ब) सामवेद
(स) ऋग्वेद (द) यजुर्वेद।

उत्तर– (स) ऋग्वेद।

(114) उपनिषदों का भाष्य किसने किया?
(अ) रामानुजाचार्य ने (ब) शंकराचार्य ने
(स) पतंजलि ने (द) मध्वाचार्य ने।

उत्तर– (ब) शंकराचार्य ने।

(115) उपनिषदों में ..... विषय पर विचार किया गया है?
(अ) धर्म के (ब) राजनीति के
(स) तत्त्वमसी के (द) योग के।

उत्तर– (अ) धर्म के।

(116) रामायण के रचयिता कौन थे?
(अ) महर्षि व्यास (ब) वाल्मीकि
(स) शंकराचार्य (द) भगवान श्रीकृष्ण।

उत्तर– (ब) वाल्मीकि।

(117) किस पुस्तक को भारतीय ज्ञान परम्परा में सबसे पवित्र माना जाता है?
(अ) उपनिषद् (ब) महाभारत
(स) भगवद्गीता (द) वेद।

उत्तर– (स) भगवद्गीता।

(118) भारतीय ज्ञान परम्परा में किसे 'भारत के ज्ञान का समुद्र' कहा जाता है?
(अ) वेदों को (ब) उपनिषद् को
(स) भगवद्गीता को (द) महाभारत को।

उत्तर– (अ) वेदों को।

(119) भारतीय ज्ञान परम्परा में किसे 'धर्म का रहस्य' कहा जाता है?
(अ) भगवद्गीता को (ब) महाभारत को
(स) रामायण को (द) उपनिषद् को।

उत्तर– (अ) भगवद्गीता को।

(120) भारतीय ज्ञान परम्परा में 'भारत के संगीत का पिता' किसे कहा जाता है?
(अ) तुलसीदास (ब) महर्षि व्यास
(स) गायक भास (द) तानसेन।

उत्तर– (स) गायक भास।

(121) भारतीय ज्ञान परम्परा में 'विद्या का देवता/देवी' किसे माना जाता है?
(अ) वाल्मीकि (ब) महर्षि व्यास
(स) सरस्वती (द) पतंजलि।

उत्तर– (स) सरस्वती।

(122) भारतीय ज्ञान परम्परा में 'संस्कृत का पिता' किसे कहा जाता है?
(अ) संस्कृत वाग्मी (ब) संस्कृति का संरक्षक
(स) संस्कृति का पिता (द) संस्कृत विकासक।

उत्तर– (अ) संस्कृत वाग्मी।

(123) नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की जन्म तिथि ..... है।
(अ) 25 जुलाई, 1993 (ब) 23 जून, 1885
(स) 14 अप्रैल, 1891 (द) 18 मार्च, 1898

उत्तर– (स) 14 अप्रैल, 1891

(124) किस आन्दोलन के दौरान शहीद भगत सिंह को गिरफ्तार किया गया था?
(अ) असहायता आन्दोलन (ब) भारत छोड़ो आन्दोलन
(स) खिलाफत आन्दोलन (द) स्वदेशी आन्दोलन।

उत्तर– (ब) भारत छोड़ो आन्दोलन।

(125) रवीन्द्रनाथ टैगोर की जन्म तिथि ..... है।
(अ) 7 मई, 1861 (ब) 9 अप्रैल, 1869
(स) 15 जून, 1855 (द) 14 जनवरी, 1850

उत्तर– (अ) 7 मई, 1861

(126) महात्मा गाँधी को अपने आन्दोलनों के लिए और किस नाम से पुकारा जाता था?
(अ) बापू (ब) राष्ट्रपिता
(स) महात्मा (द) महात्मा गाँधी।
उत्तर– (ब) राष्ट्रपिता।

(127) स्वामी विवेकानन्द का बचपन का नाम क्या था?
(अ) राजीव दत्त (ब) नरेन्द्र दत्त
(स) मोहन दत्त (द) सुनील दत्त।
उत्तर– (ब) नरेन्द्र दत्त।

(128) सेवा से क्या आशय है?
(अ) भजन करना (ब) आत्मनिर्भरता
(स) भगवान की पूजा (द) निःस्वार्थ सहायता।
उत्तर– (द) निःस्वार्थ सहायता।

(129) सेवा करने से क्या लाभ होता है?
(अ) समृद्धि आना (ब) स्वार्थ की पूर्ति होना
(स) समाज का विकास होना (द) सुख और सम्मान प्राप्त होना।
उत्तर– (द) सुख और सम्मान प्राप्त होना।

(130) 'सहिष्णुता' से क्या आशय है?
(अ) समर्थन (ब) स्नेह
(स) सहानुभूति और क्षमा (द) सहयोग।
उत्तर– (स) सहानुभूति और क्षमा।

(131) 'परोपकार' से क्या आशय है?
(अ) समर्थन करना (ब) स्नेह करना
(स) दूसरों की भलाई के लिए सेवा करना
(द) सहानुभूति रखना।
उत्तर– (स) दूसरों की भलाई के लिए सेवा करना।

(132) हमें परोपकार क्यों करना चाहिए?
(अ) समाज में एकता लाने हेतु (ब) नम्रता के लिए
(स) सम्मान पाने हेतु
(द) अपने आस–पास के लोगों के हित में कार्य करने हेतु।
उत्तर– (द) अपने आस–पास के लोगों के हित में कार्य करने हेतु।

(133) 'समर्पण' से क्या आशय है?
(अ) समर्थन (ब) स्नेह
(स) पूर्ण समर्पण (द) सम्मान।
तर– (स) पूर्ण समर्पण।

(134) समर्पण क्यों आवश्यक है?

(अ) सम्मान हेतु (ब) नम्रता हेतु
(स) सम्पूर्णता के अनुभव हेतु (द) समर्थन हेतु
उत्तर– (स) सम्पूर्णता के अनुभव हेतु।

(135) 'समर्पण' को परिभाषित करने के लिए किन शब्दों का उपयोग किया जाता है?
(अ) प्रेम, सम्मान, सहयोग (ब) सम्मान, सद्भाव, सहायता
(स) समर्पण, सम्मान, सम्पूर्णता (द) सम्मान, सहायता, समर्थन।
उत्तर– (स) समर्पण, सम्मान, सम्पूर्णता।

(136) 'आत्मपरीक्षण' से क्या आशय है?
(अ) अपने कौशलों को समझना और अपनी गलतियों को सुधारना
(ब) दूसरों को जांचना (स) आत्मसंतुष्टि करना
(द) समर्पण करना।
उत्तर– (अ) अपने कौशलों को समझना और अपनी गलतियों को सुधारना।

(137) आत्मपरीक्षण क्यों जरूरी है?
(अ) सम्मान हेतु (ब) नम्रता हेतु
(स) स्वयं के विकास हेतु (द) समाज में एकता हेतु
उत्तर– (स) स्वयं के विकास हेतु।

(138) आत्मपरीक्षण से हमें क्या प्राप्त होता है?
(अ) समझदारी (ब) समृद्धि
(स) समर्थन (द) सम्पूर्णता।
उत्तर– (अ) समझदारी।

(139) 'स्वावलम्बन' से क्या आशय है?
(अ) अपने आस–पास के लोगों की सहायता करना
(ब) आत्मनिर्भर होने के लिए
(स) अपनी ऊर्जा को अपने लाभ के लिए उपयोग करना
(द) दूसरों की सहायता करना।
उत्तर– (ब) आत्मनिर्भर होने के लिए।

(140) स्वावलम्बन के लिए जरूरी क्या है?
(अ) धैर्य (ब) समय
(स) सामर्थ्य (द) समर्थन।
उत्तर– (स) सामर्थ्य।

(141) स्वावलम्बी मनुष्य में कौनसा गुण नहीं होता?
(अ) धैर्यवान होना (ब) दृढ़ संकल्पी होना
(स) स्वाभिमानी होना (द) संशयवान होना।
उत्तर– (द) संशयवान होना।

(142) पसंद और समग्रता की स्थिति क्या है जो मन की सर्वव्यापी स्थिति व आन्तरिक सद्भाव पैदा करता है?

(अ) समृद्धि (ब) खुशी
(स) सहजता (द) स्व का आयोजन।

उत्तर– (ब) खुशी।

(143) प्रत्येक मनुष्य की मूल इच्छाएँ क्या हैं जिनके लिए वह कार्य कर रहा है?
(अ) भौतिक सुविधाएँ (ब) अहसास और समझ
(स) सुख और समृद्धि (द) सुख–समृद्धि निरन्तर बनी रहे।

उत्तर– (द) सुख–समृद्धि निरन्तर बनी रहे।

(144) जब हम बड़े क्रम में भाग लेते हैं तो विभिन्न स्तरों पर यह भागीदारी हमारा मूल्य कहलाती है, इन मूल्यों का परिणाम है–
(अ) समृद्धि (ब) खुशी
(स) अहसास और समझ (द) आत्म अन्वेषण।

उत्तर– (स) अहसास और समझ।

(145) उस समाधान की पहचान करें जो मनुष्य को पशु चेतना से बदलने में मदद करता है–
(अ) सही समझ (ब) अहसास
(स) मूल्य शिक्षा (द) भौतिक सुविधाएँ।

उत्तर– (अ) सही समझ।

(146) आत्म अन्वेषण दो तंत्रों का उपयोग करता है–
(अ) प्राकृतिक स्वीकृति और अनुभवात्मक सत्यापन
(ब) सही समझ और आत्म अन्वेषण
(स) स्व जांच और आत्म अन्वेषण आयन
(द) स्वाभाविक स्वीकृति और आत्म जांच।

उत्तर– (अ) प्राकृतिक स्वीकृति और अनुभवात्मक सत्यापन।

(147) समृद्धि का अर्थ है–
(अ) खुशी (ब) सम्पत्ति
(स) समृद्धि (द) स्वास्थ्य।

उत्तर– (ब) सम्पत्ति।

(148) जीवन का तीसरा स्तर क्या है?
(अ) समाज (ब) व्यक्ति
(स) परिवार (द) प्रकृति।

उत्तर– (अ) समाज।

(149) विकसित देश इसका जीवंत उदाहरण है–
(अ) समृद्धि का (ब) सम्पत्ति का
(स) खुशी का (द) स्वास्थ्य का।

उत्तर– (अ) समृद्धि का।

(150) इनमें मनुष्य की भागीदारी देखी जाती है वे दो रूप हैं–

(अ) समृद्धि और कार्य (ब) मूल्य और समझ
(स) व्यवहार और धन (द) व्यवहार एवं कार्य।

उत्तर– (द) व्यवहार एवं कार्य।

(151) अहसास और समझ के परिणाम क्या हैं?
(अ) काम (ब) मान
(स) खुशी (द) स्वास्थ्य।

उत्तर– (ब) मान।

(152) हम अपने स्वत्व की खोज करके और उसके अनुसार जीवन व्यतीत करके ..... बन जाते हैं।
(अ) स्वतंत्र (ब) पराधीन
(स) धनवान (द) खुश।

उत्तर– (अ) स्वतंत्र।

(153) विकसित राष्ट्र स्वास्थ्य, धन और बुद्धि का जीवंत उदाहरण हैं। इन तीन शर्तों को मिलाकर एक शब्द रूप में कहा जा सकता है–
(अ) विकसित (ब) समृद्ध
(स) सद्भाव (द) खुश।

उत्तर– (ब) समृद्ध।

(154) आत्म–अन्वेषण की सामग्री है–
(अ) इच्छा और जरूरतें (ब) कार्यक्रम और जरूरतें
(स) कार्यक्रम और व्यावहारिक (द) इच्छा और कार्यक्रम।

उत्तर– (द) इच्छा और कार्यक्रम।

(155) बोध और समझ में तीन परिणाम प्राप्त होते हैं। उनमें से दो आश्वासन हैं और संतुष्टि तीसरा ढूंढ लेती है–
(अ) सार्वभौमिकता (ब) स्वीकृति
(स) सर्वव्यापी (द) स्व–सत्यापन।

उत्तर– (अ) सार्वभौमिकता।

(156) भौतिक सुविधा की जिस व्यक्ति में कमी होती है तात्पर्य है–
(अ) समाधान विहीन दुःखी दरिद्र (ब) साधन विहीन दुःखी दरिद्र
(स) साधन विहीन दुःखी दरिद्र (द) साधन विमुख दुःखी दरिद्र।

उत्तर– (स) साधन विहीन दुःखी दरिद्र।

(157) जीवन जीने का प्रथम स्तर क्या है?
(अ) व्यक्ति (ब) परिवार
(स) समाज (द) प्रकृति।

उत्तर– (अ) व्यक्ति।

(158) जीवन का दूसरा स्तर क्या है?
(अ) समाज (ब) व्यक्ति

(स) परिवार (द) प्रकृति।

उत्तर– (स) परिवार।

(159) जीवन का चौथा स्तर क्या है?

(अ) समाज (ब) व्यक्ति

(स) परिवार (द) प्रकृति।

उत्तर– (द) प्रकृति।

(160) भौतिक सुविधाओं को महत्व देना, ऐन्द्रिक सुखों को अधिकतम करना और धन संचय को कहते हैं–

(अ) पशु चेतना (ब) पशु बेहोशी

(स) अर्ध–चेतना (द) मानव चेतना।

उत्तर– (अ) पशु चेतना।

(161) जो मनुष्य को पशु चेतना से मनुष्य में बदलने में मदद करता है–

(अ) सही व्यवहार (ब) समृद्धि

(स) सम्पत्ति (द) सही समझ।

उत्तर– (द) सही समझ।

(162) स्वास्थ्य, धन और बुद्धि का को कौनसे एक शब्द से व्यक्त किया जा सकता है?

(अ) चेतना (ब) बुद्धिमत्ता

(स) समृद्धि (द) खुशी।

उत्तर– (स) समृद्धि।

(163) खुश रहने की भावनात्मक स्थिति क्या है?

(अ) खुशी (ब) आनंद

(स) आनंद (द) ये सभी।

उत्तर– (द) ये सभी।

(164) ..... द्वारा हम अपनी कमजोरियों को जानकर उन्हें दूर कर सकते हैं–

(अ) कक्षा कक्ष अध्ययन (ब) स्वयं अध्ययन

(स) समूह अध्ययन (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (ब) स्वयं अध्ययन।

(165) चेतन इकाइयों में ..... परिवर्तन होते हैं–

(अ) गुणात्मक (ब) मात्रात्मक

(स) दोनों (द) कोई नहीं।

उत्तर– (अ) गुणात्मक।

(166) सामग्री मूल्य शिक्षा से अपेक्षा की जाती है कि इसमें मनुष्य के ..... आयाम और स्तर शामिल हों–

(अ) दो (ब) सभी

(स) तीन (द) चार।

उत्तर– (ब) सभी।

(167) यदि हम अधिकार के आधार पर दूसरे इंसानों से रिश्ता कायम रखेंगे तब प्राप्त होगी–

(अ) पारस्परिक समृद्धि (ब) आपसी खुशी

(स) खुशी (द) समृद्धि।

उत्तर– (ब) आपसी खुशी।

(168) आत्म अन्वेषण हमारी सहजता को पहचानने और स्वयं की ओर बढ़ने की एक प्रक्रिया है संगठन और आत्म अभिव्यक्ति। ये आत्म अभिव्यक्ति क्या है?

(अ) स्वत्व (ब) स्वतंत्रता

(स) स्वराज्य (द) स्वभाव।

उत्तर– (स) स्वराज्य।

(169) मूल्य शिक्षा वह शिक्षा है जिसके द्वारा हम कर सकते हैं–

(अ) नई तकनीक सीखें (ब) नया शोध करें

(स) पशु चेतन से मानव चेतन में परिवर्तन

(द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (स) पशु चेतन से मानव चेतन में परिवर्तन।

(170) हमें आत्म अन्वेषण से गुजरना होगा क्योंकि–

(अ) हम यह जानना चाहते हैं कि हमारे लिए क्या मूल्यवान है

(ब) हम अपने रिश्ते को समझना चाहते हैं

(स) हमारे आस–पास की चीजों में हम अपनी भागीदारी चाहते हैं

(द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(171) आत्म अन्वेषण क्या है?

(अ) "आप क्या हैं" और "आप वास्तव में क्या बनना चाहते हैं" के बीच संवाद की एक प्रक्रिया

(ब) स्व–जांच के माध्यम से स्व–मूल्यांकन की एक प्रक्रिया

(स) स्वयं के अस्तित्व को जानने और उसके माध्यम से सम्पूर्ण ईकाई को जानने की एक प्रक्रिया।

(द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(172) स्वाभाविक स्वीकृति ..... स्वीकार करने का तरीका है–

(अ) अच्छी चीजें स्वाभाविक रूप से (ब) बुरी चीजें स्वाभाविक रूप से

(स) स्वाभाविक रूप से कुछ भी (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (अ) अच्छी चीजें स्वाभाविक रूप से।

(173) आत्म अन्वेषण की प्रक्रिया ..... की ओर ले जाती है–

(अ) अहसास और समझ (ब) समृद्धि

(स) धनवान (द) शांति।

उत्तर– (अ) अहसास और समझ।

(174) खुशी को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–
(अ) सामंजस्य में रहना
(ब) अगर इसमें तालमेल है तो मैं उस स्थिति में रहना पसंद करता हूँ
(स) यदि इसमें सामंजस्य है तो मुझे अच्छा लगता है उस अवस्था/परिस्थिति में हो
(द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(175) केवल भौतिक सुविधाओं के लिए कार्य करना ..... है–
(अ) पशु चेतना के साथ रहना
(ब) मानवीय चेतना के साथ रहना
(स) पशु चेतना से मानव चेतना में परिवर्तन
(द) मनुष्य चेतना से पशु चेतना में परिवर्तन।

उत्तर– (अ) पशु चेतना के साथ रहना।

(176) सम्यक् जीवन या संस्कार का तात्पर्य ..... सद्भाव से रहने की क्षमता से है–
(अ) व्यक्तिगत (ब) परिवार और समाज
(स) प्राकृतिक (द) सभी चार स्तरों पर।

उत्तर– (द) सभी चार स्तरों पर।

(177) शरीर तंत्र किस प्रकार कार्य करता है?
(अ) स्वयं संगठित (ब) असंगठित
(स) खराब ढंग से व्यवस्थित (द) आत्म केन्द्रित।

उत्तर– (अ) स्वयं संगठित।

(178) स्वयं का स्वरूप क्या है?
(अ) सचेत (ब) भौतिक रासायनिक
(स) बायोकेमिकल (द) अर्धमूर्च्छित।

उत्तर– (अ) सचेत।

(179) स्वयं की मूल क्षमता कहलाती है–
(अ) जागरूकता (ब) काम
(स) विचार (द) शक्ति।

उत्तर– (द) शक्ति।

(180) चयन/चखने की क्षमता है–
(अ) शक्ति (ब) अपेक्षा
(स) वसूली (द) विचार।

उत्तर– (ब) अपेक्षा।

(181) निम्नलिखित में से कौनसी क्षमता इच्छाओं की ओर ले जाती है?
(अ) शक्ति (ब) उम्मीद

(स) बोध (द) विचार।

उत्तर– (द) विचार।

(182) कल्पना की गतिविधि है–
(अ) अरमान (ब) विचार
(स) अपेक्षा (द) ये सब।

उत्तर– (द) ये सब।

(183) निम्नलिखित में से किसमें चुनने और इमेजिंग की गतिविधियाँ शामिल हैं?
(अ) स्वयं में (ब) शरीर में
(स) दिमाग में (द) इनमें कोई नहीं।

उत्तर– (अ) स्वयं में।

(184) भोगकर्ता का दूसरा नाम क्या है?
(अ) कर्ता (ब) धारता
(स) भोक्ता (द) द्रष्टा।

उत्तर– (स) भोक्ता।

(185) ..... वस्त्र, पोषण आदि की आवश्यकता है।
(अ) स्व को (ब) शरीर को
(स) मन को (द) इनमें कोई नहीं।

उत्तर– (ब) शरीर को।

(186) अंतरिक्ष का आकार ..... है।
(अ) सीमित (ब) वर्जित
(स) असीमित (द) छोटा।

उत्तर– (स) असीमित।

(187) भौतिक इकाइयाँ प्रकृति में ..... होती हैं।
(अ) स्थायी (ब) अस्थायी
(स) स्थिर (द) पहचानने अयोग्य।

उत्तर– (ब) अस्थायी।

(188) प्रकृति का प्रथम क्रम कौन सा है?
(अ) पौधारोपण आदेश (ब) मानव व्यवस्था
(स) पशु क्रम (द) सामग्री क्रम।

उत्तर– (द) सामग्री क्रम।

(189) प्रकृति का दूसरा क्रम कौन सा है?
(अ) पौधारोपण आदेश (ब) मानव व्यवस्था
(स) पशु क्रम (द) सामग्री क्रम।

उत्तर– (अ) पौधारोपण आदेश।

(190) प्रकृति का तीसरा क्रम कौन सा है?
(अ) पौधारोपण आदेश (ब) मानव व्यवस्था

(स) पशु क्रम (द) सामग्री क्रम।

उत्तर– (स) पशु क्रम।

(191) प्रकृति का चौथा क्रम कौन सा है?

(अ) पौधारोपण आदेश (ब) मानव व्यवस्था

(स) पशु क्रम (द) सामग्री क्रम।

उत्तर– (ब) मानव व्यवस्था।

(192) जानवरों में एकमात्र प्रमुख गतिविधि कौन सी है?

(अ) स्वाद/चयन (ब) संघटन

(स) विकास (द) अस्तित्व।

उत्तर– (अ) स्वाद/चयन।

(193) दृढ़ता, वीरता और उदारता ..... के प्राकृतिक लक्षण/स्वभाव हैं।

(अ) पौधे (ब) इंसानों

(स) सामग्री (द) जानवरों।

उत्तर– (ब) इंसानों।

(194) मनुष्य में कौनसी अनुरूपता विद्यमान है?

(अ) संस्कार (ब) बीज

(स) नस्ल (द) संविधान।

उत्तर– (अ) संस्कार।

(195) ..... वे नैतिक मानक माने जाते हैं जिनके आधार पर लोग व्यवहार का मूल्यांकन करते हैं–

(अ) समृद्धि (ब) सोच

(स) नीति (द) समझ।

उत्तर– (स) नीति।

(196) मनुष्य एक ..... है।

(अ) चेतन इकाई (ब) भौतिक इकाई

(स) न तो चेतन इकाई और न ही भौतिक इकाई

(द) चेतन इकाई और भौतिक इकाई दोनों।

उत्तर– (अ) चेतन इकाई।

(197) सुख ..... निर्भर करता है।

(अ) हमारी सोच पर (ब) भौतिक सुविधा पर

(स) सुविधा के स्तर पर (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (अ) हमारी सोच पर।

(198) प्रत्येक दो इकाइयों के बीच क्या मौजूद है?

(अ) अंतरिक्ष (ब) समय

(स) डॉट्स (द) रिश्ता।

(अ) अंतरिक्ष।

(199) प्रकृति में चार क्रम हैं– भौतिक क्रम, पादप क्रम, पशु क्रम और .....।

(अ) मानव व्यवस्था (ब) ज्ञान क्रम

(स) (अ) और (ब) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (स) (अ) और (ब) दोनों।

(200) किस क्रम को प्राणिक क्रम के नाम से भी जाना जाता है?

(अ) बायो ऑर्डर (ब) मानव आदेश

(स) पशु क्रम (द) सामग्री क्रम।

उत्तर– (अ) बायो ऑर्डर।

(201) मानव शरीर किस क्रम का एक अंग है?

(अ) मानव व्यवस्था (ब) ज्ञान क्रम

(स) बायो ऑर्डर (द) पौधे का क्रम।

उत्तर– (स) बायो ऑर्डर।

(202) भौतिक क्रम के कुछ उदाहरण पदार्थ, गैस, पानी और ..... हैं–

(अ) तरल पदार्थ (ब) यौगिक

(स) मिट्टी का मिश्रण (द) उपरोक्त सभी।

उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(203) हमारे आस–पास की सभी इकाईयाँ हर समय सक्रिय रहती हैं। क्या यह कथन सत्य है?

(अ) हाँ, सच है (ब) नहीं, सच नहीं है

(स) नहीं कह सकता (द) कथन गलत है।

उत्तर– (अ) हाँ, सच है।

(204) मानव क्रम को ज्ञान क्रम भी कहा जाता है इसे और क्या नाम दिया जा सकता है?

(अ) पारसपार्टा (ब) प्राण अवस्था

(स) जीव अवस्था (द) ज्ञान अवस्था।

उत्तर– (द) ज्ञान अवस्था।

(205) हम किस क्रम में रहना चाहते हैं?

(अ) पशु क्रम (ब) मानव व्यवस्था

(स) दोनों (द) दोनों ही नहीं।

उत्तर– (ब) मानव व्यवस्था।

(206) मनुष्य के मूल्यों की संख्या कितनी है?

(अ) नौ (ब) तीस

(स) अठारह (द) चौबीस।

उत्तर– (ब) तीस।

(207) जो मनुष्य को पशु चेतना से मनुष्य चेतना में बदलने में मदद करती है वह ..... है।

(अ) सही व्यवहार होना (ब) समृद्धि होना

(स) सम्पत्ति होना (द) सही समझ होना।

उत्तर– (द) सही समझ होना

(208) एक शब्द में उत्तर दीजिए-

(1) प्राणायाम अष्टांग योग का कौन–सा अंग है?

उत्तर– चौथा अंग।

(2) हठप्रदीपिका में प्राणायाम को क्या कहा गया है?

उत्तर– कुम्भक।

(3) हठप्रदीपिका में प्राणायाम के कितने भेद हैं?

उत्तर– 8

(4) उप–प्राणों की संख्या कितनी है?

उत्तर– पाँच।

(5) कौन–सा उप–प्राण मृत्यु के बाद भी रहता है?

उत्तर– धनंजय।

(6) पंच प्राण के नाम लिखिये।

उत्तर– उदान, प्राण, समान, व्यान, अपान।

(7) अष्टांग योग के अंग लिखिये।

उत्तर– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

(8) यम के पाँच प्रकार कौन से हैं?

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

(9) नियम के प्रकार लिखिये।

उत्तर– शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर–प्रणिधान।

(10) अष्टांग योग के रचयिता कौन हैं?

उत्तर– महर्षि पतंजलि।

(11) शरीर की प्रकृति के नाम लिखिये।

उत्तर– वात, पित्त, कफ।

(12) हठ योग में हठ का क्या अर्थ है?

उत्तर– सूर्य तथा चन्द्र।

(13) योग करने से ऊर्जाएँ ..... होती हैं।

उत्तर– ऊर्ध्वगामी।

(14) आज्ञाचक्र में कितनी नाड़ी मिलती हैं? उनके नाम लिखिये।

उत्तर– तीन होती हैं– इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना।

(15) आज्ञाचक्र का अन्य नाम क्या है?

उत्तर– त्रिवेणी चक्र।

(16) भारत में योग का इतिहास कितना पुराना है?

उत्तर– लगभग 300 ई.पू.।

(17) प्राण के कितने प्रकार है?

उत्तर– 5

(18) श्वांस पर नियंत्रण रखने की प्रक्रिया को क्या कहते हैं?

उत्तर– प्राणायाम।

(19) शरीर में ठीक ढंग से रक्त प्रवाह कौन–सी प्रणाली से होता है?

उत्तर– रक्त संचार प्रणाली से।

(20) योग आत्मा कहा जाता है?

उत्तर– प्राणायाम को।

(21) प्राणायाम के भाग या चरण है?

उत्तर– पूरक, कुंभक, रेचक।

(22) श्वांस को अन्दर खींचने के कुछ समय पश्चात् सांस को अन्दर ही रोकने की क्रिया को क्या कहते हैं?

उत्तर– कुंभक।

(23) श्वांस को बाहर निकालने की क्रिया को क्या कहते हैं?

उत्तर– रेचक।

(24) नाभि से निचले भाग में प्राण को क्या कहते हैं?

उत्तर– अप्राण।

(25) कौन–सा प्राण पाचन क्रिया को एड्रिनल ग्रंथि के कार्य करने की शक्ति को बढ़ाता है?

उत्तर– समाण।

(26) गले से दिल तक को क्या कहते हैं?

उत्तर– प्राण।

(27) श्रीमद्भगवद् गीता के अनुसार योग की परिभाषा है।

उत्तर– योग कर्मसु कौशलम्।

(28) किस प्राणायाम से मोटापा कम होता है?

उत्तर– भस्त्रिका प्राणायाम से।

(29) सूर्यभेदी प्राणायाम लाभदायक है?

उत्तर– शरीर के सैलों को शुद्ध करने में, शरीर में गर्मी बढ़ाने में, अंतड़ियों के रोग दूर करने में।

(30) छोटी और बड़ी अंतड़ियों में कौन–सा प्राण होता है?

उत्तर– अप्राण।

(31) शरीर के सभी भागों में पाया जाने वाला प्राण है।

उत्तर– व्यान।

(32) आँख, कान, नाक, मस्तिष्क आदि अंगों में पाया जाने वाला प्राण है।

उत्तर– उदाण।

(33) कौन–सा प्राणायाम रक्त को शुद्ध करने में सहायक होता है?

उत्तर– शीतली प्राणायाम।

(34) योग समाधि है यह कथन है?

उत्तर– महर्षि वेदव्यास का।

(35) आसन का अर्थ है?

उत्तर– शरीर की स्थिति।

(36) मस्तिष्क की पूर्ण एकाग्रता क्या कहलाती है?

उत्तर– ध्यान।

(37) संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने की घोषणा कब की थी?

उत्तर– 11 दिसम्बर, 2014 को।

(38) परम चेतन या दिव्य मन में पूरी तरह से लीन होना कहलाती है?

उत्तर– समाधि।

(39) किसके सतत् अभ्यास से तन एवं मन दोनों को रूपान्तरित किया जा सकता है?

उत्तर– योग के।

(40) अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस प्रतिवर्ष बनाया जाएगा?

उत्तर– 21 जून को।

(41) प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया था?

उत्तर– 21 जून, 2015 को।

(42) संयुक्त राष्ट्र महासभा में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का समर्थन करने वाले मुस्लिम देशों की संख्या थी?

उत्तर– 46

(43) योग आध्यात्मिक कामधेनु है योग की परिभाषा किसने दी थी?

उत्तर– डॉ. सम्पूर्णानन्द ने।

(44) योग से कब्ज दूर होती है इसका संबंध किस प्रणाली से है?

उत्तर– पाचन प्रणाली से।

(45) किस आसन से बुढ़ापा दूर होता है?

उत्तर– चक्रासन।

(46) यम कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर– 5

(47) अष्टांग योग का प्रथम अंग है?

उत्तर– यम।

(48) पहला अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस विश्व के कितने देशों में मनाया था?

उत्तर– 192

(49) संयुक्त राष्ट्र महासभा में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का कितने देशों ने समर्थन किया था?

उत्तर– 175

(50) योग मस्तिष्क को शांत करने का अभ्यास है यह किसने कहा?

उत्तर– महर्षि पतंजलि ने।

(51) योग शब्द की उत्पत्ति किस भाषा से हुई?

उत्तर– संस्कृत से।

(52) योग शब्द का उद्भव हुआ था?

उत्तर– युज शब्द से।

(53) युज का क्या अर्थ है?

उत्तर– जुड़ना, एक होना, मिलन अथवा संयोग।

(54) प्राणायाम की अवस्थाएँ हैं?

उत्तर– सांस को अन्दर खींचना, सांस को बाहर निकालना, सांस को रोके रखना।

(55) मनोवृत्ति के विरोध का नाम ही योग है यह परिभाषा दी थी?

उत्तर– महर्षि पतंजलि ने।

(56) प्रसिद्ध योगी पतंजलि ने योग की कितनी अवस्थाओं का वर्णन किया है?

उत्तर– आठ।

(57) योग का जन्मदाता देश है?

उत्तर– भारत।

(58) प्रवण मंत्र के उच्चारण से क्या लाभ होता है?

उत्तर– एकाग्रता बढ़ती है तथा शान्ति प्राप्त होती है।

(59) हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार कौन–कौन से भगवान् किस–किसके प्रतीक हैं?

उत्तर– ब्रह्मा – निर्माता, विष्णु – रक्षक, शिव – मुक्तिदाता।

(60) ..... के जप से हमारे भीतर दैवी ऊर्जा विकसित होती है।

उत्तर– ओम्।

(61) ओम् की ध्वनि को क्या माना जाता है?

उत्तर– बीज मंत्र अथवा ब्रह्मण्ड की पहली आवाज।

(62) चिकित्सों के अनुसार किस मंत्र के जाप से स्वास्थ्य लाभ होता है?

उत्तर– प्रणव मंत्र के जाप से।

(63) प्रणव मंत्र के जाप से स्वास्थ्य संबंधी लाभ लिखिये।

उत्तर– रक्तचाप सामान्य होता है, तनाव, उदासी दूर होती है तथा मानसिक शान्ति मिलती है।

(64) मन का शान्त हो जाना क्या कहलाता है?

उत्तर– आन्तरिक मौन।

(65) अपने मन से उपजने वाली कल्पनाओं व विचारों को काबू करना क्या कहलाता है?

उत्तर– संयम।

(66) ..... को नियंत्रित करने से सभी को नियंत्रित किया जा सकता है।

उत्तर– श्वास।

(67) श्वास की गति से हमारी आयु ..... तथा ..... है।

उत्तर– घटती तथा बढ़ती।

(68) जिन्दगी का पहला कृत्य क्या है?

उत्तर– श्वास लेना।

(69) जिन्दगी का आखिरी कृत्य क्या है?

उत्तर– श्वास छोड़ना।

(70) प्राणायाम करने से हमारे भीतर की ..... खुल जाती है तथा उसमें ..... का प्रवाह होने लगता है।

उत्तर– नाड़ियाँ, ऑक्सीजन (शुद्ध वायु)।

(71) गायत्री मंत्र एक ..... है।

उत्तर– छन्द।

(72) गायत्री मंत्र के ..... पद होते हैं।

उत्तर– तीन।

(73) गायत्री मंत्र के क्या लाभ हैं?

उत्तर– बुराइयों से मन दूर होता है तथा क्रोध शान्त होता है।

(74) निम्न शब्दों के अर्थ लिखिये–

(1) अनैच्छिक	जो बिना इच्छा के है
(2) कुम्भक	श्वास रोकना, प्राणायाम
(3) पूरक	श्वास लेना
(4) रेचक	श्वास छोड़ना
(5) ज्येष्ठ	बड़ा
(6) प्रवाह	गति
(7) निरोध	रोकना, अवरूद्ध करना
(8) स्वर्ण	सोना, कनक
(9) लाघव	हल्कापन
(10) शरीरस्थ	शरीर में स्थित
(11) ह्रास	कम, क्षीण, तनु
(12) साम्यावस्था	संतुलन, समरसता
(13) तृष्णा	चाह, राग

(75) सत्य/असत्य बताइये–

(1) दुःखी व्यक्ति से करूणा की भावना से चित्त निर्मल होता है।	सत्य
(2) पापी व्यक्ति की उपेक्षा करने से चित्त निर्मल होता है।	सत्य
(3) चित्त प्रसादन के तीन उपाय महर्षि पतंजलि ने बताये हैं।	असत्य
(4) ईश्वर की कृपा से समाधि की प्राप्ति होती है।	सत्य
(5) महर्षि दयानन्द ने ईश्वर को सगुण व निर्गुण माना है।	सत्य
(6) चार्वाक दर्शन ईश्वर की सत्ता पर विश्वास करता है।	असत्य
(7) ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय से परे हैं।	सत्य
(8) योग दर्शन में आत्मा को ईश्वर की संज्ञा दी है।	असत्य

❑❑❑